परिच्छेद सूची

: ६२ :

मधुपर्व

वीणा के तारों में औढ़व सम्पूर्ण के स्वर तैर रहे थे। सुनहरी धूप प्रासाद के मरकतमणि-जटित झरोखों और गवाक्षों से छन २ कर नेत्रों को आह्लादित कर रही थी। अम्बपाली के आवास के बाहरी प्राङ्गण में रथ, हाथी, अश्व और विविध वाहनों का तांता लगा था। सम्भ्रान्त नागरिक और सामन्त-पुत्र अपनी नई निराली सज-धज से अपने २ वाहनों पर देवी अम्बपाली की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रांगण के भीतरी मार्ग में अम्बपाली का स्वर्ण-कलश वाला श्वेत कौशेय का महाघोष रथ आचूड़ विविध पुष्पों से सजा खड़ा था, उसमें आठ सैन्धव अश्व खोंखुते थे, जिनकी कनौतियां खड़ी, थुथनी लम्बी और नथुने विशाल थे। वे स्वर्ण और मणिमालाओं के आभरणों से लदे थे। रथ के चूड़ पर मीनध्वज फहरा रही थी, वातावरण में जनरव भरा था। दण्डधर शुभ्र परिधान पहने दौड़ २ कर प्रबन्ध-व्यवस्था कर रहे थे।

हठात् गवाक्ष के कपाट खुले, और देवी अम्बपाली उसमें ...नि
मोहक मुस्कान के साथ आ खड़ी हुई; नख से शिख तक उन्होंने, लगे।
परिधान किया था, उनके मस्तक पर एक अति...य किरीट ... पर चढ़े
सूर्य की सी कान्ति का एक अलभ्य पुखराज... करने...।
कानों में दिव्य नीलम के कुण्डल और कण्ठ... दोनों ओर के गवाक्षों में
अलौकिक हार था। उनकी करधनी बड़े २ ...लों की मधुयात्रा निरख रही
जिनमें प्रत्येक का भार ग्यारह टंक था। ...र और पण्य सजाये थे। सेट्ठियों
लिपटे हुए उस मधु दिवस के प्रभात ...रण बनाये गये थे। जो बहुमूल्य
की छटा विस्तार कर रहे थे—उनकी ...गे फूलों से सुसज्जित हो रहे थे।

... में क्रीड़ा कर रही थीं। स्वर्णखचित कंचुकी में सुगठित युगल यौवन दर्शकों पर मादक प्रभाव डाल रहे थे।

करधनी के नीचे हलके आसमानी रंग का दुकूल उनके पीन नितंबों की शोभा विस्तार कर रहा था। जिसके नीचे के भाग से उनके संगमर्मर के से सुडौल चरण-युगल खालिस नीलम की पैंजनियों से आवेष्टित बरबस दर्शकों की गति मति को हरण कर रहे थे।

इस अलौकिक वेशभूषा में उस दिव्य सुन्दरी अम्बपाली को देख कर प्रांगण में से सैकड़ों कण्ठों से आनन्द-ध्वनि विस्तारित होगई। लोगों की सम्पूर्ण जीवनी शक्ति उनकी दृष्टि में ही केन्द्रित होगई। फिर, ज्यों ही आम्रपाली ने अपने दोनों हाथों की अंजलि में फूलों को लेकर सामन्त नागरिकों की ओर मृदु मन्द मुस्कान के साथ फेंका, त्यों ही 'देवी अम्बपाली की जय', 'मधुपर्व की रानी की जय', 'जनपद कल्याणी नगरवधू की जय' से दिशायें गूंज उठीं।

दुन्दुभी पर चोटें पड़ने लगीं। वीणा में अब सम्पूर्ण अवरोह स्वर वातावरण में बखेरे जा रहे थे, जिनमें दोनों मध्यम और कोमल निषाद विचित्र माधुर्य उत्पन्न कर रहे थे।

...नायक दण्डधर लल्लभट्ट ने अपनी विशालकाय देह-भार को ...ड के सहारे सीढ़ियों पर चढ़ा कर अर्ध-निमीलित नेत्रों से देवी के सम्मुख अभिवादन करके निवेदन किया—"देवी की जय ... है ... सभी नागरिक शोभा-यात्रा को उतावले हो रहे ...या है।"

...ओं को मुस्करा कर एक बार प्रांगण में ... देखा और फिर सप्त-भूमि प्रासाद की ... फिर उनकी आंखें सम्मुख विस्तृत ... पर फैल गईं। उन्होंने गर्व

से अपनी हंस की सी गर्दन उठा कर कहा—"लल्ल, मुझे रथ का मार्ग दिखा।"

"इधर से देवी" लल्ल ने अति विनयावनत होकर कहा। और अम्बपाली लाल कुत्तक के जूतो से सुसज्जित अपने हिमतुषार धवल मृदुल पदपद्मों से स्फटिक की उन स्वच्छ सीढ़ियों को शत सहस्र गुण प्रतिबिम्बित करती हुई, स्वर्ग से उतरती हुई सजीव सूर्यरश्मि-सी प्रतीत हुई।

युवकों ने अनायास ही उसे घेर लिया, उनके हाथो में माधवी और यूथिका की मंजरी और उरच्छद थीं। वे उन्होंने देवी अम्बपाली पर फेंकनी आरम्भ कीं। उनमे से कुछ अम्बपाली के अलभ्य गात्र को छूकर उसके चरणों में गिर गईं, कुछ बीच ही में गिर कर अनगिनत भीड के पैरों में कुचल गईं।

ज्यों ही अम्बपाली अपने पुष्प-सज्जित रथ पर सवार हुईं, वेग से मृदंग, मीरज और दुन्दुभी बज उठे। दो तरुणियां उनके चरणों में अङ्गराग लिये आ बैठीं। दो उनके पीछे मोरछल ले खडी हो गईं। कुछ काम्बोजी अश्वो पर सवार हो रथ के आगे पीछे चलने लगीं। युवक सामन्तपुत्रो एवं सेट्ठिपुत्रों ने रथ को घेर लिया। बहुतों ने अपने अपने वाहन त्याग दिये और रथ का धुरा पकड़ कर साथ २ चलने लगे। बहुतों ने घोड़ो की रश्मियां थाम ली। बहुत अपने २ वाहन पर चढ़े अपने भाले और शस्त्र चमकाते आगे पीछे दौड़ धूप करने लगे।।

सडकें कोलाहल से परिपूर्ण थीं। मार्ग के दोनों ओर के गवाक्षों में कुलवधुएँ बैठी हुईं जनपद-कल्याणी अम्बपाली की मधुयात्रा निरख रही थीं। पौरजनों ने मार्ग में अपने २ घर और पण्य सजाये थे। सेट्ठियों और निगम की ओर से स्थान २ पर तोरण बनाये गये थे। जो बहुमूल्य कौशेय वस्त्रों एवं विविध रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित हो रहे थे।

उन पर वन्दनवार मधुघट और पताकाओं की अजब छटा थी। प्रत्येक की सजधज निराली थी।

अम्बपाली पर चारों ओर से फूलों की वर्षा हो रही थी। वह फूलों में ढकी जा रही थी। अट्टालिकाओं और चित्रशालाओं से सेट्ठि लोग फूलों के गुच्छ उनपर फेंक रहे थे और वह हँस २ कर उन्हें हाथ में उठा हृदय से लगा नागरिकों के प्रति अपने प्रेम का परिचय दे रही थीं। लोग हर्ष से उन्मत्त होकर जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली की जय-जयकार घोषित कर रहे थे।

सेना-नायक सबसे आगे एक पंचकल्याणी अश्व पर सवार स्वर्ण-तार के वस्त्र पहने चांदी का तूर्य बजा २ कर बारम्बार पुकारता जाता था—

"नागरिको, एक ओर हो जाओ, मधुपव की रानी जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली की सवारी आ रही है। देवी मधुवन को जा रही हैं, उन्हें असुविधा न हो, सावधान।" घोषणा करके ज्यों ही वह आगे बढ़ता, मार्ग नरमुण्डों से भर जाता। कोलाहल के मारे कान नहीं दिया जाता था।

सूर्य तपने लगा। मध्यान्ह हो गया। तब सब कोई मधुवन में पहुँचे। एक विशाल सघन आम्रकुञ्ज में अम्बपाली का डेरा पड़ा। उनका मृदु गात्र इतनी देर की यात्रा से थक गया था। ललाट पर स्वेद-बिन्दु हीरे की कनी के समान चमक रहे थे।

आम्रकुञ्ज के मध्य में एक सघन वृक्ष के नीचे दुग्ध-फेन-सम श्वेत कोमल गद्दी के ऊपर रत्न-जटित डंडों पर स्वर्णिम वितान तना था। अम्बपाली वहां आसक्तिकोपाधान पर अलस भाव से उठँग गईं। उन्होंने अर्धनिमीलित नेत्रों से मदलेखा की ओर देखते हुए कहा—"हला, एक पात्र माध्वीक दे।"

मदलेखा ने स्वर्ण के सुराभाण्ड से लाल लाल सुवासित मदिरा पन्ने के हरे २ पात्र में उडेल कर दी। उसे एक सांस में पी कर अम्बपाली उस कोमल तल्पशैया पर पौढ गई।

अपनी २ सुविधा के अनुसार सभी लोग अपने २ विश्राम की व्यवस्था कर रहे थे। वृक्षों की छाया में, कुञ्जों की निगूढ ओट में, जहां जिसे रुचा, उसने अपना आसन जमाया। कोई सेट्ठिपुत्र कोमल उपाधान पर लेट कर अपने सुकुमार शरीर की थकान उतारने लगा, कोई बाँसुरी ले तान छेड बैठा, किसी ने गौडी, माध्वीक और दाक्खा रस का आस्वादन करना प्रारम्भ किया। किसी ने कोई एक मधुर तान ली। कोई वानर की भांति वृक्ष पर चढ बैठा। बहुत से साहसी सामन्त-पुत्र दर्प से अपने २ अश्वों पर सवार हो अपने २ भाले और धनुष ले मृगया को निकल पडे और आखेट कर २ के मधुपर्व की रानी के सम्मुख ढेर करने लगे। देखते २ आखेट में मारे हुए पशुओं और पक्षियों का समूह पर्वत के समान अम्बपाली के सम्मुख आ लगा। साबर, हरिण, शश, शूकर, वराह, लाब, तित्तिर, ताम्रचूड, माहिष और न जाने क्या २ जलचर, नभचर, थलचर जीव प्राण त्याग उस रात को मधुपर्व के रात्रिभोज में अग्नि पर पाक होने के लिये मधुपर्व की रानी अम्बपाली के सम्मुख ढेर के ढेर इकट्ठे होने लगे। कोमल उपाधानों का सहारा लिये अम्बपाली अपनी दासियों के साथ हँस २ कर इन उत्साही युवकों के आखेट की प्रशंसा कर रही थीं और उससे वे अपने को कृतार्थ मान कर और भी द्विगुण उत्साह से आखेट पर अपने अश्व दौडा रहे थे।

: ९३ :

आखेट

दिन का जब तीसरा दण्ड व्यतीत हुआ और सूर्य की तीखी लाल किरणें तिरछी होकर पीली पड़ीं और सामन्त युवक जब मैरेय छक कर पी चुके, तब अम्बपाली से आखेट का प्रस्ताव किया गया। अम्बपाली प्रस्तुत हुईं। यह भी निश्चित हुआ कि अम्बपाली पुरुष-वेश धारण कर अश्व पर सवार हो, गहन बन में प्रवेश करेंगी। अम्बपाली ने हँसते २ पुरुष-वेश धारण किया। सिर पर कौशेय धवल उष्णीक जिस पर हीरे का किरीट, अंग पर कसा हुआ कंचुक, कमर में कामदार कमरबन्द। इस वेश में अम्बपाली एक सजीले किशोर की शोभा-खान बन गईं। जब दासी ने आरसी में उसे उसका वह भव्य रूप दिखलाया तो वह हँसते २ गद्दे पर लोट-पोट हो गईं। बहुत से सामन्त-पुत्र और सेट्ठिपुत्र उसे घेर कर खड़े २ उसका यह रूप निहारने लगे।

युवराज स्वर्णसेन ने अपने चपल अश्व को हठपूर्वक निवारण किया और अम्बपाली के निकट आकर अभिनद के ढँग पर कहा—

"क्या मैं श्रीमान् से अनुरोध कर सकता हूं कि वे मेरे साथ मृगया को चलकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ावें?"

अम्बपाली ने मोहक स्मिति करके कहा—

"अवश्य, यदि प्रियदर्शी युवराज मेरा अश्व और धनुष मंगा देने का अनुग्रह करें।"

"सेवक अपना यह अश्व और धनुष श्रीमानों को समर्पण करता है।" इतना कह कर युवराज अश्व से कूद पड़े और घुटने टेक कर देवी अम्बपाल की सम्मुख बैठ अपना धनुष उन्हें निवेदन करने लगे।

अम्बपाली ने बनावटी पौरुष का अभिनय करके आडम्बर सहित धनुष लेकर अपने कन्धे पर खोंस लिया और तीरों से भरा हुआ तूणीर कमर में बांध, वृद्ध दण्डधर के हाथ से बर्छा लेकर कहा—"मैं प्रस्तुत हूं भन्ते।"

स्वर्णसेन युवराज ने एक लम्बा चौड़ा अभिवादन निवेदन किया और कहा—"धन्य वीरवर, धन्य आपका साहस, यह अश्व प्रस्तुत है।"

"परन्तु क्या भन्ते युवराज अश्वारूढ होने में मेरी सहायता नहीं करेंगे?"

"क्यों नहीं भन्ते, यह तो मेरा परम सौभाग्य होगा। अश्वारूढ़ होने, संचालन करने और उतरने में मेरी विनम्र सेवाएं सदैव उपस्थित हैं।"

इतना कह कर उन्होंने आगे बढ कर अम्बपाली का कोमल हाथ पकड़ लिया।

अम्बपाली खिलखिला कर हँस पड़ी; स्वर्णसेन भी हँस पड़े। स्वर्ण-सेन ने अनायास ही अम्बपाली को अश्व पर सवार करा दिया, और एक दूसरे अश्व पर स्वयं सवार हो, विजन गहन वन की ओर द्रुत गति से प्रस्थान किया। वृद्ध दण्डधर ने साथ चलने का उपक्रम किया तो अम्बपाली ने हँस कर उसे निवारण करते हुए कहा—"तुम यहीं मद-लेखा के साथ रहो, लल्लभट्ट"। वे दोनों देखते ही देखते आंखों से ओझल हो गये। थोड़ी ही देर में गहन वन आ गया। स्वर्णसेन ने अश्व को धीमा करते हुए कहा—

"कैसा शान्त, स्निग्ध वातावरण है।"

"ऐसा ही यदि मनुष्य का हृदय होता।"

"तब तो विश्व के साहसिक जीवन की इति हो जाती।"

"यह क्यों?"

"अशांत हृदय ही साहस करता है देवी।"

"सच ?" अम्बपाली ने मुस्करा कर कहा।

युवराज कुछ अप्रतिभ होकर क्षण भर चुप रहे। फिर बोले—"देवी, आपने कभी विचार किया है ?"

"किस विषय पर प्रिय ?"

"प्रेम की गम्भीर मीमांसाओं पर, जहां मनुष्य अपना आपा खो देता है और जीवन फल पाता है ?"

"नहीं, मुझे कभी इस भीषण विषय पर विचार करने का अवसर नहीं मिला।" देवी ने मुस्करा कर कहा।

"आप इसे भीषण कहती हैं ?"

"जहां मनुष्य आपा खो देता है, और जीवन फल पाता है—वह भीषण नहीं तो क्या है ?"

"देवी सम्भवतः उपहास कर रही हैं।"

"नहीं भद्र, मैं अत्यन्त गम्भीर हूं।" अम्बपाली ने हठपूर्वक अपनी मुद्रा गम्भीर बना ली। स्वर्णसेन चुप रहे। दोनों अश्व धीरे २ पर्वत की उस गहन उपत्यका में ठोकरों से बचते हुए आगे गहनतम वन में बढ़ने लगे। दोनों ओर के पर्वत-शृंग ऊंचे होते जाते थे और वन का सन्नाटा बढ़ता जाता था। सघन वृक्षों की छाया में छन कर सूर्य की स्वर्ण-किरण दोनों अश्वारोहियों की मुखश्री की वृद्धि कर रही थीं।

अम्बपाली ने कहा—

"क्या सोचने लगे युवराज ?"

"क्या सत्य कह दूं देवी ?"

"यदि अप्रिय न हो"

"साहस नहीं होता"

"अरे, ऐसे वीर युवराज होकर साहस नहीं कर सकते ? मैं समझती थी युवराज स्वर्णसेन परम साहसिक हैं।"

"आप उपहास कर सकती हैं देवी, पर मैं आपको प्यार करता हूं, प्राणों से भी बढ़ कर।"

"केवल प्राणों से ही?" अम्बपाली ने हंस की सी गर्दन ऊँची करके कहा।

"विश्व की सारी सम्पदाएं भी प्राणों के मूल्य की नहीं देवी, क्या मेरा यह प्यार नगण्य है?"

"नगण्य क्यों होने लगा प्रिय?"

"तो आप इस नगण्य प्यार को स्वीकार करती हैं?"

"इसके लिए तो मैं बाध्य हूं भन्ते युवराज।" अम्बपाली ने वक्र मुस्कान करके कहा—

"वैशाली के प्रत्येक व्यक्ति को मुझे अपना प्यार अर्पण करने का अधिकार है, वैशाली के ही क्यों? जनपद के प्रत्येक व्यक्ति को।"

"परन्तु मेरा प्यार औरों जैसा नहीं है देवी।"

"तो उसमें कुछ विशेषता है?"

"वह पवित्र है, वह हृदय के गम्भीर प्रदेश की निधि है देवी अम्बपाली, जिस दिन मैं समझूंगा कि आपने मेरे प्यार को स्वीकार किया उस दिन मैं अपने जीवन को धन्य मानूंगा।"

"वाह, इसमें द्विविधा की बात ही क्या है? तुम आज ही अपने जीवन को धन्य मानो युवराज, परन्तु देखो कोरे प्यार से काम न चलेगा प्रिय, प्यास से मेरा कण्ठ सूख रहा है, मुझे शीतल जल भी चाहिए।"

"वाह, तब तो हम उपयुक्त स्थान पर आ पहुंचे हैं, वह सामने पुष्करिणी है, घड़ी भर वहाँ विश्राम किया जाय, शीतल जल से प्यास बुझाई जाय और शीतल छाया में शरीर को ठण्डा किया जाय।"

"और पेट की आँतों के लिए?"

"उसकी भी व्यवस्था है, यह झोले में स्वादिष्ट मेवा और भुना हुआ शूल्य मांस है, जो अभी भी गर्म है, वास्तव में वह यवनी दासी

बड़ी ही चतुरा है, शूल्य बनाने में तो एक है।"

"कहीं तुम उसे प्यार तो नहीं करते युवराज ?"

"नहिं, नहिं, देवी, जो पुष्प देवता पर चढ़ाने योग्य है वह क्या यों ही ....।"

"यही तो मैं सोचती हूं, परन्तु यह पुष्करिणी-तट तो आ गया।"

युवराज तत्क्षण अश्व से कूद पड़े और हाथ का सहारा देकर उन्होंने अम्बपाली को अश्व से उतारा। एक बड़े वृक्ष की सघन छाया में गोनक बिछा दिया गया और अम्बपाली उस पर लेट गईं। फिर उन्होंने कहा—"हां, अब देखूं तुम्हारी उस यवनी दासी का हस्त-कौशल।"

स्वर्णसेन ने पिटक से निकाल कर शूकर के भुने हुए मांस-खण्ड अम्बपाली के सामने रख दिए, अभी वे कुछ गर्म थे। अम्बपाली ने हँसते २ उन्हें खाते हुए कहा—"युवराज, तुम्हारी उस यवनी दासी का कल्याण हो, तुम भी तनिक चख कर देखो, बहुत अच्छे बने है। मुझे सन्देह है कहीं इनमें प्रेम का पुट तो नहीं है ?"

युवराज ने हँस कर कहा—"क्या ईर्षा होती है देवी ?"

"क्या दासी के प्रेम से ? नहीं भाई, मै इस भीषण प्रेम से घबराती हूं। क्या मैं तुम्हें बधाई दू युवराज ?"

"ओह देवी, आप बड़ी निष्ठुर हैं ?"

"परन्तु वह यवनी दासी कदाचित् नवनीत-कोमलाङ्गी है ?"

"भला देवी की दासी से तुलना क्या ?"

"तुलना की एक ही कही युवराज, तुलना न होती तो यह अधम गणिका उसके प्रेम से ईर्षा कैसे कर सकती थी भला ?"

युवराज स्वर्णसेन अप्रतिभ हो गए। उन्होंने कहा—"मुझसे अपराध हो गया देवी, मुझे क्षमा करो।"

'यह काम सोच विचार कर किया जायगा, अभी यह मधुर कुरकुर शूकर-मांस-खण्ड चख कर देखो।" उन्होंने हँसते २ एक टुकड़ा स्वर्णसेन के मुख में ठूंस दिया।

हठात् अम्बपाली का मुंह सफेद हो गया और स्वर्णसेन जड़ हो गये। इसी समय एक भयानक गर्जना से वन, पर्वत कम्पायमान हो गए। हरी २ घास चरते हुए अश्व उछलने और हिनहिनाने लगे, पक्षियों का कलरव तुरन्त बन्द हो गया।

परन्तु एक ही क्षण में स्वर्णसेन का साहस लौट आया। उन्होंने कहा—"शीघ्रता कीजिए देवी, सिंह कहीं पास ही है।" उन्होंने अश्वों को संकेत किया, अश्व कनौती काटते आ खड़े हुए। अश्व पर अम्बपाली को सवार करा स्वयं अश्व पर सवार हो, धनुष पर शर सन्धान कर वे 'सिंह किस दिशा में है, यही देखने लगे।

अम्बपाली अभी भी भयभीत थी, अश्व चंचल हो रहे थे। अम्बपाली ने स्वर्णसेन के निकट अश्व लाकर भीत मुद्रा से कहा—"सिंह क्या बहुत निकट है?"

और तत्काल ही फिर एक विकट गर्जन हुआ। साथ ही सामने बीस हाथ के अन्तर पर झाड़ियों में एक मटियाली वस्तु हिलती हुई दीख पड़ी। अम्बपाली और स्वर्णसेन को सावधान होने का अवसर नहीं मिला। अकस्मात् ही एक भारी वस्तु अम्बपाली के अश्व पर आ पड़ी। अश्व अपने आरोही को ले लड़खड़ाता हुआ खड्ड में जा गिरा। इससे स्वर्णसेन का अश्व भड़ककर अपने आरोही को ले तीर की भांति भाग चला। स्वर्णसेन उसे वश में नहीं रख सके।

— ———

: ६४ :

रंग में भंग

युवराज स्वर्णसेन को लेकर उनका अश्व जो बिगड़ कर भागा तो युवराज के बहुत प्रयत्न करने पर भी बीच में रुका नहीं। स्वर्णसेन पर भी सिंह के आक्रमण का आतंक तो था ही, देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा आक्रान्त होने का भारी विषाद छा गया। सूर्यास्त के समय जब अत्यन्त अस्त-व्यस्त दशा में अकेले स्वर्णसेन मधुवन में पहुंचे तो वहाँ बड़ा कोलाहल हो रहा था। जगह जगह लकड़ी के बड़े ढेर जल रहे थे और उन पर लोग शशक, वराह, महिष और तित्तिर भून रहे थे। ढेर के ढेर मैरेय, द्राक्षा, माध्वीक, पात्रों में भरी धरी जा रही थी और उसे पी पीकर सब लोग उन्मत्त हो रहे थे। माँस के भूनने की सोंधी सुगन्ध आ रही थी। कोई ताल सुर से और कोई ताल सुर-भंग होकर भी निर्द्वन्द गा रहे थे।

स्वर्णसेन अपने अश्व पर लटक गये थे, अश्व पसीने से तर था और मुख से फेन उगल रहा था। ज्यों ही लोगों की दृष्टि उन पर पड़ी, वे स्तम्भित से आमोद-प्रमोद छोड़कर उनकी ओर दौड़े। देखते २ सामन्त-पुत्रों, सेट्ठिपुत्रों और राजकुमारों ने उन्हें घेर लिया, वे विविध भांति प्रश्न करने लगे।

देवी अम्बपाली को न देखकर प्रत्येक व्यक्ति विचलित हो रहा था। सहारा देकर सूर्यमल्ल ने युवराज को अश्व से उतारा, थोडी गौडीय एक पात्र में भरकर उनके मुख से लगाई, उसे एक ही सांस में पीकर युवराज ने वेदनापूर्ण स्वर में कहा—"मित्रो, अनर्थ हो गया, देवी अम्बपाली को सिंह आक्रान्त कर गया।"

वज्रपात की भांति यह समाचार सम्पूर्ण शिविर में फैल गया। सभी आमोद-प्रमोद रुक गये और सर्वत्र सन्नाटा छा गया, धीरे-धीरे स्वर्णसेन ने सम्पूर्ण घटना कह सुनाई। वह कहने लगे—"ज्यों ही हिंस्र सिंह गर्जन करके देवी अम्बपाली के ऊपर झपटा—मैंने बाण-सन्धान किया, परन्तु शोक, सिंह के धक्के से विचलित होकर मेरा अश्व बेवश होकर भाग निकला—मैंने देवी अम्बपाली को सिंह के भारी देह के साथ अश्व से खड्ड में गिरते देखा है, हाय मित्रो, अब मैं जनपद में मुंह दिखाने योग्य नहीं रह गया।"

महाअट्टवी रक्खक सूर्यमल्ल ने तत्काल पुकार कर दीपशलाकायें जलाने और अपना अश्व लाने की आज्ञा दी। उन्होंने घटनास्थल पूछ पाछ कर बाणों से भरा तूणीर अपने कंधे पर डाल और नग्न खड्ग हाथ में लेकर गहन बन में प्रवेश किया। पचासों प्यादे मशालें ले लेकर उनके आगे पीछे चले। अनेक सामन्त-पुत्र अश्वों पर सवार हो हाथों में नग्न खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण लिये साथ हो लिये।

परन्तु सम्पूर्ण रात्रि अनुसन्धान करने पर भी वे देवी अम्बपाली का शरीर न पा पाये। उन्होंने उनके अश्व का मृत शरीर देखा। सिंह ने अपनी थाप से उसकी दो पसलियां उखाड ली थीं, परन्तु देवी का पता न था। वन का कोना २ छान डाला गया। सिंह का शरीर भी वहाँ न था। सभी ने यही समझ लिया कि सिंह अम्बपाली के शरीर को किसी कन्दरा में उठा ले गया; और वह महामहिमामयी वैशाली की जनपद-कल्याणी देवी अम्बपाली को खा गया।

प्रभात के धूमिल प्रकाश में वे थकित, भग्न-हृदय, खिन्न योद्धा युवक नीचे मुंह लटकाये मधुवन में लौट आये। उन्हें देखते ही मधुवन की बासन्ती पवन लोगों के रुदन से भर गई। देवी अम्बपाली के बहुमूल्य मीनध्वज रथ पर सुकुमारी मदलेखा औंधा मुंह किये सिसक सिसक

कर रो रही थी। सभी के मुख से एक ही बात निकल रही थी कि देवी अम्बपाली को सिंह ने खा लिया।

तत्काल ही जैसे जो था उसी स्थिति में मधुवन से चल दिया, और १ दण्ड सूर्य चढ़ते २ वैशाली की गली गली में देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा खा लिये जाने की कथा फैल गई। श्रेष्ठिचत्वर की सभी हाट तुरन्त बन्द हो गईं। संथागार का गणसन्निपात तुरन्त स्थगित कर दिया गया। समस्त वैशाली का गण देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा खा लिये जाने पर शोक संताप मग्न हो गया।

: ६५ :

साहसी चित्रकार

अम्बपाली ने आँखें खोलीं। उनकी स्मृति काम नहीं दे रही थी। उन्होंने आँखें फाड़ फाड़ कर इधर उधर देखा। सामने उनका अश्व मरा पड़ा था। उनके निकट ही वह भीमाकार सिंह भी। उसे देखते ही अम्ब-पाली के मुंह से चीख निकल पड़ी। इसी समय किसी ने हँसकर कहा—"डरो मत मित्र, सिंह मर चुका है।"

अम्बपाली ने देखा—एक छरहरे गात का लम्बा-सा युवक सामने एक शिलाखण्ड पर खड़ा मुस्करा रहा है। अम्बपाली से चार आँखें होते ही उसने कहा—

"सिंह मर चुका मित्र, क्या तुम्हें अधिक चोट आई है ? मैं उठने में सहायता दूं ?"

आम्रपाली अपने पुरुषवेश को स्मरण कर संकट में पड़ी। उन्होंने घबराकर कहा—"नहीं, नहीं धन्यवाद, मुझे चोट नहीं आई है, मैं ठीक हूं।" यह कहकर वह व्याकुलता से अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक करने लगी।

युवक ने तनिक निकट आकर हँसते हुए कहा—"वाह मित्र, तुम्हारा तो कण्ठ-स्वर भी स्त्रियों जैसा है, तुम कदाचित् कोई सेट्ठिपुत्र हो? किसी सामन्तपुत्र के संगदोष से मृगया को निकल पड़े ?"

अम्बपाली ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

"ठीक है, और कदाचित् आखेट में आने का यह प्रथम ही अवसर है।"

"हाँ मित्र, पहिला" अम्बपाली ने झेंप मिटाने को मुस्कराकर कहा।

युवक एक बार खूब ठठा कर हँस पड़ा। उसने कहा—"और तुम्हें पहिले पहल सिंह के आखेट में आने के लिये तुम्हारे उसी मित्र ने सम्मति दी होगी जो तुम्हारे साथ था।"

"जी हाँ"

"परन्तु वे हैं कहाँ ?"

"सम्भवतः वह सुरक्षित अपने डेरे में पहुंच गये होंगे। सिंह की गर्जना सुनकर उनका घोड़ा ऐसा भागा कि मैं समझता हूं कि वह बिना अपने वासस्थल पर गए रुकेगा ही नहीं।"

इतना कहकर युवक फिर ही-ही करके हंसने लगा। उसने कहा—बड़ा कौतुक हुआ मित्र, मैं उस पुष्करिणी के उस छोर पर बैठा अस्तंगत सूर्य को एक चित्र बना रहा था। कोई आखेटक इधर आए हैं यह मैं तुम लोगों की बातचीत की तथा अश्वों की भनक सुनकर समझ गया था। हठात् सिंहगर्जन सुन मैंने इधर उधर देखा, तो तुम लोगों से दस हाथ दूरी पर सिंह को आक्रमण के लिये समुद्यत तथा तुम लोगों को असावधान देखकर मैं बरछा लिये इधर को लपका। सो अच्छा ही हुआ, ज्यों ही सिंह विकट गर्जन करके तुम्हारे अश्व पर उछला, मेरा बरछा उसकी पसलियों को चीर कर हृदय में जा अड़ा। तुम खड्ड में गिर पड़े। सिंह तुम्हारे अश्व को लेकर इधर गिरा। उधर तुम्हारे मित्र को लेकर उनका अश्व एकदम हवा हो गया। खेद है मित्र, तुम्हारा वह सुन्दर काम्बोजी अश्व मर गया।"

अम्बपाली अवाक् रहकर मृत अश्व को देखने लगी। फिर उसने कहा—"धन्यवाद मित्र, तुमने मेरी प्राणरक्षा कर ली। परन्तु अब मैं मधुवन तक कैसे पहुँचूँ भला ? सूर्य तो अस्त हो रहा है।"

"असम्भव है। एक मुहूर्त में अन्धकार घाटी में फैल जायगा। दुर्भाग्य से तुम्हारा अश्व मर गया है, और इस समय अश्व मिलना

सम्भव नहीं है, तथा मधुवन यहाँ से १० कोस पर है, जा नहीं सकते मित्र। पर चिन्ता न करो, आओ आज रात मेरी कुटिया में विश्राम करो मेरे साथ।"

"तुम्हारे साथ? आज रात? असम्भव।" अम्बपाली ने सूखते कण्ठ से कहा और व्याकुल दृष्टि से युवक की ओर देखा।

युवक ने और निकट आकर कहा—"असम्भव क्यों मित्र, परन्तु निस्सन्देह तुम बड़े सुकुमार हो, कुटिया तुम्हारे योग्य तो नहीं पर काम-चलाऊ कुछ आहार और शयन की व्यवस्था हो जायगी। यहाँ पर तो अकेले वन में रात व्यतीत करना तुम्हारे जैसे सुकुमार किशोर के लिये उपयुक्त नहीं, निरापद भी नहीं है।"

अम्बपाली ने कुछ सोचकर कहा—"मित्र, तुम क्या यहीं कहीं निकट रहते हो?"

"कुछ दिन से, उस सामने की टेकरी पर; उस कुटिया को देख रहे हो न?"

"देख रहा हूं, पर तुम इस विजन वन में करते क्या हो?"

युवक ने हँसकर कहा—"चित्र बनाता हू। यहाँ का सूर्यास्त उन पर्वतों की उपत्यकाओं में ऐसा मनोरम है कि मैं मोहित हो गया हूं।"

"तो तुम चित्रकार हो मित्र?"

"देख नहीं रहे हो यह रंग की कूर्चि और यह चित्रपट।"

"हूँ, और यह बर्छा? यह अमोघ हस्तलाघव? यह अभय पौरुष? यह सब भी चित्रकला में काम आने की वस्तुएं हैं?"

युवक फिर हंस पड़ा। उसने कहा—"मित्र, केवल कण्ठ-स्वर ही नहीं, बात कहने का, प्रशसा करने का ढग भी तुम्हारा स्त्रैण है, कुपित मत होना। इस हिंस्र अगम वन में एकाकी बैठकर चित्र बनाना, बिना इन सब साधनों के तो बन सकता नहीं, परन्तु बातों ही बातों में सूर्य अस्त हो जायगा तो फिर तुम्हें कुटी तक पहुचने में कठिनाई होगी। आओ

चलें मित्र, क्या मैं तुम्हें हाथ का सहारा दूं ? कहीं चोट तो नहीं आई है ?

"नहीं, नहीं धन्यवाद । मैं चल सकने योग्य हूं, तुम आगे २ चलो मित्र ।"

और कुछ न कहकर अपनी रंग की तूलिका, कूर्चि और चित्रपट हाथ में ले, तथा वर्छा कंधे पर डाल आड़ी टेढ़ी पार्वत्य पगडंडियों पर वह तरुण निर्भय लम्बी २ डग भरता चल खड़ा हुआ और उसके पीछे अछताती पछताती देवी अम्बपाली पुरुष-वेश के असह्य भार को ढोतीहुई ।

कुटी तक पहुँचते २ सूर्यास्त हो गया । अम्बपाली को इससे बड़ी ढारस हुई । उनकी कृत्रिम पुरुष-वेष की त्रुटियां उस धूमिल प्रकाश में प्रकट नहीं हुईं परन्तु इस नितान्त एकान्त निर्जन वन में एकाकी अपरिचित युवक के साथ रात काटना एक ऐसी कठिन समस्या थी जिसने देवी अम्बपाली को बहुत चल विचलित कर दिया ।

कुटी पर पहुंच कर युवक ने देवी को प्राङ्गण में एक शिला दिखाकर कहा—"इस शिला पर क्षण भर बैठो मित्र, मैं प्रकाश की व्यवस्था कर दूं ।"

इतना कहकर और बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा किए वह कुटी में घुस गया । पत्थर घिस कर उसने आग जलाई । फिर उसने बाहर आकर कहा—"उस मंजूषा में आवश्यक वस्त्र हैं, और उस घड़े में जल है, सामने के ताक पर कुछ सूखा हरिण का मांस और फल रखे हैं, अपनी आवश्यकतानुसार ले लो । संकोच न करना । मैं थोड़ा ईंधन लेकर अभी आता हूं ।"

इतना कहकर कुटी-द्वार से एक भारी कुल्हाड़ी उठा कन्धे पर रख कर लंबे लंबे डग भरता हुआ वह अन्धकार में विलीन हो गया ।

———

: ९६ :

मंजुघोषा का प्रभाव

कुटिया में सामग्री बहुत संक्षिप्त थी। परन्तु कुटी में घुसते ही जिस वस्तु पर अम्बपाली की दृष्टि पड़ी उसे देखते ही वह आश्चर्य-चकित हो गई। वह जड़वत् खड़ी उस वस्तु को देखती रह गई। वह वस्तु एक महार्घ वीणा थी जो चन्दन की एक चौकी पर रखी गई थी। वीणा का विस्तार तो अद्भुत था ही, उसका निर्माण भी असाधारण था। वह साधारण मनुष्य के कौशल से बनी प्रतीत नहीं होती थी। उस पर अति अलौकिक हाथीदाँत की पच्चीकारी का काम हो रहा था; और उसमें जो तुम्बे काम में लाये गए थे उनके विस्तार तथा सुडौलता का वर्णन ही नहीं हो सकता था। देवी अम्बपाली बड़ी देर तक उसी वीणा को आँखें फाड़ २ कर देखती रही, उसने उसे पहिचान लिया था। वह इस बात से बड़ी विस्मित थी कि इस असाधारण वीणा को लाया कौन? और इस कुटी के एकान्त स्थान में इस दिव्य वीणा को लेकर रहने तथाच अनायास ही दुर्दान्त सिंह को मार गिराने की शक्ति वाला यह सरल वीर तरुण है कौन?

एक बार उसने फिर सम्पूर्ण कुटिया में दृष्टि फेंकी, दूसरी ओर पर्ण-भित्ति पर दो तीन बर्छे, एक विशाल धनुष और दो तूणीर बाणों से सम्पन्न टंगे थे, एक भारी खड्ग भी एक कोने में लटक रहा था। कुटी के बीचो-बीच एक बड़ा-सा शिला-खण्ड था जिस पर एक सिंह की समूची खाल पड़ी थी। उस पर एक आदमी भली भाँति सो सकता था। एक कोने में एक काष्ठ मंजूषा, दूसरे में मिट्टी की एक कुम्भकारिका जल से भरी रखी थी। यही उस कुटी की सम्पदा थी। यह सब घूमती

दृष्टि से देख देवी अम्बपाली उसी अमोघ वीणा को ध्यानपूर्वक देखती ठगी-सी खड़ी रह गई। उनके मस्तिष्क में कौशाम्बीपति उदयन का मिलन क्षण-चित्रित होने लगा।

युवक ने वेग से सिर का बोझ एक ओर कुटी के बाहर फेंक दिया। फिर वह भारी २ पैर रखता हुआ कुटी में आया। पदध्वनि सुन अम्बपाली ने युवक की ओर देखा। युवक ने अकचकाकर कहा—

"अरे, अभी तक तुमने वस्त्र भी नहीं बदले ? न थोड़ा आहार ही किया ? वहाँ खड़े उस वीणा को क्यों ताक रहे हो मित्र।"

"किन्तु यह वीणा तुमने पाई कहाँ से ?" अम्बपाली ने खोए-से स्वर में पूछा।

"तो तुम इसे पहचानते हो मित्र ?"

"निश्चय यह कौशाम्बी के देव-गन्धर्व-पूजित महाराज उदयन की अमोघ वीणा मंजुघोषा है, जो गन्धर्वराज चित्रसेन ने महाराज को दी थी।"

"वही है पर तुम इसे पहचानते कैसे हो मित्र ? इसका इतिहास तुम्हें कैसे विदित हुआ ? यह तो अतिगुप्त बात है ?" तरुण ने कुछ आश्चर्य की मुद्रा में कहा।

"मैंने इसे बजाते हुए देखा है ?"

"बजाते हुए देखा है ? असम्भव।"

"देखा है मित्र।" अम्बपाली ने अति गम्भीर स्वर में कहा।

"कहाँ ?"

"देवी अम्बपाली के आवास में ?"

"देवी अम्बपाली के आवास में ? किसने इसे बजाया था मित्र, तुम स्वप्न देख रहे हो।"

"कदाचित् स्वप्न ही हो, नहीं तो यह वीणा इस एकान्त कुटी में ? आश्चर्य, अति आश्चर्य।"

"परन्तु तुमने बजाते देखा था ? किसने बजाया था मित्र ?"

"पृथ्वी पर एक ही व्यक्ति तो इसे बजा सकता है।"

"महाराज उदयन ?"

"हाँ वही।"

"और वे देवी अम्बपाली के आवास में आये थे ?"

"गत वसंत में महाराज ने वीणा बजाई थी और देवी ने अवश नृत्य किया था।"

"और तुमने वह नृत्य देखा था मित्र ?"

"देवी अम्बपाली के नृत्य को देखने की सामर्थ्य किस को है ? उनकी दासियाँ जो नृत्य करती हैं वही देव दानव और नर लोक के लिये दुर्लभ है।"

"परन्तु मैंने देखा था, इस अमोघ वीणा के प्रभाव से अवश हो देवी ने नृत्य किया था।"

तरुण कुछ देर एकटक देवी अम्बपाली के मुंह की ओर देखता रहा, फिर बोला—

"तुम सत्य कहते हो मित्र, पर क्या देवी अम्बपाली से तुम्हारा परिचय है ?"

"यथेष्ट है।"

"यथेष्ट ? तब क्या तुम मुझे उपकृत करोगे ?"

"आज के उपकार के बदले में ?" अम्बपाली ने हँसकर कहा।

"नहीं २ मित्र, परन्तु मेरी एक अभिलाषा है।"

"क्या उसे मैं जान सकता हूं।"

"गोपनीय क्या है मित्र, मैं चाहता हूँ एक बार देवी अम्बपाली मेरे सम्मुख वही नृत्य करे।"

"तुम्हारे सम्मुख ? तुम्हारा साहस तो प्रशंसनीय है मित्र" अम्बपाली वेग से हँस पड़ी।

तरुण ने क्रुद्ध होकर कहा—"इतना क्यों हंसते हो मित्र ?"

परन्तु अम्बपाली हँसती ही रहीं, फिर उन्होंने हँसते हँसते कहा--"खूब कहा तुमने मित्र, देवी अम्बपाली तुम्हारे सम्मुख नृत्य करेंगी, क्या तुम जानते हो, देवी के नृत्य को देखने के लिये देव गन्धर्व भी असमर्थ नहीं हैं।"

तरुण खीज उठा, उसने कहा—"जितना तुम हँस सकते हो हंसो मित्र, पर मैं कहे देता हूं, देवी अम्बपाली को मेरे सामने नृत्य करना पड़ेगा।"

"और तुम कदाचित् तब यह वीणा इसी प्रकार बजाओगे जैसे महाराज उदयन ने बजाई थी।" अम्बपाली ने अच्छिन्न व्यंग करते हुए कहा।

"निश्चय।" तरुण के नेत्रों से एक ज्योति निकलने लगी।

तरुण के इस संक्षिप्त उत्तर से अम्बपाली विजड़ित हो गईं। उन्हें महाराज उदयन की वह अद्भुत भेंट याद आ गई। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—

"क्या कहा?" तुम इस वीणा को बजाओगे?"

"निश्चय।" तरुण ने कुछ कठोर स्वर में कहा।

"क्या तुम इसे तीन ग्रामों में एक ही साथ बजा सकते हो मित्र?"

"निश्चय।" तरुण उत्तेजना के मारे खड़ा हो गया।

अम्बपाली ने कहा—"किसने तुम्हें यह सामर्थ्य दी, सुनूं तो।"

"स्वयं कौशाम्बीपति महाराज उदयन ने। पृथ्वी पर दो ही व्यक्ति यह वीणा बजा सकते हैं।"

"एक महाराज उदयन।" अम्बपाली ने तीखे स्वर में कहा—

"और दूसरे?"

"दूसरा मैं?" तरुण ने दर्प से कहा।

अम्बपाली क्षण भर जड़ रह कर बोली—

"अस्तु, परन्तु तुम मुझसे क्या सहायता चाहते हो मित्र ?"

"अति साधारण, तुम देवी तक मेरा यह अनुरोध पहुंचा दो कि वे यहां मेरी कुटी में आकर एक बार मेरे सम्मुख वही नृत्य करें जो उन्होंने अमोघ गान्धर्वी मंजुघोषा वीणा पर महाराज उदयन के सम्मुख किया था।"

"इस कुटी में आकर ? तुम पागल तो नहीं हो गये मित्र, तुम मेरे प्राणत्राता अवश्य हो, पर मैं तुम्हारा अनुरोध नहीं ले जा सकता। देवी अम्बपाली तुम्हारी कुटी में आवेगी भला ?"

"और उपाय नहीं है मित्र, देवी के उस कुत्सित सर्वजन-सुलभ आवास में तो मैं नहीं जाऊंगा।"

अम्बपाली के हृदय के एक कोने में आघात हुआ, परन्तु उन्होंने उस अद्भुत तरुण से कुटिल हास्य भौंहों में छिपाकर कहा—

"तुम्हारा यह कार्य मैं कर दूंगा तो मुझे क्या मिलेगा ?"

"जो मांगो मित्र, इस वीणा को छोड़कर।"

"वीणा नहीं, केवल वह नृत्य मुझे देख लेने देना ?"

"यह न हो सकेगा, मानव चक्षुष उसे देख नहीं सकेंगे। महाराज का यही आदेश है।"

"तब मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।"

तरुण ने खीजकर कहा—

"जाने दो मित्र, मैं अपना कोई दूसरा मार्ग ढूंढ लूंगा, किन्तु, अरे, अभी मुझे भोजन की व्यवस्था भी करनी है, तुम वस्त्र बदलो मित्र, मैं घड़ी भर में आता हूं।"

तरुण ने बर्छा उठाया और बाहर तेजी से चला गया।

अम्बपाली ने बाधा देकर कहा—

"इस अन्धकार में अब वन में कहां भटकोगे मित्र"

"वह कुछ नहीं, यह मेरा नित्य व्यापार है। वहां उस कन्दरा में मेरा आखेट है, मैं अभी लाता हूं।"

तरुण वैसे ही लम्बे २ डग भरता अन्धकार में खो गया, अम्बपाली उसे ताकती रह गई।

: ६७ :

एकान्त वन में

उस एकान्त वन के गर्भ में स्थापित इस निर्जन कुटी में, दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में देवी अम्बपाली एकाकिनी उस कुटी के मध्य में स्थापित शिला-खण्ड पर बैठी कुछ देर एकटक उस दिव्य वीणा को देखती रही।

वह गत वर्ष की उस रहस्यपूर्ण भेंट को भूली नहीं थी, जब कौशाम्बीपति उदयन रहस्यपूर्ण रीति से अम्बपाली के क्रीड़ोद्यान में पहुंचे थे। उनका दिव्य रूप, गम्भीर मुखमुद्रा और अप्रतिम सौकुमार्य देख कर अम्बपाली चित्रलिखित-सी रह गई थी। और उनके इंगित पर इस वीणा के प्रभाव से अवश होकर उन्होंने अपार्थिव नृत्य किया था। पहले वह नृत्य के लिये तैयार नहीं थी परन्तु जिस समय यह अमोघ वीणा तीन ग्रामों में उस नररत्न ने बजाई, तब उनके हस्त-लाघव तथा वीणा की मधुर झंकार से कुछ ही क्षणों में अम्बपाली आत्म-विभोर होकर नृत्य करने लगी थी। वीणा की गति के साथ ही अतर्कित रीति से उनका पद-निक्षेप भी द्रुत-द्रुततर-द्रुततम होता गया था, और अन्त में वह क्षण आया था जब अम्बपाली के रक्त की प्रत्येक बिन्दु वीणा की उस झंकार के साथ उन्मत्त-असंयत हो गई थी। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे उनके अंग से ज्वालामुखी का अग्नि-समुद्र फूट पड़ा है, उससे वह तो विदग्ध नहीं हुई, किन्तु उन्हें ऐसा भास होने लगा था मानो वह अग्नि-समुद्र विश्व का विदग्ध कर रहा है। तब देवी अम्बपाली ने अपने कुसुम-कोमल गात्र को देवाविष्ट पाया था। वह मानो स्वयंभू विराट् पुरुष की प्रतिमूर्ति बनी, प्रलय-काल की

महासमुद्र में उठी वाड़वाग्नि की ज्वालाओं के बीच प्रलय के ध्वंस से त्रास पाए नरलोक, द्युलोक और सात पाताल के पर परमानन्द, तृप्ति और इन्द्रियातीत आनन्द से भरी, केवल चरण के अंगुष्ठ के एक नख मात्र पर वसुन्धरा का भार स्थिर कर स्वयं अस्थिर भाव से नाच रही है, और वह दिव्य गन्धर्व रूप प्रियदर्शी उदयन विद्युत्-गति से उस महार्घ वीणा के तारों पर महामेघ-गर्जना के नाद से ब्रह्माण्ड को प्रकम्पित कर रहा है। कैसे वह नृत्य समाप्त हुआ था और कैसे महाराज उदयन उस दिव्य वीणा को लेकर अम्बपाली के उद्यान से सहसा अन्तर्धान हो गये थे, यह आज सब अम्बपाली के मानस-चक्षुओं में घूम गया। वह बड़ी देर तक भाव-मग्न-सी जड़ बनी बैठी रहीं फिर चैतन्य होने पर उन्होंने अपने पुरुष-वस्त्रों के भीतर वक्षःस्थल में धारित महाराज उदयन की प्रदत्ता, बड़े २ गुलाबी मोतियों की माला को मोह सहित स्पर्श किया। वह उस अद्भुत आश्चर्यजनक स्वप्न की-सी घटना को कभी स्वप्न में और कभी जाग्रत ही कितनी ही बार मानस-चक्षुओं से देख चुकी हैं। फिर भी वह अब भी उसकी स्मृति से मोह में पड़ जाती हैं। वह इतना ही समझती हैं कि आगन्तुक पुरुष गन्धर्व-अवतार कौशाम्बीपति महाराज उदयन दिव्य पुरुष हैं।

आज इतने दिन बाद उसी असाधारण वीणा को यहां एकान्त कुटी में देख और यह जान कर कि यह एकान्त-वासी युवक, जो भावुक, चित्रकार, सरल, अतिथि-सेवी और दुर्धर्ष योद्धा, तथा कठिन कर्मठ होने के अपने प्रमाण कुछ ही क्षणों में दे चुका है, वास्तव में इस महामहिमामयी दिव्य वीणा को भी बजा सकता है और कदाचित् उसी कौशल से, जैसे उस दिन महाराज उदयन ने बजाई थी, इसी से वह मेरा नृत्य भी कराना चाहता है, परन्तु उसकी स्पर्द्धा तो देखनी चाहिये कि वह मेरे आवास में जाने में अपना मान-भंग मानता है, जहां स्वयं प्रियदर्शी महाराज उदयन ने प्रार्थी होकर नृत्य-याचना की थी।

कौन है यह लौह पुरुष ? कौन है यह साधारण और असाधारण का मिश्रण, कौन है यह अति सुन्दर, अति भव्य, अति मधुर, अति कठोर ? यह पौरुष की अक्षुण्ण मूर्ति, जीवन, प्रगति और विकास का महापुञ्ज ? कैसे वह उसकी अन्तरात्मा में बलात् प्रविष्ट होता जा रहा है ?

अम्बपाली की दृष्टि उसी वीणा पर थी, उन्हें हठात् उस वीणा के मध्य से एक मुख प्रकट होता-सा प्रतीत हुआ, यह उसी युवक का मुख था। कैसा प्रफुल्ल और कैसा प्रिय, अम्बपाली ने कुछ ऐसी अनुभूति की, जो अब तक उन्हें नहीं हुई थी। अपने हृदय की धड़कन वह स्वयं सुनने लगीं। उनका रक्त जैसे तप्त सीसे की भाँति खौलने और नसों में घूमने लगा। उनके नेत्रों के सम्मुख शत-सहस्र-लक्ष-कोटि रूपों में वही मुख पृथ्वी, आकाश और वायु-मण्डल में व्याप्त हो गया। उस मुख से वज्र-ध्वनि में सहस्र २ बार ध्वनित होने लगा—"नाचो अम्बपाली, नाचो, वही नृत्य, वही नृत्य।"

और अम्बपाली को अनुभव हुआ कि कोई दुर्धर्ष विद्युत्-धारा उनके कोमल गात में प्रविष्ट हो गई है। वह असंयत होकर उठीं। कब उनके कमनीय कुन्तलों से कृत्रिम पुरुषपने का आवरण वाला उष्णीष धरती पर गिर गया, कब वह उनका कृत्रिम पुरुष-वेश लोप हो गया, उन्हें भान नहीं रहा। उन्हे प्रतीत हुआ मानो वही प्रिय युवक उस चौकी पर बैठकर वैसे ही कौशल से वीणा पर तीन ग्रामों में अपना हस्तलाघव प्रकट कर रहा है, उसकी झंकार स्पष्ट उनके कानों में विद्युत्-प्रवाह के साथ प्रविष्ट होने लगी और असंयत, असावधान अवस्था में उनके चरण थिरकने लगे। आप ही आप उनकी गति बढ़ने लगी और वह आत्म-विस्मृत होकर वही अपार्थिव नृत्य करने लगीं।

: ६८ :

अपार्थिव नृत्य

युवक ने समूचा भुना हुआ हरिण कंधे पर लाद कर ज्यों ही कुटी में प्रवेश किया, वह वहां का दृश्य देखकर आश्चर्य-चकित जड़वत् रह गया, उसने देखा—पारिजात-कुसुम-गुच्छ की भांति शोभाधारिणी एक अनिंद्य सुन्दरी दिव्याङ्गना कुटी में आत्म-विभोर होकर असाधारण नृत्य कर रही है।

उसके सुचिक्कण, घने पादचुम्बी केश कुन्तल मृदु पवन में मोहक रूप में फैल रहे हैं। स्वर्ण-मृणाल-सी कोमल भुज-लतायें सर्पिणी की भांति वायु में लहरा रही हैं। कोमल कदली-स्तम्भ-सी जंघाएँ व्यवस्थित रूप में गतिमान होकर पीन नितम्बों पर आघात-सा कर कटि-प्रदेश को ऐसी हिलोर दे रही हैं जैसे समुद्र में ज्वार आया हो। कुन्दकली-सा धवल गात, चन्द्रकिरण-सी उज्ज्वल छवि और मुक्त नक्षत्र-सा दीप्तिमान् मुख-मण्डल सब कुछ अलौकिक था। क्षण भर में ही युवक विवश हो गया। उसने आखेट एक ओर फेंक कर वीणा की ओर पद बढ़ाया। अम्बपाली के पादक्षेप के साथ वीणा आप ही ध्वनित हो रही थी। युवक ने वीणा उठा ली, उस पर उँगली का आघात किया, नृत्य मुखरित हो उठा।

अब तो जैसे ज्वालामुखी ने ज्वलित, द्रवित सत्व भूगर्भ से पृथ्वी पर उडेलने आरंभ कर दिये हों, जैसे भूचाल आ गया हो। पृथ्वी डगमग करने लगी हो। वीणा की झंकृति पर क्षण भर के लिये देवी अम्बपाली सावधान होती और फिर भाव-समुद्र में डूब जाती।

उसी प्रकार देवी सम पर ज्यों ही पदक्षेप करती और निमिषमात्र को युवक की अंगुली सम पर आकर तार पर विराम लेतीं, तो वह निमेष

भर को होश में आ जाता। धीरे २ दोनों ही बाह्य ज्ञानशून्य हो गये। सुदूर नील गगन में टिमटिमाते नक्षत्रों की साक्षी में, उस गहन वन के एकान्त कक्ष में ये दोनों ही कलाकार पृथ्वी पर दिव्य कला को मूर्तिमती करते रहे—करते ही रहे। उनके पार्थिव शरीर जैसे उनसे पृथक् हो गये। उनका पार्थिव ज्ञान लोप हो गया, और जैसे वे दोनों कलाकार पृथ्वी का प्रलय हो जाने के बाद समुद्रों के भस्म हो जाने पर, सचराचर वसुन्धरा के शेष लीन हो जाने पर वायु की लहरों पर तैरते हुए ऊपर आकाश में उठते ही चले गये हों! और वहां पहुँच गये हों जहां भूः नहीं, भुवः नहीं, स्वः नहीं, पृथ्वी नहीं, आकाश नहीं, सृष्टि नहीं, सृष्टि का बन्धन नहीं; जन्म नहीं, मरण नहीं, एक नहीं, अनेक नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं।

———

: ९९ :

पीड़ानन्द

जब अम्बपाली की संज्ञा लौटी, तब कुछ देर तक तो वह यही न जान सकी कि वह कहां है, दिन निकल आया था—कुटी में प्रकाश-रेख के साथ प्रभात की सुनहरी धूप छनकर आ रही थी, सावधान होने पर अम्बपाली ने देखा कि वह भूमि पर अस्त-व्यस्त पड़ी है। वह उठ बैठी, कुटी में कोई न था। उसने पूर्व दिशा की एक खिड़की खोल दी। सुदूर पर्वतों की चोटियाँ धूप में चमक रही थीं, वन पक्षियों के कलरव से मुखरित हो रहा था, धीरे २ उसे रात की सब बातें याद आने लगीं। वीणा वैसी ही सावधानी से उसी चन्दन की चौकी पर रक्खी थी। तब क्या रात उसने स्वप्न देखा था? या सचमुच ही उसने नृत्य किया था। उसे स्मरण हो आया, एक गहरी स्मृति की संस्कृति उदय हो रही थी। वही युवक आत्मलीन होकर वीणा बजा रहा था। क्या सचमुच पृथ्वी पर महाराज उदयन को छोड़ दूसरा भी एक व्यक्ति वैसी ही वीणा बजा सकता है? तब कौन है वह युवक? क्या यह संसार-त्यागी, निरीह व्यक्ति कोई देव-शाप-ग्रस्त पुरुष है, अथवा कोई देव, गन्धर्व, यक्ष, असुर या कोई लोकोत्तर सत्व मानव रूप धर इस वन में विचरण कर रहा है।

देवी अम्बपाली अति व्यग्र होकर उसी युवक का चिन्तन करने लगी। क्या उसने सम्पूर्ण रात्रि अकेले ही उस कुटी में उसी के साथ व्यतीत की है? तो वह अब इस समय कहां है? कहां है वह?

अम्बपाली एक ही क्षण में उस कुटी में उस युवक के अभाव को इतना अधिक अनुभव करने लगी जैसे समस्त विश्व में ही कुछ अभाव रह गया हो। उसकी इच्छा हुई कि पुकारे—कहां हो, कहां हो तुम, अरे ओ,

अरे ओ कुसुम-कोमल, वज्र-कठिन, तुमने कैसे मुझे आक्रान्त कर लिया ? देवी अम्बपाली विचारने लगी । आज तक कभी भी तो ऐसा नहीं हुआ था, किसी पुरुष को देखकर, स्मरण करके— जैसा आज हो रहा है । पुरुष-जाति-मात्र मेरी शत्रु है, मैं उससे बदला लूंगी, उसने मेरे सतीत्व का बलात् हरण किया है । जब से मैंने दुर्लभ सप्तभूमि प्रासाद में पदार्पण किया है, कितने सामन्त, सेट्ठिपुत्र, सम्राट् और राजपुत्र सम्पदा और सौन्दर्य लेकर मेरे चरणों में टकराकर खण्ड २ हो गये । क्या अम्बपाली ने कभी किसी को पुरुष समझा ? वे सब निरीह प्राणी अम्बपाली की करुणा और विराग के ही पात्र बने । अचल हिमगिरि शृङ्ग की भांति अम्बपाली का सतीत्व अचल रहा, डिगा नहीं, हिला नही, विचलित हुआ नहीं, वह वैसा ही अस्पर्श्य अखण्ड बना रहा । यह सोचते सोचते अम्बपाली गर्व स तनकर खड़ी हो गई, फिर उसकी दृष्टि उस वीणा पर गई । वह सोचने लगी—किन्तु अब यह अकस्मात् ही क्या हो गया ? वह अचल हिमगिरि-शृङ्ग-सम गर्वीली अम्बपाली का अजेय सतीत्व आज विगलित होकर उस मानव के चरण पर लोट रहा है ? उसने आर्तनाद करके कहा—"अरे मैं आक्रान्त हो गई, मैं असम्पूर्ण हो गई, निरीह नारी मैं कैसे इस दर्पमूर्ति पौरुष के विना रह सकती हूं ? परन्तु वह मुझे आक्रान्त करके छिप कहां गया ? उसने केवल मेरी आत्मा ही को आक्रान्त किया, शरीर को क्यों नहीं ? यह शरीर जला जा रहा है, इसमें आबद्ध आत्मा छटपटा रहा है, इस शरीर के रक्त की एक २ बूँद प्यास, प्यास, प्यास चिल्ला रही है, इस शरीर की नारी अकेली रुदन कर रही है । अरे ओ, आओ तुम, इसे अकेली न छोड़ो; अरे ओ पौरुष, ओ निर्मम, कहां हो तुम; इसे आक्रान्त करो; इसे विजय करो, इसे अपने में लीन करो । अब एक क्षण भी नही रहा जाता । यह देह, यह अधम नारी-देह, नारीत्व की समस्त सम्पदा सहित इस निर्जन वन में अकेली, अरक्षित पड़ी है, इसे लूट लो, अपने अदम्य पौरुष से अपने में आत्मसात् कर लो तुम, जिससे यह अपना आपा खो दे; कुछ शेष न रहे ।"

अम्बपाली ने दोनों हाथों से कसकर अपनी छाती दबा ली। उसकी आंखों से आग की ज्वाला निकलने लगी, लुहार की धौंकनी की भांति उसका वक्षस्थल ऊपर नीचे उठने बैठने लगा। उसका समस्त शरीर पसीने की रुपहली बिन्दुओं से भर गया। उसने चीत्कार करके कहा—"अरे ओ निर्मम, कहां चले गये तुम, आओ, गर्विणी अम्बपाली का समस्त दर्प मर चुका है, वह तुम्हारी भिखारिणी है, तुम्हारे पौरुष की भिखारिणी।" उसने उन्माद-ग्रस्त-सी होकर दोनों हाथ फैला दिये।

युवक ने कुटी-द्वार खोल कर प्रवेश किया, देखा कुटी के मध्य भाग में देवी अम्बपाली उन्मत्त भाव-सी खड़ी हैं, बाल बिखरे हैं, चेहरा हिम के समान श्वेत हो रहा है, अङ्ग-प्रत्यङ्ग काँप रहे हैं।

उसने आगे बढ़कर अम्बपाली को अपने आलिंगन-पाश में बांध लिया, और अपने जलते हुए ओठ उसके ओठों पर रख दिये, उसके उछलते हुए वक्ष को अपनी पसलियों में दबोच लिया, सुख के अतिरेक से अम्बपाली संज्ञाहीन हो गई, उसके उन्मत्त नेत्र मुँद गये, अमल, धवल दन्तपंक्ति से अस्फुट सीत्कार निकलने लगा, मस्तक और नासिका पर स्वेद बिन्दु हीरे की भाँति जड़ गये, युवक ने कुटी के मध्य-भाग में स्थित शिला-खण्ड के सहारे अपनी गोद में अम्बपाली को लिटा कर उसके अनगिनत चुंबन ले डाले। होठ पर, ललाट पर, नेत्रों पर, गण्डस्थल पर, भौंहों पर, चिबुक पर। पर उसकी तृषा शान्त नहीं हुई। अग्निशिखा की भाँति उसके प्रेमदग्ध होठ न जाने कब तक उस भाव-विभोर युवक की प्रेम-पिपासा को तृप्त करते रहे।

धीरे २ अम्बपाली ने नेत्र खोले। युवक ने संयत होकर उसका सिर शिलाखण्ड पर रख दिया, अम्बपाली सावधान होकर बैठ गई, दोनों ही लज्जा के सरोवर में डूब गये, और उनकी आंखों के भीगे हुए पलक जैसे

आनन्द-जल के भार को सहन न कर नीचे की ओर झुकते ही चले गये। युवक ही ने मौन भंग किया। उसने कहा—"देवी अम्बपाली, मुझे क्षमा करना, मैं संयत न रह सका।"

अम्बपाली प्यासी आँखों से उसे देखती रही। इसके बाद सूखे होठों में हँसी भर कर उसने कहा—"अन्ततः तुमने मुझे जान लिया प्रिय।"

"कल जिस क्षण मैंने आपको नृत्य करते देखा था तभी जान गया था देवी।"

"वह नृत्य तुम्हें भाया?"

"नरलोक में न तो कोई वैसा नृत्य कर सकता है और न देख ही सकता है देवी।"

"और वह वीणा-वादन?"

"कुछ बन पड़ता है पर अभी अधिकारपूर्ण नहीं। मैं तुम्हारे साथ बजा सकूँगा इसकी आशा न थी, पर तुम्हारे नृत्य ने ही सहायता दी।"

"ऐसा तो महाराज उदयन भी नहीं बजा सकते प्रिय" देवी ने मुस्करा कर कहा। युवक हँस दिया, कुछ देर दोनों चुप रहे। दोनों के हृदय आन्दोलित हो रहे थे। युवक को अम्बपाली का परिचय एवं नाम प्रगट हो गया था, पर अंबपाली अभी तक उस पुरुष से नितान्त अनभिज्ञ थी, जिसने उनका दुर्जय हृदय जीत लिया था। किन्तु वह पूछने का साहस नहीं कर सकती थी। कुछ सोच विचार के बाद उन्होंने कहा—

"अब इसके बाद?

"इसके बाद?" युवक ने यन्त्र-चालित-सा होकर कहा।

"मुझे अपने आवास में जाना होगा प्रिय, परन्तु मै तुम्हारे कुल गोत्र एवं नाम से भी परिचित नहीं, अपना परिचय देकर बाधित करो।"

"मुझे तुम 'सुभद्र' के नाम से स्मरण रख सकती हो।"

"अभी ऐसा ही सही, तो प्रिय सुभद्र, अब मुझे जाना होगा।"

"अभी नहीं देवी अंबपाली।"

अंबपाली ने प्रश्नसूचक ढंग से युवक की ओर देखा।

युवक ने कहा—"तुम्हें फिर नृत्य करना होगा।"

"नृत्य ?"

"हां, और उसमें कठिनाई यह होगी कि मैं वीणा न बजा सकूँगा।"

"परन्तु ... ..."

"मैं तुम्हारी नृत्य-छवि का चित्र खींचूँगा।"

"परन्तु अब नृत्य नहीं होगा।"

"निस्सन्देह इस बार नृत्य होगा तो प्रलय हो जायगी, परन्तु नृत्य का अभिनय होगा।"

"अभिनय ?"

"हां, वह भी अनेक बार।"

"अनेक बार ?"

"मुझे प्रत्येक भाव-विभाव को चित्र में अङ्कित करना होगा देवी !"

"और मेरा आवास में जाना ?"

"तब तक स्थगित रहेगा।"

"किन्तु ... ..." अंबपाली चुप रही।

युवक ने कहा—"किन्तु क्या देवी ?"

"यहां क्यों ? तुम आवास में आकर चित्र उतारो।"

"तुम्हारे आवास में ! जो सार्वजनिक है ? जो तुम्हें तुम्हारी शुल्क में दिया गया है ? देवी अम्बपाली, मैं लिच्छवि गणतन्त्र का विषय नहीं हूँ। मै इस धिक्कृत कानून को सहन नहीं कर सकता जिसके आधार पर तुम्हारी अप्रतिम प्रतिमा बलात् सार्वजनिक कर दी गई।"

"तो वह तुम्हारी दृष्टि में एक व्यक्ति की वासना की सामग्री होनी चाहिये थी ?"

"क्यों नहीं, और वह एक व्यक्ति तुम्हीं स्वयं, और कोई नहीं।"

"यह तो बड़ी अद्भुत बात तुमने कही भद्र, किन्तु मैं अपनी ही वासना की सामग्री कैसे ?"

"सभी तो ऐसे हैं देवी, व्याकरण का जो उत्तम पुरुष है, वही पृथ्वी की सबसे बड़ी इकाई है, और वही अपनी वासना का भोक्ता है। उसकी वासना ही अपनी स्पर्धा के लिये, व्याकरण का मध्यम पुरुष नियत करती है।"

अम्बपाली चुपचाप सुनती रही। युवक ने फिर कहा—"इसी से तो जब तुम्हारी वासना का भोग, तुम्हारा वह अलौकिक व्यक्तित्व बलात् सार्वजनिक कर दिया गया तब तुम कितनी क्षुब्ध हो गई थी।"

अम्बपाली इस असाधारण तर्क से अप्रतिभ हो गई, वह सोच रही थी : पृथ्वी पर एक ऐसा व्यक्ति अन्ततः है तो, जिसके तलुओं में मेरे आवास पर आते छाले पड़ते हैं। जो मुझे सार्वजनिक-स्त्री के रूप में नहीं देख सकता। आह, मैं ऐसे पुरुष को हृदय देकर कृत-कृत्य हुई, शरीर भी देती तो शरीर धन्य हो जाता। परन्तु इसे तो मैं बेच चुकी मुँह-मांगे मूल्य पर, हाय रे वेश्या जीवन।"

युवक ने कहा—"क्या सोच रही हो देवी !"

"यही, कि जिसने प्राणों की रक्षा की उसका अनुरोध टाला कैसे जा सकता है ?"

सुभद्र ने मुस्करा कर रंग की प्यालियों को ठीक किया और कूची हाथ में लेकर चित्रपट को तैयार करने लगा। कुछ ही क्षणों में दोनों कलाकार अपनी २ कलाओं में डूब गये। चित्रकार जैसी २ भावभंगी का संकेत अम्बपाली को करता, अम्बपाली यन्त्र-चालिता के समान उसका

पालन करती जाती थी। देखते ही देखते चित्रपट पर दिव्य लोकोत्तर भङ्गिमा-युक्त नृत्य की छवि अंकित होती गई। दोपहर हो गया, दोनों कलाकार थक कर चूर २ हो गये। श्रमबिन्दु उनके चेहरों पर छा गए। हँसकर अम्बपाली ने कहा—

"अब नहीं, अब पेट में आंतें नृत्य कर रही हैं, उतारोगे तुम इनकी छवि प्रिय।"

युवक सरल भाव से हँस पड़ा। उसने हाथ की कूची एक ओर डाल दी और अम्बपाली के पार्श्व में शिलाखण्ड पर आ बैठा। अम्बपाली के शरीर में सिहरन दौड़ गई।

युवक ने कहा—"देवी अम्बपाली! कभी हम इन दुर्लभ क्षणों के मूल्य का भी अंकन करेंगे?"

"उसके लिए तो जीवन के अगणित साँस है।"

"किन्तु तुम भी करोगे प्रिय?"

"ओह, तुमने मेरी शक्ति देखी तो?"

"देखी है। उस समय एक ही बार में अनायास ही सिंह को मार डालने में और इसके बाद उससे भी कम प्रयास से अधम अम्बपाली को आक्रान्त कर डालने में। अब और भी कुछ शक्ति प्रदर्शन करोगे?"

"इन दुर्लभ क्षणों के मूल्य का अंकन करने में देवी अम्बपाली, आपकी अभी बखानी हुई मेरी सम्पूर्ण शक्ति भी समर्थ नहीं होगी?"

वह हठात् मौन हो गया। अम्बपाली पीपल के पत्ते के समान काँपने लगी। युवक का शरीर उसके वस्त्रों से छू रहा था, मध्याह्न का सुखद पवन धीरे २ कुटिया में तैर रहा था, उसी से आन्दोलित होकर अम्बपाली की दो एक अलकावलियां उसके पूर्ण चन्द्र के समान ललाट पर क्रीडा कर रही थीं। युवक ने अम्बपाली का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर कहा—"देवी अम्बपाली, यदि मैं यह कहूँ कि मैं तुम्हें प्यार करता हूं तो यह वास्तव में बहुत कम है, मैं जो कुछ भी वाणी से

कहूँ अथवा अंग-परिचालन से प्रकट करूं वह सभी कम है, बहुत ही कम। फिर भी मैं एक बात कहूँगा देवी, अब और फिर भी सदैव याद रखना कि मैं तुम्हारा उपासक हूं, तुम्हारे अंग-प्रत्यंग का, रूप यौवन का, तुम्हारी गर्वीली दृष्टि का, संस्कृत आत्मा का। तुम सप्त-भूमि प्रासाद में विश्व की सम्पदाओं को चरणतल से रूंधते हुये सम्राटों और कोट्यधिपतियों के द्वारा मणिमुक्ता के ढेरों के बीच में बैठी हुई जब भी अपने इस अकिंचन उपासक का ध्यान करोगी—इसे अप्रतिम ही पाओगी।"

युवक जड़वत् अम्बपाली के चरणतल में खिसक कर गिर गया। अम्बपाली भी अर्ध-सुप्त-सी उसके ऊपर झुक गई। वह पीली पड़ गई थी, उसका हृदय धड़क रहा था। बड़ी देर बाद उसके वक्षस्थल पर अपना सिर रखे हुए अम्बपाली ने धीरे से कहा—"तुमने अच्छा नहीं किया भद्र, मेरा सर्वस्व हरण कर लिया, अब मैं जीऊँगी कैसे? यह तो कहो।" उन्होंने युवक के प्रशस्त वस्त्र में अपना मुंह छिपा लिया और सिसक २ कर बालिका की भांति रोने लगी। फिर एकाएक उन्होंने सिर उठाकर कहा—

"मैं नहीं जानती तुम कौन हो, मनुष्य हो कि देव, गन्धर्व, किन्नर या कोई मायावी दैत्य हो, मुझे तुमने समाप्त कर दिया है भद्र। चलो विश्व के उस अतल तल पर जहां हम कल नृत्य करते २ पहुंच गए थे, वहां हम तुम एक दूसरे में अपने को खोकर अखण्ड इकाई की भांति रहें।"

"सो तो रहने ही लगे प्रियतमे, कल उस मुद्रावस्था में जहां पहुंच कर हम लोग एक हो गए हैं, वहां अखण्ड इकाई के रूप में हम याव-च्चन्द्र दिवाकर रहेंगे। अब यह हमारा तुम्हारा पार्थिव शरीर कहीं भी रहकर अपने भोग भोगे इससे क्या? और यदि हम इसकी वासना ही

के पीछे दौड़ें तो प्रिये, प्रियतमे, मैं अधम अपरिचित तो कुछ नहीं हूं, पर तुम्हारा सारा ही वैयक्तिक महत्त्व नष्ट हो जायगा।"

वह धीरे से उठा, अपने वक्ष पर जड़वत् पड़ी अम्बपाली को कोमल सहारा देकर उसका मुख ऊँचा किया।

एक मृदु मधुर चुम्बन उसके अधरों पर और नेत्रों पर अंकित किया और कहा—"कातर मत हो प्रिये प्राणाधिके, तुम-सी बाला पृथ्वी पर कदाचित् ही कोई हुई होगी, मैं तुम्हें अनुमति देता हूँ—अपनी विजयिनी भावनाओं को विश्व की संपदा के चूडपर्यन्त ले जाना, मेरी शुभ कामना तुम्हारे साथ रहेगी प्रिये!"

अम्बपाली के मुंह से शब्द नहीं निकला।

आहार करके सुभद्र ने कुछ समय के लिए कुटी से बाहर जाने का अनुमति लेकर कहा—

"मैं सूर्यास्त से प्रथम ही आ जाऊँगा प्रिये, तुम थोड़ा विश्राम कर न । तब तक, यहां कोई भय नहीं है।"

और सूर्यास्त के समय संध्या के अस्तंगत लाल प्रकाश के नीचे गहरी श्यामच्छटा शोभा को निरखते हुए, वे दोनों असाधारण प्रेमी कुटी द्वार पर स्थित शिलाखण्ड पर बैठे अपनी २ आत्मा को विभोर कर रहे थे।

: १०० :

अभिन्न हृदय

उसी शिलाखण्ड पर गहन-तिमिराच्छन्न नीलाकाश में हीरे की भांति चमकते हुए तारों की परछाईं में दोनो प्रेमी हृदय एक दूसरे को आप्यायित कर रहे थे। युवक शिला का ढासना लगाए बैठा था, और अम्बपाली उसकी गोद में सिर रखकर लेटी हुई थी।

अम्बपाली ने कहा—"प्रिय, क्या भोग ही प्रेम का पुरस्कार नहीं है?"

"नहीं प्रिये, भोग तो वासना का यत्किंचित् प्रतिकार है।"

"और वासना? क्या वासना प्रेम का पुष्प नहीं?"

"नहीं प्रिये, वासना क्षुद्र इन्द्रियों का नगण्य विकार है।"

"परन्तु प्रिय, इस वासना और भोग ने तो विश्व की सम्पदाओं को भी जीत लिया है।"

"विश्व की सम्पदायें भी तो प्रिये, भोग का ही भोग हैं।"

"जब विश्व की सम्पदायें भोग और वासनाओं को अर्पण कर दी गईं तब प्रेम के लिए क्या रह गया?"

"आनन्द।"

"कौन-सा आनन्द प्रिय।'

"जो इन्द्रिय के भोगों से पृथक् और मन की वासना से दूर है। जिसमें आकांक्षा भी नहीं, उसकी पूर्ति का प्रयास भी नहीं और पूर्ति होने पर विरक्ति भी नहीं, जैसी कि भोगों में और वासना में है।"

"परन्तु प्रिय, शरीर में तो वासना ही वासना है, और भोग ही उसे सार्थक करते हैं।"

"इसी से तो प्रेम के शैशव ही में शरीर भोगों में व्यय हो

जाता है, प्रेम का स्वाद उसे मिल कहां पाता है ? प्रेम को विकसित होने को समय ही कहां मिलता है।"

"तब तो.........."

"हाँ, हाँ प्रिये, यह मानव का परम दुर्भाग्य है, क्योंकि प्रेम को विश्व प्राणियों में उसे ही प्राप्त है, भोग और वासना तो पशु-पक्षियों में भी है, पर मनुष्य पशु-भाव से तनिक भी तो आगे नहीं बढ़ पाता है।"

"तब तो प्रिय, यौवन और सौन्दर्य कुछ रहे ही नहीं।"

"क्यों नहीं, मनुष्य का हृदय तो कला का उद्गम है। यौवन और सौन्दर्य ये दो ही तो कला के मूलाधार हैं। विश्व की सारी ही कलायें इसी में से उद्भासित हुई हैं प्रिये, इसी से यदि कोई यथार्थ पौरुष-वान् पुरुष हो, और यौवन और सौन्दर्य को वासना और भोगों की लपटों में झुलसने से बचा सके तो उसे प्रेम का रस चखने को मिल सकता है प्रिये, देवी अम्बपाली, वह रस अमोघ है। वह आनन्द का स्रोत है, वह वर्णनातीत है। उसमें जैसे आकांक्षा नहीं, वैसे ही तृप्ति भी नहीं, इसी प्रकार विरक्ति भी नहीं। वह तो जैसे जीवन है, अनन्त प्रवाहयुक्त शाश्वत जीवन, अतिमधुर, अतिरम्य, अतिमनोरम। जो कोई उसे पा लेता है उसका जीवन धन्य हो जाता है।"

अम्बपाली ने दोनों मृणाल-भुज युवक के कण्ठ में डाल कर कहा—

"प्रियतम, मैंने उसे पा लिया।"

"तो तुम निहाल हो गईं प्रिये, प्राणाधिके !"

"मैं निहाल हो गई, निहाल हो गई, अपना सुख, अपना आनन्द मैं कैसे तुम्हें बताऊं।" उसने आनन्द-विह्वल होकर कहा।

"आवश्यकता नहीं है प्रिये, प्रेम की अथाह धारा में प्रेम की मन्दाकिनी मिल गई है, तुम्हारे अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति मैं अपने रक्त-प्रवाह में कर रहा हूं।"

युवक ने धीरे से नीचे झुक कर अम्बपाली के प्रफुल्ल होठों का चुम्बन लिया। अम्बपाली ने भी चुम्बन का प्रत्युत्तर देकर युवक के वक्षस्थल में अपना मुंह छिपा लिया।

कुछ देर बाद युवक ने कहा—

"मौन कैसे हो गईं प्रिये।"

"कुछ कहने को तो रहा ही नहीं अब।"

"सब कुछ जान गईं?"

"सब कुछ।"

"सब कुछ समझ गईं?"

"सब कुछ।"

'तुम धन्य हुईं प्रिये, तुम अमर हो गईं।"

युवक ने धीरे से अम्बपाली को अपने बाहुपाश से मुक्त करके कहा—

"तो अब विदा प्रिये, कल के सुप्रभात तक।"

अम्बपाली का मुख सूख गया। उसने कहा—

"तुम कहां सोओगे?"

"सामने अनेक गुफाएं हैं किसी एक में।"

"किन्तु...... ......"

"किन्तु नहीं प्रिये।" युवक ने हंसकर एक बार अम्बपाली के होठों पर और एक चुम्बन अंकित किया और भारी बर्छा कंधे पर रख कधे का वस्त्र ठीक कर अन्धकार में विलीन हो गया।

अम्बपाली, देवी अम्बपाली उस भूमि पर—जहां अभी २ युवक के चरण पड़े थे अपना वक्ष रगड़ रगड़ कर आनन्द-विह्वल हो आंसुओं की गंगा बहाने लगी।

———

: १०१ :

विदा

सात दिन के अनवरत प्रयत्न से चित्र बनकर तैयार हो गया। इसके लिये अम्बपाली को प्रत्येक भाव-विभाव के लिये अनेक बार नृत्य करना पड़ा। जो चित्र सम्पूर्ण हुआ वह साधारण चित्र न था, वह मूर्तिमान कला थी। देवी अम्बपाली की अलौकिक शरीर-छटा और कला का विस्तार ही उस चित्र में न था, उसमें अम्बपाली की असाधारण संस्कृत आत्मा तक प्रतिबिम्बित थी। वह चित्र वास्तव में सम्पूर्ण रीति पर आँखों से नहीं देखा जा सकता था। उसे देखने के लिये दिव्य भावुकता की आवश्यकता थी। चित्र को देखकर अम्बपाली स्वयं भी चित्रवत् हो गई।

चित्र की समाप्ति पर सान्ध्य भोजन के उपरान्त जब युवक गुफा में शयन के लिये जाने लगा तब उसने कहा—

"प्रियतमे, आज इस कुटी में तुम्हारी अन्तिम रात्रि है, कल भोर ही में हम नगर को चलेंगे। मैं अश्व लेता आऊंगा प्रिये। तनिक जल्दी तैयार हो जाना, मैं सूर्योदय से प्रथम ही तुम्हें नगर पौर पर छोड़कर लौट आना चाहता । दिन प्रकाश में मैं नगर में जाना नहीं चाहता।"

कल उसे इस कुटिया से चला जाना होगा, यह सुनकर अम्बपाली का हृदय वेग से धड़क उठा, वह कहना चाहती थी—कल क्यों प्रिय, मुझे अभी और यहीं रहने दो। सदैव रहने दो। पर वह कह न सकी। उसकी वाणी जड़ हो गई।

युवक ने कहा--"कुछ कहना है प्रिये ?"

"बहुत कुछ, परन्तु कहूं कैसे ?"

"कहो प्रिये, कहो।"

"तुम छद्मवेशी गूढ़ पुरुष हो, मुझे अपने निकट ले आओ प्रिय, मुझे परिचय दो।"

युवक ने सूखी हँसी हँस कर कहा—

"इतना होने पर भी परिचय की आवश्यकता रह गई प्रिये ? तुम्हारा हूँ यह तो जान ही गई, और जो ज्ञेय होगा, यथासमय जानोगी, उसके लिये व्याकुलता क्यों ?"

कुछ देर चुप रहकर अम्बपाली ने कहा—

"तुमने कहां से यह अगाध ज्ञान-गरिमा प्राप्त की है भद्र, और यह सामर्थ्य ?"

"ओह मैं तक्षशिला का स्नातक हूं प्रिये, तिस पर अंग, वंग, कलिंग चम्पा, ताम्रपर्णी और सम्पूर्ण जम्बूद्वीपस्थ पूर्वीय उपद्वीपों में मैं भ्रमण कर चुका हूं, और मेरी यह शरीर-सम्पत्ति पैतृक है।"

क्षण भर स्तब्ध खडी रह कर अम्बपाली युवक के चरणों में झुक गईं, उन्होंने कहा—

"भद्र, अम्बपाली तुम्हारी अनुगत शिष्या है।"

"और गुरु भी।" युवक ने अम्बपाली को हृदय से लगा कर कहा।

"गुरु कैसे ?"

"फिर जानोगी प्रिये, अभी विदा, सुप्रभात के लिये।"

"विदा प्रिय।"

युवक अन्धकार में खो गया और देवी अम्बपाली अपने आप में ही खो गईं।

वह रात भर भूमि पर लेटती रही, युवक की पद-धूलि को हृदय से लगाए।

एक दण्ड रात रहे, युवक ने कुटी-द्वार पर आघात किया।

"तैयार हो प्रिये!"

"हाँ भद्र!"

युवक भीतर आगया।

"क्या रात को सोई नहीं प्रियतमे?"

"सोना जागना एक ही हुआ प्रिय!"

युवक कुछ देर चुप रहा। फिर एक गहरी साँस छोड़ कर उसने कहा—

"अश्व बाहर है। क्या कुछ समय लगेगा?"

"नहीं, चलो।"

युवक ने वह चित्र और वीणा उठा ली। उसने सिंह की खाल आगे रखकर कहा—

"यह उसी सिंह की खाल है। कहो तो इसे तुम्हारी स्मृति में मैं रख लूं।"

"वह तुम्हारी ही है प्रिय, और इस अधम शरीर की खाल, हाड़, माँस, आत्मा भी।"

अम्बपाली की आँखों से मोती बिखरने लगे।

दोनों धीरे धीरे कुटी से बाहर हुए। अम्बपाली के जैसे प्राण निकलने लगे। नीचे आकर देखा—एक ही अश्व है।

"एक अश्व क्यों?"

"तुम्हारे लिए।"

"और तुम?"

"मैं तुम्हारा अनुचर पादातिक।"

"परन्तु पादातिक क्यों?"

"तुम्हारे गुरुपद के कारण ।"

"यह नहीं हो सकेगा, प्रिय !"

"अच्छी तरह हो सकेगा, आओ मैं आरोहण में सहायता करूं ।"

"परन्तु तुम पादातिक क्यों भद्र ?"

"मुझे देवी अम्बपाली के साथ २ अश्व पर चलने की, क्षमता नहीं है प्रिये, देवी अम्बपाली लोकोत्तर सत्व हैं ।"

युवक का कंठ स्वर कांपने लगा ।

अम्बपाली ने उत्तर नहीं दिया, वह चुपचाप अश्व पर चढ़ गई । युवक पादातिक चलने लगा । दोनों धीरे २ उपत्यका में उतरने लगे ।

ऊषा का प्रकाश प्राची दिशा को पीला रंग रहा था, वृक्ष और भवन अपनी ही परछाईं के अनुरूप अन्धकार की मूर्ति बने थे । उसी अन्धकार में से, वन के निविड़ भाग में होकर वह अश्वारोही और उसका संगी दोनों धीरे २ वैशाली के नगर-द्वार पर आ खड़े हुए ।

अभी द्वार बन्द थे । युवक ने आघात किया, प्रश्न हुआ—

"कौन है यह ?"

"चित्रभू, मित्र ।"

"ठीक है ठहरो, खोलता हूं । भारी सूचिका-यन्त्र के घूमने का शब्द हुआ और मन्द चीत्कार करके नगर-द्वार खुल गया ।

युवक ने अश्व के निकट जा अम्बपाली से मृदु कण्ठ से कहा—

"विदा प्रिये !"

"विदा प्रियतम !"

दोनों ही के स्वर कंपित थे, वीणा और चित्र देवी को देकर युवक तीव्र गति से लौट कर वन के अन्धकार में विलीन हो गया, और अम्बपाली धीरे २ अपने आवास की ओर चली ।

———

: १०२ :

वैशाली की उत्सुकता

जैसे देवी अम्बपाली के सिंह द्वारा आक्रान्त होकर निधन का समाचार आग की भांति वैशाली के जनपद में फैल गया था, वैसे ही देवी के अकस्मात् लौट आने से नगर में हलचल मच गई। सप्तभूमि प्रासाद के चमकते स्वर्ण-कलशों के बीच विविध मीनध्वज वायु में लहराने लगे। प्रासाद की सिंह पौर पर महादुन्दुभी अनवरत बजने लगी। जिसका गम्भीर घोष सुनकर वैशाली के नागरिक निद्रा से जग कर आंख मलते हुए सप्तभूमि प्रासाद की ओर दौड़ चले। देवी की आज्ञा से संपूर्ण प्रासाद फूलों, पताकाओं, तोरणों और रत्नजटित बन्दनवारों से सजाया गया। भृत्य, बन्दी चांदी के तूणीरों द्वारा बारंबार गगनभेदी नाद करने लगे।

नागरिकों का ठठ अम्बपाली के बाहरी प्राङ्गण और सिंह पौर पर एकत्रित हो गया था। सभी देवी के इस प्रकार अकस्मात् लोप हो जाने और फिर अकस्मात् ही अपने आवास में लौट आ जाने की रहस्यपूर्ण अद्भुत कहानी विविध भांति कह रहे थे। सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि देवी अम्बपाली को गहन वन में क्रीडारत गन्धर्वराज चित्ररथ गन्धर्वलोक में ले गये थे, वहां गन्धर्वराज ने मंजुघोषा वीणा स्वयं बजाई थी और समस्त दिव्य-देहधारी गन्धर्वों के सम्मुख देवी अम्बपाली ने अपार्थिव नृत्य किया था। उसकी प्रतिच्छवि गन्धर्वराज ने स्वयं निर्मित की है तथा दिव्य मंजुघोषा वीणा भी देवी को गन्धर्वराज ने दी है।

दिन भर अम्बपाली अपने शयन-कक्ष में चुपचाप पड़ी रहीं। उन्होंने सन्ध्या से प्रथम किसी को भी अपने सम्मुख आने देने का निषेध कर दिया था। इससे बहुत से सेट्ठिपुत्र, राजवर्गी और सामन्तकुमार आ-आकर लौट गए थे। कुछ वहीं प्राङ्गण और अलिन्द में टहलने लगे थे। तब विनयावनत मदलेखा ने उन सब को स्फटिक कक्ष से मृदु मन्द मुस्कान के साथ सन्ध्या के बाद आने को कहा—अभी देवी श्रान्त, क्लान्त हैं—यह जानकर किसी ने हठ नहीं किया। किन्तु आज के सान्ध्य उत्सव की तैयारियां बड़े ठाठ से होने लगीं।

स्फटिक के दीपस्तम्भों पर सुगन्धित तेल से भरे स्नेह-पात्र रख दिये गये। तोरण और बंदनवारों एवं रंग-बिरंगी पताकाओं से स्वागत-गृह सजाया जाने लगा। कोमल उपाधान युक्ति से रख दिये गये। शिवि, कोमव, क्षौम बिछाए गये। आसन्दी सजाई गईं। रत्नजटित मद्य-पात्रों में सुवासित मद्य भरा गया। स्थान २ पर चौसर बिछाई गईं। सुन्दर दासियां चुपचाप फुर्ती से सब काम करतीं दौड़-धूप कर रही थीं।

सन्ध्या की लाल प्रभा अस्तंगत सूर्य के चारों ओर फैल गई और वह धीरे २ अन्धकार में व्याप्त हो गई। सप्तभूमि-प्रासाद सहस्र दीप-रश्मियों से आलोकित हो उठा। उसका प्रकाश रंगीन गवाक्षों से छन २ कर नील पद्म-सरोवर पर प्रतिबिम्बित होने लगा। धीरे २ नागरिक अपने २ वाहनों पर चढ़ २ कर प्रासाद के मुख-द्वार पर आने लगे। दण्डधर और दौवारिक विविध व्यवस्था करने लगे। युवक नागरिक कौतूहल और उत्साह से भरे अम्बपाली को एक बार देख भर लेने को व्याकुल हो उठे। परन्तु पहर रात गये तक भी देवी अपने एकान्त कक्ष से बाहर नहीं निकलीं। इस समय वैशाली के श्रीमन्त तरुणों से अतिथि-गृह भर गया था। डेढ़ दण्ड रात बीतने पर अम्बपाली ने प्रमोद-गृह में प्रवेश किया। इस समय उनका परिधान बहुत सादा था। उनका मुख अभी भी सफेद

हो रहा था। नेत्रों में विषाद और वेदना ने एक अप्रतिम सौन्दर्य ला दिया था। सेट्ठिपुत्र और सामन्त युवक देवी का स्वागत करने को आगे बढ़े। देवी अम्बपाली ने आगे बढ़ कर मृदु मन्द स्वर में कहा—

"मित्रो, आप का स्वागत है, आप सब चिरञ्जीव रहें।"

"देवी चिरञ्जीवी हों" अनेक कण्ठों से यही स्वर निकला। देवी मुस्कराईं और आगे बढ़ कर स्फटिक की एक आधारवाली पीठ पर बैठ गईं। उन्होंने स्वर्णसेन को देख कर आगे हाथ बढा कर कहा—

"युवराज, आगे आओ, देखो किस भांति हम पृथक् हुए और किस भांति अब फिर मिले, इसी को जीवन का रहस्य कहा जा सकता है।"

स्वर्णसेन ने द्रवित होकर कहा—"किन्तु देवा, मैं साहस नहीं कर सकता। देवी की आपदा का दायित्व तो मुझी पर है।"

"आपदा कैसी मित्र?"

"आह, उसे स्मरण करने से अब भी हृदय काँप उठता है, कैसा भयानक हिंस्र जन्तु था वह सिंह।"

"किन्तु वह तो एक दैवी प्रतारणा थी मित्र, उसके बाद तो जो कुछ हुआ वह अलौकिक ही था?"

"तब क्या यह सत्य है देवी, कि आपका वन में गन्धर्वराज से साक्षात् हुआ था?"

एक अपरिचित युवक ने तनिक आगे बढकर कहा —"युवक अत्यन्त सुन्दर, बलिष्ठ और गौराङ्ग था, उसके नेत्र नीले और केश पिंगल थे, उठान और खडे होने की छवि निराली थी, उसका वक्ष विशाल और जंघाएं पुष्ट थीं।

देवी ने उसकी ओर देखकर कहा—"परन्तु भद्र, तुम कौन हो? मैं पहिली ही बार तुम्हें देख रही हूं।"

स्वर्णसेन ने कहा—

"यह मेरा मित्र मणिभद्र-गान्धार है, ज्ञातिपुत्र सिंह के साथ तक्ष-शिला से आया है। वहां इसने आचार्य अग्निवेश से अष्टाङ्ग आयुर्वेद का अध्ययन किया है और अब यह कुछ विशेष रासायनिक प्रयोगों का क्रियात्मक अध्ययन करने आचार्य गौडपाद की सेवा में वैशाली आया है।"

"स्वागत भद्र", अम्बपाली ने उत्सुक नेत्रो से युवक को देख कर मुस्कराते हुए कहा—"प्रियदर्शी सिंह तो मेरे आवास के विरोधी हैं। उन्होंने तुम्हें कैसे आने दिया प्रिय, और आचार्य से कैसे प्रयगो सीखोगे ?"

"लोहवेध और शरीरवेध सम्बन्धी।"

"क्या वे सब सत्य हैं, प्रिय भद्र, आचार्य गौडपाद से तो मैं बहुत भय खाती हूं।"

"भय कैसा देवी ?"

"आचार्य की भावभगी ही कुछ ऐसी है।" वह हँस पड़ीं। युवक भी हंस पडा। अम्बपाली ने अपना हाथ फैला दिया। युवक ने देवी के हाथ को आदर से थाम कर कहा—

"तो देवी, यह क्या सत्य है कि ·· ········ "

"हां सत्य ही है प्रिय, इसी भांति जिस भांति तुम्हारे लोहवेध और शरीरवेध के वे विशिष्ट प्रयोग।"

स्वर्णसेन ने शकित-सा होकर कहा—

"तो सिंह का आक्रमण क्या प्रतारणा थी ?"

"निस्संदेह युवराज, क्या तुमने वह दिव्यवीणा और चित्र देखा नहीं ?"

"देख रहा हूँ देवी, तो इस सौभाग्य पर मैं आपको बधाई देता हूँ।"

मणिभद्र ने कहा—"मैं भी आर्ये !"

"धन्यवाद मित्रो, आज अच्छी तरह पान करो। आज मैं सम्पूर्ण हूं, कृतकृत्य हूँ, मैं धन्य हूँ। मित्रो मैं देवजुष्टा हूँ।"

चारों ओर से देवी अम्बपाली की जय-जयकार होने लगी। और तरुण बारंबार मद्य पीने और 'देवी अम्बपाली की जय' चिल्लाने लगे।

: १०३ :

दो बटारू

चपा, वैशाली और राजगृह का मार्ग जहां से तीन दिशाओं को जाता है, उस स्थान पर एक अस्थिक नाम का छोटा-सा गांव था। गाँव में बस्ती बहुत कम थी। परन्तु राजमार्ग के इस तिराहे पर होने के कारण इस गाँव में आने जाने वाले बटारू सार्थवाह और निगमों की भीड-भाड बनी ही रहती थी। गांव राजमार्ग से थोडा हटकर था परन्तु राजमार्ग पर ठीक उस स्थान पर जहां से तीन भिन्न दिशाओं के तीन मुख्य मार्ग जाते थे, सेट्ठियों और निगमों ने अनेक सार्वजनिक और व्यक्तिगत आवास अटारी आदि बनवाई थीं। एक पान्थागार भी था जिसका स्वामी एक बूढ़ा आत्य था। इन सभी स्थानों पर यात्री बने ही रहते थे।

सूर्य मध्याकाश में चमक रहा था। पान्थागार के बाहर पुष्करिणी के तीर पर एक सघन वृक्ष की छाया में एक ब्राह्मण बटारू सन्ध्यावन्दन कर रहा था। स्थान निर्जन था। ब्राह्मण प्रौढ़ावस्था का था। उसका वेश ग्रामीण था। वह पान्थागार में भरी हुई यात्रियों की भीड से बचकर यहाँ एकान्त में आकर भजन पूजन कर रहा था। इस बटारू ब्राह्मण का वेश ग्रामीण अवश्य था परन्तु मुख तेजवान् और दृष्टि बहुत पैनी थी।

इसी समय एक और बटारू ने उसके निकट आकर थकित भाव से अपने इधर उधर देखा और उसी वृक्ष की छाया में बैठकर सुस्ताने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका तन मन दोनों ही थकित हैं। सुस्ताकर उसने वस्त्र उतार पुष्करिणी में स्नान किया, और पाथेय निकाल आहार करने बैठा तो उसने ब्राह्मण की ओर देख प्रणाम किया और पूछा—

"कहां के ब्राह्मण हैं भन्ते ?"

"मगध के"

"तो भन्ते, मेरे पास पाथेय है—भोजन करो"

"जैसी तेरी इच्छा गृहपति, तू कौन है ?"

"सेट्ठि"

"कहां का गृहपति ?"

"वीतीभय का"

"स्वस्ति गृहपति" कह कर ब्राह्मण मौन हो गया ।

जिसे ब्राह्मण ने गृहपति कह कर सम्मानित किया था उसने कुत्तक की गांठ खोल उसमें से एक बड़ा-सा मधुगोलक निकाल कर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मण के आगे धर दिया । दूसरा मधुगोलक वह वहीं वृक्ष की छाया में बैठकर खाने लगा । ब्राह्मण की ओर उसने पीठ कर ली ।

ब्राह्मण भी भूखा था । नित्यकर्म से वह निवृत्त हो चुका था । उसने भी मधुगोलक को खाना प्रारंभ किया । परंतु ज्योंही उसने मधुगोलक को तोड़ा—उसमें से मुट्ठी भर तेजस्वी रत्न निकल पड़े । ब्राह्मण आश्चर्य चकित हो उस बटारू के मलिन वेश और दीन-दशा की ओर देखने लगा । उसका आश्चर्य बढ़ता जा रहा था । यदि यह वास्तव में इतना श्रीमन्त है कि इस प्रकार ब्राह्मण को गुप्त-दान देना चाहता है तो फिर इस प्रकार इसका भिक्षुक वेश क्यों है ? क्यों पादातिक एकाकी यात्रा कर रहा है ? फिर, ऐसे मूल्यवान् रत्नों के दाम तो बहुत हैं । ब्राह्मण सोचने लगा, इसमें कोई रहस्य है ।

जब दोनों भोजन कर चुके तब ब्राह्मण ने प्रसन्नदृष्टि से कहा—

"बैठ गृहपति, तेरा नाम क्या है ?

बटारू ने निकट बैठते हुए कहा—"मैं कृतपुण्य हूं, वीतीभय के सेट्ठि धनावह का पुत्र ।"

"अहा, सेट्ठि धनावह, अरे वह तो मेरा यजमान था भन्ते। तेरी जय रहे गृहपति, पर तू अब एकाकी कहां इस तरह दरिद्र बटारू की भांति यात्रा कर रहा है ?"

"मैं चम्पा जा रहा हूँ भन्ते"

"चम्पा ? इस भांति साधन रहित ? सुनूँ तो क्यों ?"

"क्या कहूँ आर्य, मैं बड़ी विपन्नावस्था में हूँ ।"

"कह भद्र, मैं तेरा पुरोहित हूँ, ब्राह्मण हूँ ।"

"तो आर्य, दुष्टा माता ने मुझे घर से बहिष्कृत किया है, अब मैं चम्पा जा रहा हूँ । वहां मेरी मध्यमा पत्नी का पिता रहता है, वहीं उसके आश्रय में।"

"परन्तु इस अवस्था में क्यों ?"

"मेरे पास धन नहीं है आर्य !"

"पाथेय कहां पाया ?"

"माता से छिपा कर मध्यमा ने दिया ।"

"ब्राह्मण कुछ २ मर्म समझ गया। वह सन्देह की तीखी आंखों से बटारू को देखता रहा। फिर एकाएक अट्टहास करके हंस पड़ा।

उस हंसने से अप्रतिभ हो बटारू ने कहा—

"आर्य के इस प्रकार हंसने का क्या कारण है ?"

"यही, कि गृहपति, तू भेद को छिपा नहीं सका।"

बटारू ने सूखे कण्ठ से कहा—"भेद कैसा ?"

"तो तू सत्य कह, भद्र, तू कौन है ?"

"जो कहा, वह क्या असत्य है ?"

"असत्य ही है भद्र"

"कैसे जाना आर्य ?"

"तेरे नक्षत्र देखकर, तू तो सामन्तपुत्र है।"

ब्राह्मण ने अपनी पैनी दृष्टि वटारू के वस्त्रों में छिपे खड्ग की नोक की ओर ताकते हुए कहा।

वटारू ने इस दृष्टि पर लक्ष्य नहीं किया। उसने पृथ्वी में गिरकर ब्राह्मण को प्रणाम किया और कहा—"आप त्रिकालदर्शी ब्राह्मण हैं, मैं सामन्तपुत्र ही हूं—उस दुष्टा संट्टिनी ने मुझे अपनी चार पुत्र-वधुओं में नियुक्त किया था तथा यथेच्छ शुल्क देने का वचन दिया था। अब पांच संतति उत्पन्न करा कर मुझे उस मेधका ने छूछे हाथ खदेड़ दिया। मध्यमा ने मुझे पाथेय दे चम्पा जाने का संकेत किया है, वहां मैं उसकी प्रतीक्षा करूंगा।"

"परन्तु तू कौन है आयुष्मान्, अपना वास्तविक-परिचय दे, मैं तेरी सब इच्छा पूरी करने में समर्थ हूं।"

"तो आर्य, मैं लिच्छवि हूं; और वैशाली से प्रताड़ित हूं। मैंने वैशाली को उच्छेद करने का प्रण किया है।"

ब्राह्मण चमत्कृत हुआ। उसने उत्सुकता दबा कर कहा—"तू लिच्छवि होकर वैशाली पर ऐसा क्रुद्ध क्यों है ?"

"आर्य, वैशाली के गणों ने मेरी वाग्दत्ता अम्बपाली को नगरवधू बनाकर मेरे नागरिक अधिकारों का हरण किया है।

"तो आयुष्मान्, तू कृतसंकल्प होकर कैसे नियुक्त हुआ ? और अब फिर तू फिर उसी मोह में है।"

"तो आर्य, मैं क्या करूं ?"

"तू वैशाली का उच्छेद कर।"

"किस प्रकार आर्य ?"

"मेरा अनुगत हो कर।"

"तो मैं आपका अनुगत हूं।"

"तो भद्र यह ले", ब्राह्मण ने वस्त्र से निकाल कर वे मुट्ठी भर तेजस्वी रत्न उसके हाथ पर रख दिए।"

रत्नों की ज्योति देख बटारू की आंखों मे चकाचौंध लग गई। उसने कहा—"यह रत्न मैं क्या करू ?"

"इन्हें ले, और यहां से तीन योजन पर पावा पुरी है वहां जा। वहां मेरा सहपाठी मित्र इन्द्रभूति रहता है, उसे यह मुद्रिका दिखाना, वह तेरी सहायता करेगा। वहां उसकी सहायता से तू इन रत्नों को बेच बहुत-सी विक्रेय सामग्री मोल ले, दास-दासी कम्मकर संग्रह कर ठाट-बाट से एक सार्थवाह के रूप में चम्पा जा और अपने श्वसुर गृहपति का अतिथि कृतपुण्य होकर बन। परन्तु वहां तू मध्यमा की प्रतीक्षा में समय नष्ट न करना, सब सामग्री बेच, श्वसुर से भी जितना धन उधार लेना संभव हो, ले, भारी सार्थवाह के रूप में बिक्री करता और माल मोल लेता हुआ वंग, कलिंग, अवन्ती, भोज, आन्ध्र, माहिष्मती, भृगुकच्छ और प्रतिष्ठान की यात्रा कर। यह लेख ले और जहां जहां जिस २ के नाम इसमें अंकित हैं, उन्हें यही मुद्रिका दिखा, उनके सहयोग से वैशाली अभियान में योग संग्रह कर, और वैशाली में अपना पूर्व परिचित परिचय गुप्त रख 'कृतपुण्य' सार्थवाह होकर प्रवेश कर। और आदेश मैं तुझे वहीं दूँगा।"

ब्राह्मण की बात सुन और लक्षावधि स्वर्ण-मूल्य के रत्न उसके द्वारा प्राप्त कर उसने समझा—यह ब्राह्मण अवश्य कोई छद्मवेशी बहुत बड़ा आदमी है। परन्तु वह उससे पूछने का साहस नहीं कर सका। उसने विनयावनत होकर कहा—"जैसी आज्ञा, परन्तु आपके दर्शन कैसे होंगे ?"

"भद्र, वैशाली की अन्तरायण में नन्दन साहु की हट्ट है, वहीं तू बटारू ब्राह्मण को पूछना। परन्तु इसकी तुझे आवश्यकता नहीं होगी।

वहां प्रतिष्ठा योग्य-स्थान लेकर अन्तरायण में निगम-सम्मत होकर हट्ट खोल देना। तेरा वैशाली में आगमन मुझपर अप्रकट न रहेगा।"

यह कहकर ब्राह्मण ने उसे एक लिखित भूर्जपत्र दिया। और कहा—

"जा पुत्र, अपना कार्य सिद्ध कर।"

बटारू ने अपना मार्ग लिया। ब्राह्मण भी अपना झोला कन्धे पर डाल दण्ड हाथ में ले दूसरी ओर चले।

: १०४ :

दस्यु बलभद्र

वैशाली में अकस्मात् ही एक अतर्कित भीति की भावना फैल गई। नगर के बाह्य और अन्तरायण सभी जगह दस्यु बलभद्र की दुःसाहसिक डकैतियों की अनेक आतंकपूर्ण साहसिक कहानियां जगह-जगह सुनी जाने लगीं। जितने मुंह उतनी ही बातें थीं। सभी पौर जन और राजवर्गी उत्तेजित हो उठे। परिषद् का वातावरण भी क्षुब्ध हो गया।

पर दस्यु बलभद्र और उसके दुर्द्धर्ष दस्युओं को कोई पकड नहीं सका—अट्टवी-रक्खकों को बारम्बार सावधान करने पर भी इधर उधर राह चलते धनपति लुटने लगे। ग्रामों से भी अशान्त सूचनायें आने लगीं। एक दिन परिषद् का राजस्व नगर में आते हुए मार्ग में लुट गया। और उसके कुछ दिन बाद ही दिन-दहाडे अन्तरायण भी लूट लिया गया। इस घटना से वैशाली में बहुत आतक छा गया। लोग नगर छोडकर भागने लगे। बहुतों ने अपना रत्न पृथ्वी में गाढ़ दिया। परन्तु नगर के सामन्तपुत्र इन सब झंझटों से उदासीन थे। वे दिन भर अलस भाव से संध्या होने की प्रतीक्षा में आंखें बन्द किए पडे रहते, संध्या होने पर सज-धज कर अलंकृत हो स्वर्ण रत्न कुर्बक कोश में भरकर उत्सुक आकुल भाव से सप्तभूमि प्रासाद के स्वर्णालोक में जाकर सुरा सुन्दरी संगीत के सुख-भोग और द्यूत-विनोद में आधी रात तक डूबते उतराते। फिर आधी रात व्यतीत हो जाने पर सूना कुर्बक कोश, सूना हृदय ले उनींदी आंखों को खोलते-मीचते मद के मद में लड़खड़ाते अपने २ भृत्यों के कन्धों का सहारा लिए अपने २ वाहनों में अर्ध-मृतकों के समान पड़

कर अपने घर जाते और मृतक से भी अत्यन्त गर्हित भाव से बेसुध हुए दोपहर तक पड़े रहते थे। विश्व में कहा क्या हो रहा है, यह जैसे वे भूल गए थे। उन्हें एक ही वस्तु याद रह गई थी, अम्बपाली की मन्द मुस्कान, उसका स्वर्गसदन सप्तभूमि-प्रासाद, सुगन्धित मदिरा और अनगिनत अछूते यौवन।

———

: १०५ :

युवराज स्वर्णसेन

स्वर्णसेन ने मद्य पीकर रिक्त मद पात्र दासी की ओर बढ़ा दिया। और अर्द्धनिमीलित नेत्रों से उसे घूर कर कहा—"और दे"

दासी पात्र हाथ में लिए अवनत-वदन खड़ी रही। इस बार उसने मद-पात्र भरा नहीं।

स्वर्णसेन ने कहा—"मद और दे हला"

"अब और नहीं"

युवराज ने कुछ अधिक नेत्र खोल कर कहा—"अब और क्यों नहीं, दे हन्दजे, मद दे।"

"वह अधिक हो जायेगा भन्ते" दासी ने कातर वाणी से कहा।

युवराज उठकर बैठ गए। उन्होंने कुछ उत्तेजित होकर "दे हला, मद दे" कहते हुए वेग से हाथ हवा में हिलाया।

दासी ने एक वार फिर कातर नेत्रों से युवराज को देखा, और फिर चुपचाप पात्र भरकर युवराज के हाथ में दे दिया। इसी समय एक दण्डधर ने आकर "महाअट्टवी-रक्खक सूर्यमल्ल" के आने की सूचना दी। सूर्यमल्ल स्वर्णसेन के अन्तरङ्ग मित्र थे। उनके लिए कोई रोक-टोक नहीं थी। वे दण्डधर के पीछे ही पीछे चले आये। स्वर्णसेन ने उद्योग करके अपनी आखें खोलकर जिज्ञासा भरी दृष्टि से उनकी ओर देखा। उस देखने का अभिप्राय यह था—कि इस असमय में क्यों?

सूर्यमल्ल ने साभिप्राय दासी की ओर देखा। दासी नतमस्तक वहां से चली गई। सूर्यमल्ल ने कहा—"सुना है तुमने स्वर्ण, आज अन्तरायण लुट गया है।"

मद्य पात्र अभी भी स्वर्णसेन के ओठों में लगा था। अब उन्होंने आँखें बन्द करलीं। स्वर्णमल्ल ने उत्तेजित होकर कहा—

"मैं महाबलाधिकृत का संदेश लाया हूं।"

"महाबलाधिकृत ने असमय में क्या संदेश भेजा है मित्र" स्वर्णसेन ने लडखड़ाती वाणी से कहा।

"यही, कि हम अभी तत्काल दशसहस्र सेना लेकर मधुवन को घेर लें।"

"अभी क्यों? फिर कभी क्यों नहीं?" उन्होंने मद्यपात्र एक ओर फेंकते हुए कहा।

"चर ने संदेश दिया है कि दस्यु बलभद्र मधुवन में छिपा है।"

"दस्यु से तुम डरते हो सूर्यमल्ल? धिक्कार है।"

"किन्तु गणपति का आदेश है कि हम अभी दस सहस्र सैन्य ..."

"परन्तु हम क्यों, तुम क्यों नहीं?"

"मैं भी साथ चलता हूँ"

"तो चल मित्र तनिक सहारा देकर उठा तो"

सूर्यमल्ल ने, स्वर्णसेन को उठाकर खड़ा किया। स्वर्णसेन ने लड़खड़ाते हुए कहा—"चलो अब"

"कहां?

"देवी अम्बपाली के आवास को!"

"और महाबलाधिकृत का आदेश?"

"वह कल सूर्योदय के बाद देखा जायगा।"

"परन्तु वह दस्यु "

"उस भाग्यहीन दस्यु को अभी कुछ क्षण मधुवन में विश्राम करने दो मित्र, सूर्योदय होने पर मैं उसे अपने खड्ग से खण्ड २ कर दूंगा।"

सूर्यमल्ल ने क्रुद्ध होकर कहा—"ऐसा नहीं हो सकता, महाबलाधिकृत का आदेश है।"

"होने दे मित्र. मेरी बात मान—चल अम्बपाली के आवास में, पी सुवासित मद्य, चख रूपसुधा संगीतालाप और भोग स्वर्ग-सुख। चल मित्र, उसने कसकर सूर्यमल्ल का हाथ पकड लिया।

सूर्यमल्ल ने विरक्ति से कहा—"तब तुम जाओ देवी के आवास की ओर. मैं अकेला ही मधुवन जाऊंगा।"

"अरे मित्र, तू नितान्त अरसिक है, यह चन्द्रमा की ज्योत्स्ना, यह शीतल मन्द सुगन्ध समीर, यह मादक यौवन यह तारों भरी रात ? चल मित्र, चल।"

युवराज एक बारगी ही सूर्यमल्ल के कन्धे पर झुक गया, और वे दोनों अन्धकारपूर्ण राजपथ पर धीरे २ चले अम्बपाली के आवास की ओर।

———

: १०६ :

प्रत्यागत

कृतपुण्य सेट्ठि की वैशाली के अन्तरायण में धूम मच गई। सेट्ठियों के निगम ने उसका स्वागत सत्कार करने को गणनक्षत्र मनाया। नगर-सेट्ठि ने उसे घर बुलाकर गन्धमाला से सम्मानित किया। उसके ठाट-बाट धन-वैभव तथा विक्री सामग्री को देख वैशाली का सेट्ठिनिगम सन्न रह गया। सर्वत्र यही चर्चा होने लगी कि चम्पा का यह महासेट्ठि चम्पा के पतन के बाद राजकुल की सम्पूर्ण सम्पदा लेकर वैशाली में भाग आया है। और अब वह वैशाली ही में रह कर व्यापार वाणिज्य करेगा। सेट्ठि कृतपुण्य के साथ दासों, कम्मकरों, सेवकों की बड़ी भरमार थी। उसकी धन-सम्पत्ति वाहन और अवरोध का वैभव विशाल था। घर २ इस भाग्यवान् सार्थवाह के सौभाग्य की चर्चा थी कि कालिका द्वीप में उसे स्वर्ण, रत्न की एक खान मिल गई थी और वह उससे अपने जहाज भर लाया है। परन्तु सबसे अधिक चर्चा की वस्तु उसके आठ समुद्री अश्व थे जो वायुवेग के समान चंचल और मूर्ति की भांति सुन्दर थे। इन अश्वों में से एक पर चढ़ कर जब उसका पुत्र प्रातः और सन्ध्या समय वायुसेवनार्थ अपने शिक्षकों और सेवकों के साथ राजमार्ग पर निकलता था तो सब कोई अपने २ काम छोड़ २ कर उन्हीं अश्वों की, अश्व के आरोही साक्षात् कार्तवीर्य के समान सुन्दर किशोर सेट्ठिपुत्र की और गृहपति कृतपुण्य सेट्ठि की चर्चा सत्य असत्य काल्पनिक करने लगते। बहुत लोग बहुविध अटकल अनुमान लगाते।

पाठक इस 'कृतपुण्य' को भूले न होंगे। यह भाग्य-विदग्ध हर्षदेव का

नूतन संस्करण था। यहां हम संक्षेप में इसके नवीन रूप में उदय होने का विवरण देते हैं।

वन में वाटरू ब्राह्मण से विदा होकर हर्षदेव पावा पुरी गया और इन्द्रभूति ब्राह्मण से मिला। इन्द्रभूति ने उसे आदरपूर्वक अपने यहां ठहरा कर विविध वस्त्राभूषण से उसे अलंकृत कर अपने परिचितों, मित्रों और नगर के निगमों से उसका परिचय कराया तथा उसे सेट्ठिपुत्र कहकर उन्हें परिचय दिया। वहां उसने इन्द्रभूति की सहायता और सम्मति से बहुत-सी मूल्यवान विक्रेय सामग्री मोल ले और पचास अश्वतरियों पर लाद तथा चार दास और उत्तम अश्व मोल ले अश्वारूढ हो चम्पा में जा पहुंचा। चम्पा के गृहपति सागरदत्त के घर पर पहुंचा और कृतपुण्य कह कर अपना परिचय दिया। सागरदत्त सेट्ठि के अनेक जलयान ताम्रलिप्त और स्वर्णद्वीपों में विविध व्यापार की सामग्री लेने बेचने जाते रहते थे। और वह अतिसमृद्ध श्रीमन्त निगमपति सेट्ठि था। उसके कोई पुत्र न था केवल एक वही मृगावती नाम की पुत्री थी जो कृतपुण्य को ब्याही थी। उसका चिरकाल से उसे कोई समाचार नहीं मिला था। अब वह अकस्मात् अपने जामातृ को देख परम हर्षित हुआ। उसने बड़े प्रेम-सत्कार से उसका स्वागत किया। उसकी सहायता से उसका सब माल अच्छे मूल्य में बिक गया और महान् धनराशि उसे प्राप्त हुई। श्वसुर से कहकर उसने वीतीभय नगरी से मृगावती और उसके पुत्र को भी मंगवा लिया। और वह कुछ काल स्त्री पुत्र और ससुराल का परिपूर्ण आनन्द भोगता रहा। फिर ब्राह्मण की बात को स्मरण कर तथा वैशाली को लौटने की उत्सुकता से श्वसुर से आग्रह कर विविध बहुमूल्य वस्तुओं से तीन जहाज भर अपनी स्त्री मृगावती पुत्र पुण्डरीक और दास-दासियों कम्मकरों को संग ले जलयात्रा को निकल पड़ा।

वह माल लेता बेचता लाभ उठाता बंग, कलिंग, अवन्ती, भोज, आन्ध्र, माहिष्मती, भृगुकच्छ और प्रतिष्ठान जल-थल में, जैसा सुयोग मिला,

घूमता फिरा। उसने ब्राह्मण की दी हुई सूची के अनुसार वग में वैश्रमणदत्त, कलिंग में वीरकृष्णमित्र, अवन्ती में श्रीकांत, भोज में समुद्रपाल, आन्ध्र में सामन्तभद्र, माहिष्मती में सुगुप्त, भृगुकच्छ में सुदर्शन, और प्रतिष्ठान में सुवर्णबल से मिल कर ब्राह्मण का गूढ़ संदेश दिया और उनका गूढ़ संदेश ब्राह्मण के लिए प्राप्त किया।

इसी यात्रा के बीच जब वह पूर्वी द्वीपसमूहों में विचरण करता हुआ हस्तिशीर्ष द्वीप में पहुंचा तो उसकी भेंट कई अन्य सार्थवाहों से हो गई जो उसी की भांति विक्रेय वस्तु द्वीप-द्वीपान्तरों में बेचने जा रहे थे। हस्तिशीर्ष द्वीप से उसने उनके साथ ही मिलकर यात्रा की। दैव-संयोग से कुछ दिन समुद्र में यात्रा करते हुए उनके समुद्रयान झंझावात में फंस गये उनके सब यान और उनके साथी टूट-फूट कर समुद्र में डूब गये। केवल एक पोत, जिस में कृतपुण्य की पत्नी-पुत्र दास और धन, स्वर्ण था, किसी भांति कई दिन तक लहरों पर उथल-पुथल होता टकराता समुद्र-बीच अज्ञात और निर्जन कालिका द्वीप के किनारे जा टकराया। किसी प्रकार भूस्पर्श करने से उन लोगों को ढारस हुआ। द्वीप में मीठा जल और स्वादिष्ट फल-मूल खाकर उन्होंने कई दिन की भूख प्यास तृप्त की। परन्तु द्वीप जनरहित है यह देख उन्हें दुःख हुआ। फिर भी फल-मूल और स्वादिष्ट जल की बहुतायत से उन्हें बड़ा सहारा मिला। उन्होंने अपने समुद्रयान की मरम्मत की। तथा अनुकूल वायु की प्रतीक्षा में वहीं पड़े रहे।

इसी समय द्वीप में फल-मूल की खोज में घूमते भटकते उन्हें माणिक्य और स्वर्ण की खानें मिल गईं। इस प्रकार दुर्भाग्य से भाग्योदय देखकर वह उन्मत्त की भांति हर्ष से नाचने लगा। उसने दासों और कम्मकरों की सहायता से स्वर्ण और रत्न की राशि की राशि अपने जहाज में भर ली। इतना अधिक बेमोल स्वर्ण तथा सूर्य के समान तेजवान् त्रिलोक-दुर्लभ कुडव प्रस्थ भार के माणिक्य पाकर

उसके रक्त की एक २ बूंद उसकी नाड़ियों में नाचने लगी। अब वह पृथ्वी पर सबसे अधिक धन-कुबेर था। मनुष्य की दृष्टि से न देखे गये रत्न उसके चरणों में थे।

परन्तु उसके सौभाग्य की समाप्ति यहीं पर नहीं हुई। पूर्णिमा के चन्द्रोदय होने पर ज्यों ही समुद्र में ज्वार आया। बहुत से अद्भुत समुद्री अश्व जल में बह कर द्वीप के तट पर आये और द्वीप में विचरण करने लगे। उन अद्भुत और विद्युत् वेग के समान चपल तथा मनुष्य-लोक मे दुर्लभ महाशक्ति-सम्पन्न वाडव-अश्वों को देख प्रथम तो कृतपुण्य और उसके संगी साथी भयभीत होकर एक योजन दूर भाग गये। जब समुद्र में ज्वार उतर गया और वे अश्व भी समुद्र-गर्भ में चले गये तब वे लोग फिर समुद्रतट पर आकर उन पराक्रमी अश्वों को देखते रहे।

कृतपुण्य ने इन अश्वों को पकड कर लेजाने का निश्चय किया। अन्ततः वह साहसिक सामन्त था। उसमें सुप्त आखेट-वासना जाग्रत हुई और अश्वों को पकडने का सम्पूर्ण आयोजक विचार वह आगामी पूर्णिमा तक समुद्र में ज्वार आने की प्रतीक्षा में उसी द्वीप में ठहर गया।

समुद्र में पूर्ण चन्द्रोदय होने पर ज्वार आया। और फिर अनगिन्त वही वाडव-अश्व समुद्र की तरगों पर तैरते हुये द्वीप में घुस आये। कृतपुण्य ने एक ऊँचे स्थान पर बैठकर वीणा बजानी प्रारभ की। वीणा की मधुर झकृति से विमोहित हो वे अश्व उसी शब्द की ओर आकर्षित हो लम्बे २ अपने कान खडे कर खडे के खड रह गये। तब कृतपुण्य के सकेत से उसके दासों ने उन्हें विविध सुगंध द्रव्य सुँघायें, विविध स्वादिष्ट मधुर खाद्य पेय खाने पीने को दिये। इस प्रकार वीणा की ध्वनि से विमोहित तथा विविध गन्ध-खाद्य पेय से लुब्ध बने वे अश्व उन मनुष्यों से परिचित की भांति बारंबार मुंह उठा कर

खाद्य पेय मांगने तथा खड़े २ कनौतियां काटने लगे। समुद्र के पीछे लौटने का उन्हें भान ही न रहा। ज्वार उतर गया और कृतपुण्य के दासों ने उन्हें युक्ति से दृढ़-बन्धन में बांध लिया तथा जलयान पर चढ़ा लिया।

इस अद्भुत और अतर्कित रीति से देव-मनुष्य-दुर्लभ वाडव-अश्व और अमोघ रत्ननिधि इस अज्ञेय द्वीप से लेकर कृतपुण्य ने अनुकूल वायु देख जल इंधन और फल मूल आदि भर प्रस्थान किया। तथा देश देश में होता हुआ वह भृगुकच्छ पहुँचा। भृगुकच्छ में उसने बहुत-सा माल क्रय किया तथा स्थल मार्ग-से सार्थवाह ले चला। इस समय उसका सार्थवाह एक चतुरंगिणी सेना की भांति था। भृगुकच्छ में ठहर कर उसने चतुर गुणी और शास्त्रज्ञ अश्वपालों एवं अश्वमर्दकों को नियुक्त किया। जिन्होंने अश्वों के मुंह कान बांध, वल्गु चढ़ा, तंग खींच, चाबुक और वेत्र की मार मार कर विविध भांति आज्ञा-पालन और चाल चलने की शिक्षा दी। इस प्रकार शिक्षण प्राप्त कर और बहुमूल्य रत्नाभरणों से सुसज्जित होकर जब ये अश्व लोगों की दृष्टि में पड़े तब सब इन्हें देखते ही रह गये।

इस प्रकार भाग्य की नियति से विक्षिप्तावस्था में वैशाली को त्यागने के सात वर्ष पश्चात् जब हर्षदेव ने महासेट्ठि सार्थवाह कृतपुण्य के रूप में वहां प्रवेश किया और उत्तरायण में शत सहस्र स्वर्ण-शिखरों वाला हर्म्य श्वेत मर्मर का बनवा दास-दासियों, कम्मकरों, लेखकों, कर्णिकों, दण्डधरों, द्वारपालों, रक्खकों से सेवित हो देखते ही देखते सर्वपूजित हो वहां निवास करने लगा, और अपनी दिन-चर्या से ऐश्वर्य चमत्कार दिखा २ कर नगर नागर और जानपद को चमत्कृत करने लगा तो कुछ दिन को तो लोग सब कुछ भूल कर सेट्ठि कृतपुण्य की ही चर्चा वैशाली में घर २ करने लगे।

: १०७ :

वैशाली में मगध महामात्य

वैशाली के जनपद में इस बार फिर भूकम्प हुआ। वैशाली के महान् राजमार्ग पर एक दीर्घकाय ब्राह्मण पांव-प्यादा धीर मन्थर गति से सथागार की ओर बढ रहा था। उसके पांव नगे और धूल-धूसरित थे, कमर में एक शाण साटिका और कन्धे पर शुभ्र कौशेय पडा था जिसके बीच से उसका स्वच्छ जनेऊ चमक रहा था। इस ब्राह्मण का वर्ण गौर, मुखमुद्रा गंभीर और तेज-पूर्ण नेत्र, दृष्टि पैनी, ललाट उन्नत, कन्धे और ग्रीवा मांसल, होठ सम्पुटित, भालपट्ट चन्दन-चर्चित, नगे सिर पर शतधौत हिमश्वेत चोटी। वह अगल-बगल नहीं देख रहा था, उसकी दृष्टि पृथ्वी पर थी।

उसके निकट आने तथा साथ चलने की स्पर्धा वैशाली में कोई नहीं कर सकता था। उससे पचास हाथ के अन्तर पर दो सहस्र ब्राह्मण नंगे पैर, नंगे बदन, नंगे सिर, केवल शाटिका कमर में पहिने और जनेऊ हाथों में ऊंचे किये चुपचाप चल रहे थे। उनके पीछे सहस्रो नागरिक, ग्रामीण, सेट्ठि, सामन्त, विष, कम्मकर और अन्य पुरुष थे। घरों के झरोखों से भिसिका और अलिन्दों से कुलवधू, गृहपति, पत्नियां आश्चर्य कौतूहल और भीतमुद्रा से इस सूर्य के समान तेजस्वी ब्राह्मण को देख रहे थे। सब निःशब्द चल रहे थे। सभी मन ही मन भांति २ के विचार कर रहे थे। कोई कानों-कान फुसफुसाकर बात कर रहे थे।

यह ब्राह्मण विश्वविख्यात राजनीति का ज्ञाता मगध का पदच्युत दुर्धर्ष-आमात्य वर्षकार था। उनके राजविग्रह, राजकोप तथा राज्यच्युति के समाचार प्रथम ही विविध रूप धारण करके वैशाली में फैल गये थे।

संथागार के प्राङ्गण में वैशाली-गण-संघ के अष्टकुल-प्रतिनिधियों ने

महामात्य का स्वागत किया और वे सब इस तेजस्वी ब्राह्मण को आगे कर संथागार में ले गए। जहां महासन्धि विग्रहिक जयराज और विदेश-सचिव ने आगे बढ़कर आमात्य का प्रतिसम्मोदन करके अभ्यर्थना की। फिर उन्होंने उनसे एक निर्दिष्ट आसन पर बैठने का अनुरोध किया। आमात्य ने अनुरोध नहीं माना। वह और दो पग आगे बढ़कर वेदी के सम्मुख आ खड़े हुए तब आमात्य ने जलद गंभीर वाणी से कहा—"हुआ, बहुत शिष्टाचार सम्पन्न हुआ परन्तु वज्जी के अष्टकुल भ्रम में न रहें। मैं आज मगध का आमात्य नहीं, एक दरिद्र ब्राह्मण हूं। उदर के लिये अन्न की याचना करने आया हूं। अष्टकुल के गण-प्रतिनिधि ब्राह्मण को अन्न दें तो यह ब्राह्मण राज सेवा करने को प्रस्तुत है।"

विदेश-सचिव नागसेन ने आसन से उठकर कहा—"आर्य अपने व्यक्तित्व में ही सुप्रतिष्ठित हैं। यह मगध का दुर्भाग्य है कि उसे आपकी राजसेवा से वंचित रहना पड़ा है, परन्तु राजसेवा के प्रति दान का कोई प्रश्न नहीं है, वज्जीसंघ आर्य का वज्जी भूमि में सम्मान्य अतिथि के रूप में स्वागत करता है।"

"सुनकर आश्वस्त हुआ, अष्टकुल का कल्याण हो, यद्यपि मैं ब्राह्मण हूं किन्तु भिक्षोपजीवी नहीं, वज्जीगण यदि राजसेवा लेकर अन्न दें तो मैं लूंगा नहीं तो नहीं।"

"यह आर्य का गौरव है, परन्तु आर्य यह भली भांति जानते हैं कि वज्जी-शासन में मान्य अष्टकुल के प्रतिनिधि ही सक्रिय रह सकते हैं। वर्णधर्मी आर्य नहीं। यह हमारी प्राचीन मर्यादा है।" विदेश सचिव नागसेन ने कहा।

"यह मैं जानता हूं, आयुष्मान् को सशंक और सावधान रहना चाहिए। यह भी ठीक है। परन्तु शासन में सक्रिय होने की मेरी अभिलाषा नहीं है। मै तो अन्न का मूल्य देना चाहता हूं।"

"क्यों आर्य यह आज्ञा करते हैं, जबकि वज्जियों का यह संघ आर्य को सम्मान्य अतिथि के रूप में स्वागत करने को प्रस्तुत है।"

"ठीक है, परन्तु आयुष्मान् पूज्य-पूजन की भी एक मर्यादा है। मैं अतिथि तो हूं नहीं, जीविकान्वेषी हूं। अर्थी हूं।"

"तो आर्य प्रसन्न हों, वज्जीगण संघ को आशीर्वाद प्रदान करते रहें, आर्य की यही यथेष्ट राजसेवा होगी।"

"भद्र मैं राजपुरुष प्रथम हू और ब्राह्मण पीछे। मैं आशीर्वाद देने का अभ्यासी नहीं, राजचक्र चलाने का अभ्यासी हूं।"

जयराज सन्धिविग्राहक ने गणपति सुनंद का संकेत पाकर खड़े होकर कहा –

"तब आर्य यदि वज्जीगण के समक्ष मगध-सम्राट् पर आर्य के प्रति कृतघ्नता अथवा अनाचार का अभियोग उपस्थित करते हैं तो गण-सन्निपात उसपर विचार करने को प्रस्तुत है।"

"मगध-सम्राट् वज्जीगण का विषय नहीं है आयुष्मान्, इसलिए वज्जीगण सन्निपात इस सम्बन्ध में विचार नहीं कर सकता। फिर मेरा कोई अभियोग ही नहीं है, मैं तो अन्न का इच्छुक हूं।"

"तब यदि आर्य वज्जीसंघ में राजनियुक्त हों और वज्जीसंघ यदि मगध पर अभियान करें तब आर्य कठिनाई में पड़ सकते हैं।"

"कठिनाई कैसी, आयुष्मान्"

"द्विविधा की, आर्य!"

"परन्तु वज्जीसंघ मगध पर अभियान क्यों करेगा? उसकी तो साम्राज्यलिप्सा नहीं है।"

"नहीं, वज्जीसंघ न अभियान करें, मागध ही वज्जी पर अभियान करें तब आर्य क्या करेंगे?"

"जो उचित होगा वही"

"और औचित्य का मापदण्ड क्या होगा? विवेक, न्याय या राजनीति?"

"राजनीति आयुष्मान्!"

"किसकी राजनीति आर्य?" जयराज ने हँसकर कहा।

कुटिल ब्राह्मण क्रोध से थर थर कांपने लगा। उसने कहा—

"मेरी ही राजनीति आयुष्मान्"

"तो आर्य क्या ऐसी आज्ञा देते हैं कि भविष्य में वज्जियों का गण-शासन आर्य की राजनीति का अनुगमन करे?"

"यदि यह ब्राह्मण उसके लिए हितकर होगा तो उसे ऐसा ही करना चाहिए।"

"तो आर्य, यह गण-नियम के विपरीत है, यह साम्राज्य-विधान में सुकर है, गण-शासन में नहीं; गणशासन सन्निपात के छन्द के आधार पर ही शासित हो सकता है।"

"तो वज्जीसंघ आश्रित ब्राह्मण को आश्रय नहीं दे सकता है?"

अब गणपति सुनन्द ने कहा—

"आर्य, आप भली भांति जानते हैं कि हमारा यह संघशासित तन्त्र सर्वसम्मति से चलता है इसलिए इस सम्बन्ध में सोच विचार कर जैसा उचित होगा आर्य से परामर्श करके निर्णय कर लिया जायगा। तब तक आर्य वज्जीगणसंघ के प्रतिष्ठित अतिथि के रूप में रहकर संघ की प्रतिष्ठा-वृद्धि करें।"

"तो गणपति राजन्य, ऐसा ही हो।"

आर्य वर्षकार ने हाथ ऊँचा करके कहा—"तब तक मैं दक्षिण-ब्राह्मण-कुंडग्राम-सन्निवेश में आयुष्मान् सोमिल श्रोत्रिय का अन्तेवासी होकर ठहरता हूं।"

: १०८ :

भद्रनन्दिनी

बहुत दिन बाद वैशाली में अकस्मात् फिर उत्तेजना फैल गई। उत्तेजना के विषय दो थे, एक मगध महामात्य आर्य वर्षकार का मगध-सम्राट् से अनादृत होकर वैशाली में आना। दूसरा विदिशा की अपूर्व सुन्दरी वेश्या भद्रनन्दिनी का वैशाली में बस जाना। जिस प्रकार आर्य वर्षकार उस समय भूखण्ड पर विश्वविश्रुत राजनीति के पण्डित पुरुष थे, उसी प्रकार भद्रनन्दिनी रूप यौवन और वैभव में अपूर्व थी। देखते ही देखते उसने अपने वैभव का ऐसा विस्तार कर लिया कि अम्बपाली की आभा भी फीकी पड़ गई। नगर भर में यह प्रसिद्ध होगया कि भद्रनन्दिनी विदिशा के अधिपति नागराज शेष के पुत्र पुरञ्जय भोगी की अन्तेवासिनी थी। वह नागकुमार भोगी के असद्-व्यवहार से कुपित होकर वैशाली आई है। उसके पास अगणित रत्न स्वर्ण और संपदा है। उसका रूप अमानुषिक है और उसका नृत्य मनुष्य को मूर्छित कर देता है, सभी महारागों और ध्वनिवाद्यों में उसकी असाधारण गति है, वह चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं की पूर्ण ज्ञाता, सर्वशास्त्र-निष्णाता दिव्य सुन्दरी है। वह अपने यहां आने वाले अतिथि से केवल नृत्य पान का सौ सुवर्ण लेती है, वह अपने को नागराज भोगी पुरञ्जय की दत्ता कहती है और किसी पुरुष को शरीर-स्पर्श नहीं करने देती। वैशाली के श्रीमन्त सेट्ठिपुत्र और युवक सामन्त उसे देखकर ही उन्मत्त हो जाते हैं। उसका असाधारण रूप और सम्पदा ही नहीं, उसका वैचित्र्य भी लोगों में कौतूहल की उत्पत्ति करता है। नागपत्नी को देखने की सभी अभिलाषा रखते है। जो देख पाते हैं वे उस पर तन मन वारने को विवश हो जाते हैं, परन्तु किसी भी मूल्य पर वह किसी पुरुष को

अपना स्पर्श नहीं करने देती है। उसकी यह विशेषता नगर भर में फैल गई है। लोग कहते हैं इसने देवी अम्बपाली से स्पर्द्धा की है, कुछ कहते हैं नागराज ने देवी अम्बपाली से प्रणयाभिलाषा प्रकट की थी सो देवी से अनादृत होकर उनका मानभंजन करने को यह दिव्याङ्गना छद्म-वेश में भेजी है। नन्दनन्दिनी का द्वार सदा बन्द रहता था। द्वार पर सशस्त्र पहरा भी रहता था, पहरे के बीच में एक बहुत भारी दर्दुर रखा हुआ था जो आगन्तुक सौ सुवर्ण देता, वही दर्दुर पर डंका बजाता, प्रहरी उसे महाप्रतीहार को सौंप देता और वह आगन्तुक को भद्रनन्दिनी के विलासकक्ष में ले जाता जहां सुरा सुन्दरियां और कोमल उपाधान उसे प्रस्तुत किये जाते। एक नियम और था, सौ स्वर्ण लेकर एक रात्रि में वह केवल एक ही अतिथि का मनोरंजन करती थी। तरुण श्रीमन्तों का सामूहिक स्वागत करने का उसका नियम न था।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी थी। रात अंधेरी थी, पर आकाश स्वच्छ था। उसमें अगणित तारे चमक रहे थे। माघ बीत रहा था। सर्दी काफी थी। नगर की गलियो मे सन्नाटा था। डेढ़ पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। एक तरुण अश्व पर सवार धीर मन्थर गति से उन सूनी वीथिकाओं में जा रहा था। भद्रनन्दिनी के सिंह-द्वार पर आकर वह अश्व से नीचे उतर पड़ा। ड्योढ़ी के एक दास ने आगे बढ़कर अश्व थाम लिया। पहरी के प्रधान ने आगे बढ़कर कहा—"भन्ते सेनापति, आप चाहते क्या हैं?"

जिस तरुण को सेनापति कह कर सम्बोधन किया गया था, उसने उस प्रतिष्ठित सम्बोधन से कुछ भी प्रसन्न न होकर एक भारी सी किन्तु छोटी थैली उसकी ओर फेंक दी और आगे बढ़कर डंका उठा दर्दुर पर चोट की, दूर २ तक वह शब्द गूंज उठा, प्रहरी ने आदर-पूर्वक सिर झुका कर द्वार खोल दिया।

प्रहरी विदेशी था। वह जितना शरीर से स्थूल था वैसी ही स्थूल उसकी बुद्धि भी थी। उसने डरते २ झुक कर पूछा—"सौ ही सुवर्ण

है भन्ते, कम तो नहीं"

"कुछ अधिक ही है। सो तेरी स्वामिनी के लिये और शेष तेरे लिये मित्र" तरुण ने मुस्करा कर कहा—

प्रहरी खुश होगया। उसने हँस कर कहा—"आपका कल्याण हो भद्र, यह मार्ग है, आइए।"

भीतर अलिन्द में जाकर उसने महाप्रतिहार पीठ को पुकारा। प्रतिहार अतिथि को भद्रनन्दिनी के निकट ले गया। भद्रनन्दिनी ने उसे ले जाकर बहुमूल्य आसन पर बैठाया, और हँस कर कहा—"भद्र कैसा सुख चाहते हैं पान, नृत्य, गीत, द्यूत, प्रहसन ?"

"नहीं प्रिये, केवल तुम्हारा एकान्त सहवास, तुम्हारा मृदु मधुर वार्तालाप।"

"तो भन्ते ऐसा ही हो" उसने दासियों की ओर देखा। दासियां वहाँ से चली गई, द्वारों और गवाक्षों पर पर्दे खींच दिए गए। एक दासी एक स्वर्ण-पात्र में गौडीय स्फटिक पानपात्र और बहुत-से स्वादिष्ट भुने शूल्य मांस शृंगाटक रख गई।

भद्रनन्दिनी ने कहा—"अब और तुम्हारा क्या प्रिय करूं प्रिय ?"

"मेरे निकट आकर बैठो प्रिये !"

नन्दिनी ने पास बैठ कर हँसते हुए कहा—"किन्तु भद्र ! तुम जानते हो मैं नागपत्नी हूं, अतः मैं अन्तस्पर्श हूं।"

"सो मैं जानता हूं प्रिये, मैं केवल तुम्हारे वचनामृत का ही आनन्द-लाभ चाहता हूँ।"

नन्दिनी ने मद्यपात्र में सुवासित गौडीय उंडेलते हुए पूछा—

"किन्तु भद्र, यह मुझे किस महाभाग के सत्कार का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है ?"

"वैशाली के एक नगण्य नागरिक का भद्रे !"

"वैशाली में ऐसे कितने नगण्य नागरिक हैं प्रिय, जो एक वारवधू से केवल वाग्विलास करने की शुल्क में स्वर्ण व्यय कर सकते हैं ?"

"यह तो भद्रे, गणिकाध्यक्ष सम्भवतः बता सके, परन्तु उसके पास भी आगन्तुकों का हिसाब किताब तो न होगा।"

"जाने दो प्रिय, किन्तु इस प्रिय-दर्शन नगण्य नागरिक का नाम क्या है?"

"विदिशा की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी आज के शुभ मुहूर्त में उसका जो भी नाम निर्धारित करे वही।"

"उस नाम को वैशाली का गण-पद स्वीकार कर लेगा?"

"न करे, उसकी क्या चिन्ता, किन्तु विदिशा की सुन्दरी के आवास के भीतर तो उसी नाम का डंका बजेगा।"

नन्दिनी ने हँसकर मद्यपात्र युवक के हाथ में दिया और हँसते हुए कहा—"समझ गई प्रिय, आप छद्म-नाम धारण किया चाहते हैं किन्तु इसका कारण?"

"यदि यही सत्य है तो छद्म-नाम धारण करने का कारण भी ऐसा नाम धारण करने वाला भली भांति जानता है" उसने मद्य पीते हुए कहा।

"ओह, तो मित्र, तुम कोरे तार्किक ही नहीं हो?"

"नहीं प्रिये, मैं तुम्हारा आतुर प्रेमी भी हूं" उसने खाली पात्र देते हुए कहा।

नन्दिनी जोर से हँस दी और पात्र फिर से भरते हुए बोली—

"सत्य है मित्र, तुम्हारे प्रेम का सब रहस्य तुम्हारी आंखों और सतर्क वाणी में दीख रहा है" उसने दूसरा चषक बढ़ाया।

चषक लेकर हँसते हुए युवक ने कहा—"इसी से प्रिये, तुम चषक पर चषक देकर मेरे नेत्रों का रहस्य और वाणी की सतर्कता को बहाना चाहती हो?"

"नहीं भद्र, मेरी यह सामर्थ्य नहीं, परन्तु गणिका के आवास में आकर भी पान करने में इतना सावधान पुरुष वैशाली ही में देखा।"

"मगध में नहीं देखा प्रिये?" उसने गटागट मद्य पीकर चषक नन्दिनी

को दिया। नन्दिनी विचलित हुई। रिक्त चषक लेकर क्षण भर उसने युवक की ओर घूर कर देखा।

युवक ने हँस कर कहा—"यदि कुछ असंगत हो उठा होऊं तो यह तुम्हारी मद्य का दोष है, किन्तु क्या तुम्हें मैंने असन्तुष्ट कर दिया भद्रे ?"

"नहीं भद्र, किन्तु मैं मगध कभी नहीं गई।"

"ओह, तो निश्चय ही मुझे भ्रम हुआ, नीचे तुम्हारे प्रहरियों के नोकदार शिरस्त्राण मागध आर्यों के समान थे—इसी से।" उसने मुस्करा कर तीखी दृष्टि से युवती को देखा।

युवती क्षण भर को चचल हुई फिर हँसती हुई बोली—"हां, उनमें एक दो मागध हैं किन्तु ..."

बीच ही में उस युवक ने हँसते हुए कहा—"समझ गया प्रिये, उन्हीं में से किसी एक ने राजगृही के चतुर शिल्पी का बना यह कुण्डल तुम्हें भेंट किया होगा।"

कुण्डनी के होठ सूख गये। हठात् उसके दोनों हाथ अपने कानों में लटकते हुए हीरे के बहुमूल्य कुण्डलों की ओर उठ गए। उसने हाथों से कुण्डल ढांप लिए।

युवक ठठ कर हँस पड़ा। हाथ बढ़ाकर उसने मद्यपात्र उठा कर आकण्ठ भरा और नन्दिनी की ओर बढ़ाकर कहा—"पिओ प्रिये, इस नगण्य नागरिक के लिये एक चषक"

कुण्डनी हँस दी। पात्र हाथ में लेकर उसने वंकिम कटाक्ष युवक पर पात किया, फिर कहा—"बड़े धूर्त हो भद्र," और मद्य पीगई।

युवक ने हाथ बढ़ाकर जूठा पात्र लेते हुए कहा—

"आप्यायित हुआ प्रिये !"

"क्या गाली खाकर ?"

"नहीं पान देकर"

नन्दिनी ने चषक उसके हाथ से लेकर उसमें मद्य भरा और युवक की

ओर बढ़ाकर कहा—"अब और भी आप्यायित होओ प्रिय !"

"नागपत्नी की आज्ञा शिरोधार्य", उसने पात्र पीकर कहा—"तो प्रिये, अब मैं चला।"

"किन्तु क्या मैं तुम्हारा और कुछ नहीं कर सकती ?"

"क्यों नहीं प्रिये, इस चिरदास को स्मरण रख कर"

युवक उठ खड़ा हुआ। नन्दिनी ने ताम्बूल-दान किया, गन्ध-लेपन किया और फिर उसके उत्तरीय के छोर को पकड़ कर कहा—"फिर कब आओगे भद्र ?"

"किसी भी दिन, नागदर्शन करने"

युवक हँस कर चल दिया। नन्दिनी अवाक् खड़ी रह गई।

युवक ने बाहर आ दास को एक स्वर्ण दिया और श्व पर सवार होकर तेजी से चल दिया। नन्दिनी गवाक्ष में से उसका जाना देखती रही। वह कुछ देर चुपचाप कुछ सोचती रही। फिर उसने दासी को बुलाकर कहा—"मैं अभी नन्दन साहु को देखा चाहती हूँ"

"किन्तु भद्रे, रात तीन पहर बीत रही है नन्दन साहु को उसके घर जाकर इस समय जगाने में बहुत खटपट होगी।"

"नहीं, नहीं, तू पुष्करिणी के दक्षिण तीर पर जाकर वहीं गीत गा, जो तूने सीखा है, साहु के घर के पीछे जो गवाक्ष है वहीं वह सोता है। तेरा गीत सुनते ही वह यहां आयेगा और कुछ करना नहीं होगा।"

"किन्तु भद्रे, यदि प्रहरी पकड़ लें ?"

"तो कहना—भिखारिणी हूं, भिक्षा दो। इच्छा हो तो वे भी गीत सुनें" दासी ने फिर कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप गुप्त द्वार से बाहर चली गई।

नन्दिनी ने अपने भीतरी कक्ष में जा यत्न से एक भोजपत्र पर कुछ पंक्तियां लिखीं और उसे मोड़कर उस पर गीली मिट्टी की मुहर कर दी। फिर वह चिन्तित होकर साहु के आने की प्रतीक्षा करने लगी।

: १०६ :

नन्दन साहु

वैशाली के अन्तरायण में नन्दन साहु की हट्ट खूब प्रसिद्ध थी। उसकी हट्ट में जीवन-सामग्री की सभी जिन्स बिक्री होती थी। हल्दी मिरचा और लसुन से लेकर अन्तःपुर के सुरभित करने योग्य सुन्दरी दासियों तक का वहां क्रय-विक्रय होता था। प्रात. सूर्योदय से लेकर रात के दो पहर तक उसकी दुकान पर ग्राहकों की आवा-जाही रहती थी। बढ़िया और काम-लायक सौदों की बिक्री का समय रात्रि का पिछला पहर ही होता था। उसकी विस्तृत दुकान में अनेक जिन्स अव्यवस्थित रूप में भरी रहती थी। उनकी कभी सफाई न होती थी। रात को एक दीपक हट्ट में जलता रहता था, जिसकी पीली और धीमी ज्योति में हट्ट की सभी वस्तु कांपती हुई सी प्रतीत होती थीं। हट, हट्ट का स्वामी, हट्ट का सारा सामान एक अशुभ और वीभत्स-सा लगता था, परन्तु गर्जू ग्राहक फिर भी वहां आते ही थे। एक पण मे सात मसाले के गाहक से लेकर सौ दाम तक के सम्भ्रान्त ग्राहक वहां बने ही रहते थे।

इस हट्ट में भरी हुई असंख्य निर्जीव वस्तुओं में चार सजीव वस्तु थीं, चारों में एक स्वयं गृहपति नन्दन साहु, दूसरी उसकी पत्नी 'भद्रा', तीसरी बेटी सोभा और चौथा पुत्र दामक। साहु की आयु साठ को पार कर गई थी, उसके गंजे सिर पर गिनती के दो चार बाल थे जो खड़े रहते थे। सम्भव है–उसने जीवन भर पेट भर कर भोजन नहीं किया था। इसी से उसका शरीर एक प्रकार से कंकाल मात्र था। वह कमर में एक मैली धोती लपेटे प्रातःकाल से आधी रात तक अपने थड़े तक

: ११० :

दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश

वैशाली नगरी का बड़ा भारी विस्तार था। उसके अन्तरायण में तीन सन्निवेश थे जो अनुक्रम से उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ के नाम से विख्यात थे। उत्तम सन्निवेश में स्वर्ण-कलश वाले सात सहस्त्र हर्म्य थे। यहां केवल सेट्ठि गृहपति और निगमों का निवास था। मध्यम सन्निवेश में चौदह सहस्त्र चांदी के कलश वाली पक्की अट्टालिकाएं थीं। इनमें विविध व्यापार करने वाले महाजन और मध्यम वित्त के श्रेणिक जन रहते थे। तीसरे कनिष्ठ सन्निवेश में तांबे के कलश कंगूरे वाले इक्कीस सहस्त्र घर थे। जहां वैशाली के अन्य पौर नागरिक उपजीवी जन रहते थे।

इस अन्तरायण के सिवा वैशाली के उत्तर-पूर्व में दो उपनगर और थे। एक तो उत्तर क्षत्रिय-कुण्डपुर-सन्निवेश कहा जाता था। यह ज्ञातृवंशीय क्षत्रियों का सन्निवेश था। इसके निकट उनका कोल्लाग-सन्निवेश था जिसे छूता हुआ ज्ञातृ-क्षत्रियों का प्रसिद्ध द्युतिपलाश नामक उद्यान एवं चैत्य था। दूसरा उपनिवेश का दूसरा भाग दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश कहलाता था। इसमें केवल श्रोत्रिय ब्राह्मणों के घर थे जो परंपरा से वहीं पीढ़ी दर पीढ़ी रहते चले आते थे। वैशाली की पश्चिम दिशा में वाणिज्य-ग्राम था। इसमें विश जन और कम्मकर रहते थे जो अधिकतर कृषि और पशुपालन का धन्धा करते थे। इस सम्पूर्ण बस्ती को वैशाली नगरी कहा जाता था।

दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश में सोमिल ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण धनिक, सम्पन्न और पण्डित था। वह ऋगादि चारों वेदों

का साङ्गोपाङ्ग ज्ञाता और ब्राह्मण-कार्य में निपुण था। बहुत से सेट्ठि जन और राजा उसके शिष्य थे। बहुत से बटुक देश-देशान्तरों से आ आकर उसके निकट विद्यार्जन करते थे। वह विख्यात काम्पिल्य शाखा का यजुर्वेदीय ब्राह्मण था। वेदाध्यायियों से उसका घर भरा रहता था। उसके घर की शुक-शारिकाएं ऋग्वेद की ऋचाएं उच्चारण करती थीं। वे पद-पद पर विद्यार्थियों के अशुद्ध पाठ को सुधारा करती थीं। उसका घर यज्ञ-धूम से निरन्तर धूमायित रहता था। सम्पूर्ण दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्डपुर-सन्निवेश में यह बात प्रसिद्ध थी कि श्रोत्रिय सोमिल के ऋषिकल्प पिता ऋद्धिभद्र के होमकालीन श्रमसीकर साक्षात् वीणाधारिणी सरस्वती अपने हाथों से पोंछती थी। श्रोत्रिय सोमिल ऊषाकाल ही में हवन करने बैठ जाते; दो दण्ड दिन चढ़े तक वे यज्ञ करते, बलि देते, फिर धुंएं से लाल हुई आंखों और पसीने से भरा शरीर लिये, अध्यापन के लिये कुशासन पर बैठ जाते। वेदपाठी होने के साथ ही वे अपने युग के दिग्गज तार्किक थे। उनकी विद्वत्ता और ब्रह्मण्य का वैशाली के गण-प्रतिनिधियों पर बड़ा प्रभाव था। राजवर्गी तथा जानपदीय सभी उनका मान करते थे।

इन्हीं सोमिल ब्राह्मण के यहां मगध के निर्वासित और पदच्युत महामात्य कूटनीति के आगार आर्य वर्षकार ने आतिथ्य ग्रहण कर निवास किया था। विज्ञापना के अनुसार लिच्छवि-राजकीय-विभाग से उनके लिये नित्य एक सहस्र सुवर्ण और आहार्य सामग्री आती। नगर के अन्य गण्य मान्य सेट्ठि सामन्त भी इस ब्राह्मण के सत्कार के लिये वस्त्र, फल, स्वर्ण, पात्र निरन्तर भेजते रहते। पर यह तेजस्वी ब्राह्मण इस सब उपानय सामग्री को छूता भी न था। वह उस सम्पूर्ण सामग्री को उसी समय ब्राह्मणों और याचकों में बांट देता था। इससे सूर्योदय के पूर्व ही से सोमिल ब्राह्मण के द्वार पर याचकों, ब्राह्मणों और बटुकों का मेला लग जाता।

देखते ही देखते इस तेजपुंज ब्राह्मण के प्रतिदिन सहस्र सुवर्ण दान-माहात्म्य और वैशिष्ट्य की चर्चा वैशाली ही में नहीं, आस-पास दूर २ तक फैल चली। याचक लोग याचना करने और भद्र संभ्रान्त जन इस ब्राह्मण का दर्शन करने दूर २ से आने लगे। ब्राह्मण स्वच्छ जनेऊ धारण कर विशाल ललाट पर श्वेतचन्दन का लेप लगा एक कुशासन पर बहुधा मौन बैठा रहता। एक उत्तरीय मात्र उसके शरीर पर रहता। वह बहुत कम भाषण करता, तथा सोमिल की यज्ञशाला के एक प्रान्त में एक काष्ठफलक पर रात्रि को सोता था। वह केवल एक बार हविष्यान्न आहार करता। वह यज्ञशाला के प्रान्त में बनी उस घास की कुटीर के बाहर केवल एक बार शौच कर्म के लिये ही निकलता था।

सहस्र सुवर्ण नित्य दान देने की चर्चा फैलते ही अन्य श्रीमन्त भक्तों ने भी सुवर्ण भेंट देना प्रारम्भ किया—सो कभी कभी तो प्रतिदिन दस सहस्र सुवर्ण दान मिलने लगा। ब्राह्मण याचक आर्य वर्षकार का जय जयकार करने लगे और अनेक सत्य-असत्य, कल्पित-अकल्पित अद्भुत कथाएं लोग उसके सम्बन्ध में करने लगे। बहुमूल्य उपानय के समान ही यह ब्राह्मण भक्तों तथा राजदत्त सेवा भी नहीं स्वीकार करता था। वज्जीगण के वैदेशिक खाते से जो दास दासी और कर्मिक सेवा में भेजे गये थे वे बैठे २ आनन्द करते। ब्राह्मण उनसे वार्ता तक नहीं करते, पास तक आने नहीं देते। केवल ब्राह्मण सोमिल ही आर्य वर्षकार के निकट जा पाता, वार्तालाप कर पाता। वही उन्हें अपने हाथ से मध्यान्होत्तर हविष्यान्न भोजन कराता—जो सूद-पाचकों द्वारा नहीं—स्वय गृहिणी सोमिल की ब्राह्मणी रसोड़े से पृथक् अत्यन्त सावधानी से तैयार करती थी; और जिसे सोमिल-दम्पति को छोड कोई दूसरा छू या देख भी नहीं सकता था। ऐसी ही अद्भुत दिनचर्या इस पदच्युत आमात्य ब्राह्मण की वैशाली में चल रही थी।

: १११ :

हरिकेशीबल

इसी समय वैशाली में एक और नवीन प्राणी का आगमन हुआ था। यह एक आजीवक परिव्राजक था। वह अत्यन्त लम्बा, काला, कुरूप और एक आंख से काणा था। उसकी अवस्था बहुत थी—वह अति कृशकाय था; परन्तु उसकी दृष्टि पैनी, वाणी सतेज और शरीर का गठन दृढ़ था। वह कभी स्नान नहीं करता था, इससे उसका शरीर अत्यन्त मलिन और दूषित दीख पड़ता था। उसने अंग पर पोसुकूलिक धारण किये थे, जो श्मशान में मुर्दों पर से उतार कर फेंक दिये गये थे। वे भी फटकर चिथड़े २ हो गये थे और गंदे होकर मिट्टी के रंग में मिल गये थे।

यह आजीवन निर्द्वन्द्व विचरण करता। गृहस्थों के द्वार पर वीथी हट्ट पर, राजद्वार और राजपथ पर सर्वत्र अबाध रूप से निरन्तर, घूमता रहता था। उसका सोने, बैठने, ठहरने का कोई स्थान न था। उसकी जीवनयात्रा में सहायक सामग्री भी कुछ उसके निकट न थी। इस प्रकार यह कृशकाय, घृणित और कुत्सित मलिन भूत-सा व्यक्ति जहां जाता वहीं लोग उसे तिरस्कार-पूर्वक दुत्कार देते, उसे अशुभ रूप समझते। परन्तु उसे इस तिरस्कार घृणा की कोई चिन्ता न थी। वह जहाँ से भिक्षा मांगता वहाँ जाकर कहता 'मैं चाण्डालकुलोत्पन्न हरिकेशीबल हूं। मैं सर्वस्त्यागी संयमी ब्रह्मचारी हूं। मैं अपने हाथ से अन्न नहीं रांधता, मुझे भिक्षा दो। भिक्षा मेरी जीविका है।' बहुत लोग उसे मारने दौड़ते, बहुत मार बैठते, बहुत उसे दुत्कार कर भगा देते; पर वह किसी पर रोष नहीं करता था। वह मार, तिरस्कार और धक्के

खाकर हंसता हुआ दूसरे द्वार पर वही शब्द कह कर भिक्षा मांगता था। कभी कभी लोग उस पर दया करके उसे कुछ दे भी देते थे; पर उसे बहुधा निराहार किसी वृक्ष के नीचे पड़ा रहना पड़ता था।

वह घूमता हुआ एक दिन कुण्ड ग्राम के दक्षिण-ब्राह्मण-सन्निवेश में सोमिल श्रोत्रिय के द्वार पर जा पहुंचा। वहाँ ब्राह्मणों, ब्रह्मचारियों श्रोत्रियों और वेदपाठी बटुकों की भीड़ लगी थी। आर्य वर्षकार एक छप्पर के नीचे बांस की बनी मोंढ पर बैठे अपनी आंखों स्वर्ण, वस्त्र बांटना देख रहे थे। अनेक श्रोत्रिय बटुक इस आयोजन में हाथ बटा रहे थे। इसी समय आजीवक हरिकेशीबल उन ब्राह्मणों की भीड़ में मिलकर जा खड़ा हुआ।

इस अशुभ, अशुचि, घृणित श्मशान से उठाए हुए चीथड़े अंग पर लपेटे, काणे मनुष्य को देखकर सब ब्राह्मण, बटुक, श्रोत्रिय दूर हट गये। बहुतों ने मारने को दण्ड हाथ में लेकर कहा—

"तू कौन है रे भाकुटिक, कहां से तू ब्राह्मणों में घुस आया? भाग यहां से।"

उसने सहज शान्त स्वर में कहा—"मैं चाण्डाल-कुलोत्पन्न हरिकेशी-बल हूं। मैं त्यागी ब्रह्मचारी हूं। मैं अपना अन्न रांधता नहीं। भिक्षा मेरी जीविका है, मुझे भिक्षा दो।"

बहुत ब्राह्मण अपना स्वच्छ जनेऊ हाथ में ले लेकर उसे मारने दौड़े। भाग रे चाण्डाल भाग, भाकुटिक ब्राह्मणों में घुस आया पतित।

परन्तु हरिकेशी भागा नहीं। विचलित भी नहीं हुआ। उसने कहा—"मैं संयमी हूं, दूसरे लोग अपने लिए जो अन्न रांधते हैं उसी में से बचा हुआ थोड़ा अन्न मैं भिक्षाकाल में मांग लेता हूँ। आप लोग यहां याचकों को बहुत स्वर्ण, वस्त्र, अन्न दे रहे हैं। मुझे स्वर्ण नहीं चाहिए, उससे मेरा कोई काम नहीं सरता। वस्त्र मैं श्मशान से उठा लाता हूं,

नहीं तो दिगम्बर आजीवक हूं। अन्न चाहिए। मुझे अन्न दो। आपके पास बहुत अन्न है, आप लोग खा पी रहे हैं, मुझे भी दो, थोड़ा ही दो। मैं तपस्वी हूं। ऐसा समझ कर जो बच गया हो वही दो।"

एक ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर कहा—"अरे मूर्ख, यहां ब्राह्मणों के लिये अन्न तैयार होता है, चाण्डालों के लिये नहीं, भाग यहां से।"

"अतिवृष्टि हो या अल्प वृष्टि, तो भी कृषक ऊँची नीची सभी भूमि में बीज बोता है, और आशा करता है खेत में अन्न पाक होगा। उसी भांति तुम भी मुझे दान दो। मुझ जैसे तुच्छ चाण्डाल मुनि को अन्न दान करने से भी तुम्हें पुण्यलाभ होगा।"

इस पर बहुत से ब्राह्मण एक बार ही आपे से बाहर होकर लगुड-हस्त हो उसे मारने को दौड़े। उन्होंने कहा—'अरे दुष्ट चाण्डाल, तू अपने को मुनि कहता है। नहीं जानता, पृथ्वी पर केवल हम ब्राह्मण ही दान पाने के प्रकृत-अधिकारी हैं, ब्राह्मणों ही को दिया दान पुण्य-फल देता है।'

"क्रोध-मान-हिंसा-असत्य-चोरी और अपरिग्रह से युक्त जनों को जाति तथा विद्या से रहित ही जानना चाहिए। ऐसे जन दान के पात्र नहीं हो सकते, वेद पढ़कर भी उसके अभिप्राय को न जानने वाला पुरुष कोरा गाल बजाने वाला कहाता है, परन्तु ऊँच-नीच में समभाव रखने वाला मुनि दान के योग्य सत्पात्र है।"

"अरे काणे चाण्डाल, तू हम ब्राह्मणों के सम्मुख वेदपाठी ब्राह्मणों की निन्दा करता है, याद रख, हमारा बचा हुआ यह जलपान भले ही सड़ जाय और फेंकना पड़े, पर तुझ निगंठ चाण्डाल को एक कण भी नहीं मिल सकता, तू भाग।"

'सत्यवृत्ति एवं समाधि सम्पन्न, मन वचन काय से असत्य प्रवृत्तियों से युक्त, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी को यदि तुम अन्न नहीं दे सकते तो फिर तुम पुण्य भी नहीं पा सकते हो।"

इतनी देर बाद श्रोत्रिय सोमक ने चिल्लाकर कहा—

"अरे कोई है, इसे डण्डे मारकर भगाओ यहां से, मारो धक्के। गर्दन नापो गर्दन।"

इस पर कुछ बटुक दण्ड ले लेकर हरिकेशी को मारने लगे। हरिकेशी हंसता हुआ निष्क्रिय पिटता रहा।

इसी समय एक परम रूपवती षोडशी बाला, बहुमूल्य मणि, सुवर्ण, रत्न धारण किये, विविध बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित दौड़ी आई और हरिकेशी के आगे दोनों हाथ फैलाकर खड़ी हो गई। उसे इस प्रकार खड़ी देख हरिकेशी को मारने वाला ब्राह्मण बटुक रुक गया। युवती ने कहा—"अलम् अलम्। मैं पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा महापद्म की पुत्री जयन्ती हूं, मेरे पिता ने मुझे इस महात्मा को प्रदान कर दिया था, परन्तु इस इन्द्रिय-विजयी ने स्वीकार नहीं किया। यह महातपस्वी, उग्र ब्रह्मचारी घोर व्रत और दिव्य शक्तियों का प्रयोक्ता है। इसे क्रुद्ध या असन्तुष्ट न करना, नहीं तो यह तुम सब ब्राह्मणों को अपने तेज से जलाकर भस्म कर डालेगा।"

उस तथाकथित राजकुमारी षोडशी बाला की ऐसी अतर्कित वाणी सुनकर सब ब्राह्मण आश्चर्य-चकित रह गये। बहुत-से तो भयभीत होकर उस घृणित चाण्डाल मुनि को देखने लगे। बहुत-से अब भी अपशब्द बकते रहे। इसी समय नन्दन साहु बहुत-सी खाद्य सामग्री गाड़ी में भरे वहां आ उपस्थित हुआ। जब से आर्य वर्षकार का वहां सदाव्रत लगा था—नन्दन साहु सब रसद पहुंचाता था। साहु ने ज्यों ही वहां खड़े निगंठ चाण्डाल मुनि को देखा—वह दौड़कर उसके चरणों में लोट गया। उस महाकलुषित अशुभ चाण्डाल के चरणों में साहु को लोटता हुआ देख ब्राह्मणों को और भी आश्चर्य हुआ। उनके आश्चर्य तथा भीति को बढ़ाता हुआ साहु बोला—"आर्यो, यह साक्षात् तेज:पुञ्ज तपस्वी हैं। आप जानते नहीं हैं, मन्द कान्तार यक्ष की चौकी पर यह

उग्र मुनि तप करते हैं। वह भीषण यक्ष, जिसके भय से वैशाली का कोई जन रात्रि को उस दिशा में नहीं जाता, इस मुनि की नित्य चरण सेवा करता है। यह मैंने आँखों से देखा है। आपने अच्छा नहीं किया जो भिक्षाकाल में असन्तुष्ट कर दिया। आर्यो, मेरा कहा मानो, आप इन महातेजःपुञ्ज तपस्वी के चरणों में गिरकर इसकी शरण जाओ, नहीं तो आपकी जीवन-रक्षा ही कठिन हो जायगी।"

परन्तु साहु की ऐसी भयानक बात सुनकर भी ब्राह्मण जड़वत् खड़े रह गये। इस काले चाण्डाल के चरण छूने का किसी को साहस नहीं हुआ।

साहु ने फिर चाण्डाल मुनि के चरण छुए और कहा—क्षमा करो, हे महापुरुष, इन ब्राह्मणों को जीवनदान दो। आइये समर्थ भदन्त, मेरे साथ मेरी भिक्षा ग्रहण कर मेरे कुल को कृतार्थ कीजिए।

इतना कह नन्दन-साहु उस काणे तपस्वी चाण्डाल को बड़े आदर-पूर्वक राह-मार्ग को अपने उत्तरीय से झाड़ता हुआ अपने साथ ले चला। सब ब्राह्मण तथा पौरगण जड़वत् इस व्यापार को देखते रहे। प्रतापी मगध महामात्य निश्चल बैठे देखते रहे।

: ११२ :

चाण्डाल मुनि का कोप

हरिकेशीबल के वहां से चले जाने पर भी वह तथाकथित राज-कन्या वहां से नहीं गई। वह बहुत प्रकार से ब्राह्मणों को डराती धमकाती रही। उसने कहा—"हे ब्राह्मणो, तुमने अच्छा नहीं किया जो चाण्डाल मुनि को भिक्षा के काल में भिक्षा नहीं दी, उसे अपशब्द कहे, पीटा, उसे विरत किया। अब भी समय है तुम उसके चरणों में पड़कर प्राण-भिक्षा मांग लो नहीं तो मन्दकान्तार का यक्ष आज आप लोगों को जीवित नहीं छोडेगा।"

बहुत ब्राह्मण डर गये। बहुत संदिग्ध भाव से उस रूपसी बाला की बात सुनते रहे। कुछ ही देर में वे सब फिर कहने लगे—"वाह यह सब माया यहां नहीं चलेगी। हम ब्राह्मण वेदपाठी क्या उस काणे चाण्डाल के पैर छुएंगे?"

सुन्दरी क्रुद्ध होती हुई चली गई। बहुत जन रूपसी के रूप की और कुछ उसकी अद्भुत वार्ता की आलोचना करते रहे। भोजन की वेला हुई और ब्राह्मणपंक्ति में बैठे, ब्राह्मण-भोजन प्रारंभ हुआ। भोजन के बाद स्वर्ण वस्त्र उन्हें बांटे गए। परन्तु यह क्या आश्चर्य चमत्कार हुआ देखते ही देखते सभी ब्राह्मण उन्मत्तों की सी चेष्टा करने लगे। वे हंसने नाचने और अट्टहास करने लगे, अपने भूषण वस्त्र उतार २ कर नंगे हो बीभत्स और अश्लील चेष्टाएं करने लगे। बहुत लोग रक्तवमन कर मूर्छित होने लगे। बहुत जन कटे काष्ठ के समान भूमि पर गिरकर पटापट मरने लगे।

सोमिल ने भयभीत होकर आर्य वर्षकार से कहा—'आर्य, यह सब क्या हो गया ?"

"ठीक नहीं हुआ सोमिल, चाण्डाल मुनि का कप ब्राह्मणों पर हुआ। संभवतः यक्ष ने कुपित होकर ब्राह्मणों को मार डाला है।"

"तो आर्य, अब करना क्या चाहिए ?"

"सोमिल, सब ब्राह्मणों को लेकर तुम नन्दन साहु के घर जाकर उस जितेन्द्रिय मुनि की स्तुति करके उसे प्रसन्न करो, इसी में कल्याण देखता हूं।"

तब सोमिल बहुत से ब्राह्मणों को संग ले नन्दन साहु के घर पहुंचा—जहां वह कुत्सित चाण्डाल मुनि उच्चासन पर बैठा आनन्द से विविध पक्वान्न और मिष्टान्न खा रहा था। उसे देख हाथ जोड़कर सोमिल को आगे कर सब ब्राह्मणों ने कहा—

"हे भदन्त, हमें क्षमा करो, हम मूढ और अज्ञानी बालक के समान हैं। हम सब मिलकर आपकी चरण-वन्दना करते हैं। हे महाभाग, हम आपका पूजन करते हैं। आप हम सब ब्राह्मणों के पूज्य हो। यह हम विविध प्रकार के व्यंजन अन्न और पाक आपके लिए लाए हैं। इन्हें ग्रहण कर हमें कृतार्थ करो। हे भदन्त! हे महाभाग!! हम सब ब्राह्मण आपकी शरणागत हैं।"

चाण्डाल मुनि ने सुनकर कहा—'हे घमण्डी ब्राह्मणो! यदि सत्य ही तुम्हें अनुताप हुआ है तो जाओ मंदकान्तार जा, साणकोष्ठक चैत्य में शूलपाणि यक्ष की अभ्यर्थना पूजन करो। उसे प्रसन्न करो। नहीं तो सम्पूर्ण वैशाली ही का नाश हो जायगा। हे ब्राह्मणो! अपने पाप से वैशाली को नष्ट न करो।"

यह सुनकर सब ब्राह्मण, बटुक ब्रह्मचारी, वेदपाठी श्रोत्रिय जन सहस्रों भीत-विस्मित, चमत्कृत नागर पौर जनों की भीड के साथ विकट विजन मन्दकान्तार वन में साणकोष्ठक चैत्य में जा अतिभयानक शूलपाणि यक्ष

की मूर्ति के सामने भूमि पर गिरकर 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कहने लगे। तब उस अन्ध गुफा से मूर्ति के पीछे से रक्ताम्बर धारण किये बड़ी सुन्दरी बाला शूल हाथ में लिये बाहर आई और उच्च स्वर से कहने लगी—"अरे मूढ़ जनो! मैं तुम सब ब्राह्मणों का आज भक्षण करूंगी। मैं यक्षिणी हूं। तुमने ब्राह्मणत्व के दर्प में मनुष्य-मूर्ति का तिरस्कार किया है, क्या तुम नहीं जानते कि ब्राह्मण और चाण्डाल दोनों में एक ही जीवन सत्व-प्रवाहित है, दोनों का जन्म एक ही भांति होता है, एक ही भाँति मृत्यु है, एक ही भाँति सोते हैं खाते हैं, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न के वशीभूत हो सुख-दुख की अनुभूति करते हैं। अरे, मूर्खो! तुम ने कहा था कि तुम्हारा तपःपूत अन्न फेंक भले ही दिया जाय पर चाण्डाल याचक को नहीं मिलेगा? तुम मनुष्य-हिंसक मनुष्य-शत्रु, मनुष्य-हित-बाधक हो, तुम मनुष्य-विरोधी हो। मरो तुम आज सब।"

"त्राहि माम्, त्राहि माम्, हे देवी, हे यक्षिणी मातः! हमारी रक्षा करो। हमने समझा था। हमारा पूत अन्न · ·।"

"अरे मूर्खो! तुम जल से शरीर की बाह्य शुद्धि करके उसे ही महत्व देते हो, तुम अन्तरात्मा की शुद्धि को नहीं जानते। अरे, यज्ञ करने वाले ब्राह्मणो, तुम दर्भ, यज्ञ, यूप, आहवनीय, गन्ध, तृण, पशुबलि काष्ठ और अग्नि तक ही अपनी ज्ञानसत्ता को सीमित रखते हो तुमने असत्य का, चोरी का, परिग्रह का त्याग नहीं किया। तुम स्वर्ण दक्षिणा और भोजन के लालची पेटू ब्राह्मण हो, तुम शरीर को महत्व देते हो, शरीर की सेवा में लगे रहते हो। तुम सच्चे और वास्तविक यज्ञ को नहीं जानते।"

"तो यक्षिणीमातः, हमें यज्ञ की दीक्षा दो।"

"अरे मूर्ख ब्राह्मणो! कष्टसहिष्णुता तप है, वही यज्ञाग्नि है, जीव तत्व यज्ञाधिष्ठान है। मन वचन कर्म की एकता यज्ञाहुति है। कर्म समिध

: ११३ :

सन्निपात-भेरी

फसल कट चुकी थीं और वर्षा प्रारम्भ हुआ चाहती थी। वैशाली में युद्ध की चर्चा फैलती जाती थी। मगध सम्राट् बिम्बसार की भीषण तैयारियों की सूचना प्रतिदिन चर ला रहे थे। परिषद् की गणसंस्था ने युद्ध-उद्वाहिका की विशिष्ट बैठक की सन्निपात-भेरी का आवाहन किया था। संथागार में वज्जीगण के अष्टकुल-प्रतिनिधि, नवमल्ल-संघों के और अठारह कासी-कोलों के गणराज्यों के राजप्रमुख आमन्त्रित थे। सम्पूर्ण उद्वाहिका सदस्य उपस्थित थे।

गणपति ने उद्वाहिका का उद्घाटन किया। उन्होंने खड़े होकर कहा—"भन्ते गण सुनें, आज जिस गुरुतर कार्य के लिए वज्जी-मल्ल-कासी-कोल, के गणराज्यों का यह संयुक्त सन्निपात हुआ है उस में गण को निवेदन करता हूँ। गण को भली भांति विदित है कि मगध-सम्राट् बिम्बसार वज्जी के अष्टकुलों के गणतन्त्र को नष्ट करने पर कटिबद्ध हैं। वज्जीगण सब से मल्लों के नौ संघराज और कासीकोलों के १८ गणराज्यों का भाग्य भी बँधा है। गण को सन्धि वैग्राहिक आयुष्मान् जयराज बतायेंगे कि शत्रु ने किन २ कूट चालों से हमें युद्ध के लिये विवश किया है। कोशलपति महाराज प्रसनजित् से पराहत होकर सम्राट् बिम्बसार का उत्साह भङ्ग हो जायगा हमने यही आशा की थी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। हमें अभी यह सुविधायें हैं कि पड़ोसी राज्यों के समाचार हमें समय पर ठीक २ मिल जाते हैं। इसी से हमसे मगध की यह विकट समर-सज्जा छिपी नहीं रही है। भन्ते गण, आज वज्जीगण के

अष्टकुल पर और मल्ल, काशी, कोल गण राज्यों पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं। और हम कह सकते हैं कि अब किसी भी क्षण वज्जी की राजधानी वैशाली पर मगधसेना का आक्रमण हो सकता है।

इतना कहकर गणपति बैठ गए। पर राष्ट्रसचिव नागसेन ने खड़े होकर कहा—

"भन्ते गण सुनें, गणपति ने जो सत्य विभीषिकापूर्ण सूचना दी है उसकी गम्भीरता एक और घटना से और बढ़ जाती है। भन्ते गण जानते हैं कि कौशाम्बीनरेश शतानीक ने पूर्वकाल में चम्पा पर आक्रमण करके उसे आक्रान्त किया था, आप यह भी जानते हैं कि चम्पा की तटस्थता एवं मित्रता का वज्जी के साथी गण-राज्यों से कैसे गम्भीर स्वार्थ है। साथ ही यह बात भी नहीं भुलाई जा सकती कि चम्पा का स्वतन्त्र राज्य मगध की आँखों का पुराना शूल था, क्योंकि वह उसकी पूर्वी सीमा से मिला था। और जब तक वह स्वाधीन था, मगधसम्राट् बंग, कलिङ्ग की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकता था। अंग, बंग, कलिंग वास्तव में राजनैतिक एकता में पूर्ण आबद्ध हैं। इधर हमारा लगभग आधा वाणिज्य चम्पा ही के मार्ग से स्वर्णद्वीप और मलयद्वीप-पुञ्ज तक जाता है। इससे अंग की राजधानी चम्पा हमारे वाणिज्य ही के लिये केन्द्र नहीं थी प्रत्युत मगध-सम्राट् के लिये भी कण्टक-रूप थी। इसी से कौशाम्बीपति उदयन से जब हमारी सन्धि हुई तब हमने उन्हें विवश किया था कि वे अंग को स्वतन्त्र राज्य घोषित करें। और उन्होंने भी प्रसेनजित् और मगध-सम्राट् के बीच व्यवधान रखने ही में कल्याण समझ कर हमारा प्रस्ताव मान लिया था और दधिवाहन को अङ्गपति मानकर चम्पा में उसका अभिषेक कर दिया था। अब मगध-सम्राट् ने चम्पा के इस दुर्बल असहाय राजा दधिवाहन को मार कर अङ्ग-राज्य को मगध-साम्राज्य में मिला लिया है। इससे न केवल पूर्व में

और कलिंग के लिये भय उत्पन्न हो गया है, प्रत्युत हमारा पूर्वी
ज्य ही समाप्त हो गया है।"

'गसेन यह कह कर बैठ गये। अब जयराज सन्धि-वैग्राहिक ने
कर कहा—

"न्ते गण ने गणपति और परराष्ट्रसचिव के भाषण सुने, मैं
का ध्यान अपने अष्टकुल के संगठन और उस पर आने वाली
विपत्ति की ओर आकर्षित किया चाहता हूँ। मगध-साम्राज्य में अब से
कुछ ही वर्ष प्रथम केवल ८० सहस्र ग्राम थे; और उसकी परिधि २३
सौ मील थी। परन्तु आज उसका विस्तार आसमुद्र सम्पूर्ण भारतखण्ड
पर है। उसके साम्राज्य में जो दो चार छिद्र हैं उनमें हमारे गणराज्य ही
सबसे अधिक उसकी आंख में खटक रहे हैं। प्रसेनजित ने उसे हरा
दिया था पर वास्तव में उसका कारण बन्धुलमल्ल और उसके पुत्रों का
पराक्रम था। बूढ़ा कामुक प्रसेनजित् आज आकाश से टूटे तारे की भांति
लोप हो गया। इसी से बिम्बसार को इतना साहस हुआ कि वह हम
पर अभियान कर रहा है। अब हमारे अष्टकुलों में मिथिला के विदेह,
कुण्डपुर के क्षत्रिय, कोल्लाग के उग्र, और ऐक्ष्वाकु लिच्छिवि आदि
अपना ठीक संगठन बनाये रहे हैं। पावा और कुशीनारा के मल्लों के नौ
गण-संघ भी आज हमारे साथ हैं, और कासी कोलों के अष्टादश गण-
राज्य भी। इस प्रकार कासी-कोल-राज्य,-वज्जी-गण-राज्य संघ और
मल्ल-गण-राज्य-संघों का त्रिपुट हमारा सम्पूर्ण संगठन है। मगध-
सम्राट् ने हमारे संयुक्त गण-राज्य पर अब अभियान किया है इसी से
हमने आज मल्लों, अष्टकुल वज्जियों तथा कासी कोशलों के १८ गण
राज्यों का यह सन्निपात भेरी का आवाहन है।"

इतना कहकर सन्धिवैग्राहिक जयराज कुछ देर चुप रहे, फिर
उन्होंने उपस्थित गण सन्निपात की ओर देखकर कहा—

"भन्ते गण, आप जानते हैं कि आज भारतखण्ड में षोडश महाजन

पद हैं। इन षोडश जनपदों से कासी, कोल, वज्जी, मल्ल इन चारों गण-संघों के छत्तीस राज्यों का हमारा संयुक्त सन्निपात एक ओर है। अब चेतिय के दोनों उपनिवेशों के उपचर अपचर से हमें सन्धि करने की आवश्यकता है। चेतिय की राजधानी सुत्तिमती को जो मार्ग काशी होकर जाता है, उसमें दस्युओं का भय है। और हमें वहां सुरक्षा का सम्पूर्ण प्रबन्ध करके अपना चर भेजना आवश्यक है।

"रही कौशाम्बीपति उदयन की बात, वे अभी हमारे मित्र हैं। कुरु के कौरव प्रधान राष्ट्रपाल और पांचाल ब्रह्मदत्त हमारे गण के समर्थक हैं। ये दोनों गण भली भांति सुगठित हैं। निस्सन्देह मथुरा के महाराज अवन्ति वर्मन् और अवन्ती के चण्डमहासेन हमारे पक्ष में नहीं हैं। परन्तु वे चण्डमहासेन कभी भी अपने जामाता उदयन के विरोधी नहीं होंगे। फिर इन दोनों में मगध का विग्रह है। यद्यपि मगध-सम्राट् ने भी उदयन को अपनी कन्या देकर भारी राजनीति प्रकट की है और कुटिल वर्षकार ने यौगन्धरायण को भरमा कर मैत्री-सूत्र में बांधा है, फिर भी अनेक गम्भीर कारण ऐसे हैं कि वत्स के महामात्य यौगन्धरायण के कुशल कौटिल्य से ये दोनों महाराज्य इस युद्ध में सर्वथा उदासीन ही रहेंगे। परन्तु हमें इसी पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। महाराज उदयन से हमें मित्रता के सूत्र और भी दृढ़ रखने चाहियें; और इसके लिए हमें भन्ते गण, देवी अम्बपाली का अनुरोध प्राप्त करना होगा। देवी अम्बपाली ही का ऐसा प्रभाव महाराज उदयन पर है कि वे आंखें बन्द करके यौगन्धरायण के परामर्श की अवहेलना कर सकते हैं।

"भन्ते गण, अब मैं आपका ध्यान सुदूर राज्यों की ओर आकर्षित किया चाहता हूं; दक्षिण के अस्सकराज अरुण और गान्धार के महा-गणपति पुक्कुसाति। आप जानते हैं कि गान्धारपति पुक्कुसाति ने मगध-सम्राट् बिम्बसार को पठौनी भेजी थी। वह चाहते थे कि पर्शुपुरी के शासानुशास को बिम्बसार सहायता दे। उनकी कठिनाइयां भी बड़ी

पेचीली एवं दुःखप्रद हैं। उनका छोटा-सा गण पार्शवों का अब देर तक सामना नहीं कर सकता। पार्शव शासानुशास दारयोश ने पश्चिम गान्धार को अभी-अभी अपने साम्राज्य में मिला लिया है। वह अब सम्पूर्ण तक्षशिला गान्धार के जनपद को आक्रांत किया चाहता है। वास्तव में पार्शुपति दारयोश पश्चिम का बिम्बसार है। इसी से सहायता की इच्छा से गान्धार के गणपति ने मगध-सम्राट् बिम्बसार को पठौनी भेजी थी। परन्तु मगध-सम्राट् के लिए अपनी ही उलझनें थोड़ी नहीं थीं। गान्धार का मगध पर कुछ ऋण भी है। मगध के अनेक मगध तरुण तक्षशिला के सर्वोत्कृष्ट स्नातक हैं। उन्होंने गान्धारराज को बहुत कुछ आश्वासन वहां से आती बार दिया था; परन्तु मित्रसिंह ने भी उन्हीं के साथ तक्षशिला छोड़ा था और उन्होंने गान्धारपति को समझा दिया था कि मगध-सम्राट् बिम्बसार पूर्व का दारयोश है। ऐसे साम्राज्य-लोलुपों से आशा मत कीजिए। वज्जियों का अष्टकुल पूर्वी गान्धार-तन्त्र है, वह आपका मित्र है। इसलिए वैशाली गान्धार के अपने ऋण को उतारेगा।"

कुछ देर चुप रह कर जयराज फिर बोले—"इसलिए मित्रो, हमने मित्रसिंह के परामर्श से गान्धारपति को, जो संभव हुआ, सहायता भेजी। और आपको अभी मित्र काप्यक बतावेंगे कि जिस काल मगध-सम्राट् चम्पा और श्रावस्ती में व्यस्त थे—वैशाली के तरुणों ने सुदूर सिन्धुनद के तीर पर अपने खंग की धार से वज्जियों के अष्टकुल का कैसा मनोरम इतिहास लिखा था।

"परन्तु मैं अभी कुछ और भी बातें कहूंगा; भन्ते गण सुनें! अस्सक का राजा अरुण कलिंग-गणपति सत्तभु पर आक्रमण किया चाहता है। कलिंगगणपति ने वज्जियों के अष्टकुलों की सहायता मांगी है और पूर्व समुद्र में अपनी स्थिति ठीक रखने के विचार से हमने उसे स्वीकार कर लिया है तथा कलिंगराज्य से हमारी संतोषप्रद संधि

हो गई है। रहा अस्सक, सो कभी वैशाली के तरुणों की खड्ग से उसका भी निर्णय हो जायगा। अब काम्बोजों के बर्बरों का ही वर्णन रह गया हैं। वे थोड़े से स्वर्ण और उत्तम शस्त्र पाकर ही अपना रक्त-दान हमें दे सकते हैं। इस प्रकार भन्ते गण, हमने सोलह महाजनपदों में अपनी स्थिति यथासभव ठीक कर ली है।"

जयराज महासंधि-वैग्राहिक यह कहकर बैठ गये। अब गान्धार काप्यक ने खड़े होकर कहा—"भन्ते गण सुनें, अष्टमहाकुल के वज्जियों ने जो कुछ सिंधुनद पर अपनी कीर्ति विस्तार की है उसीका बखान करने मैं यहां आया हूँ, गान्धार-गणपति की ओर से साधुवाद और कृतज्ञता का सदेश लेकर।

"वज्जीगणों के नागरिकों की सेना में सम्मिलित होने का मुझे सम्मान मिला था। आचार्य बहुलाश्व ने स्वयं उनका निरीक्षण किया था। अश्व-संचालन और शार्ङ्ग, धनुष, खड्ग, शल्य, गदा और शक्ति के युद्ध में वैशालीसंघ के तरुण गान्धार तरुणों से किसी प्रकार कम न थे। भन्ते गण, ऐसे मित्रों को पाकर हमें गर्व हुआ। आचार्य बहुलाश्व ने उन्हें पुष्कलावती से आनेवाले राजमार्ग के सम्पूर्ण सिंधु-तट की रक्षा का भार सौंपा था। शास के शिखी, सौवीर, पक्त, भला-नस और वक्षु नदी के उत्तर तथा पशुपुरी के पूर्व के सम्पूर्ण जनपद को ध्वंस करने की बड़ी भारी तैयारी की थी। परंतु उसकी सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि वह सिंधु को जहां से चाहे पार नहीं कर सकता था। इसे वैशाली के तरुणों से अरक्षित-गोपित घाटों ही से नदी पार करना अनिवार्य था। भन्ते, मैं अत्युक्ति नहीं करता, इन वीर तरुण वज्जियों के कौशल और शौर्य ही के कारण वह अपने सम्पूर्ण जनबल से लाभ नहीं उठा सका और हमने उसके खण्ड २ करके सदैव के लिए उसको दलित कर दिया। वे बहुत कम बल लेकर पीछे लौट सका। वज्जी वीरों ने गान्धार तरुणों के साथ सिंधु पार कर पुष्कलावती, सुवास्तु और

कुंभा तक उसका पीछा किया और शत्रुवाहिनी-पति को जीवित पकड़ लिया। तब हमारे प्रधान सेनानायक प्रियमेध ने अश्रु-गद्गद् होकर कहा था—'तक्षशिला सदा के लिए वैशाली का ऋणी रहेगा' और आज अपने सेनापति के वे ही शब्द मैं भी संथागार में दुहराता हूं।"

प्रचण्ड करतल ध्वनि और साधु-साधु की ध्वनि के बीच काप्यक चुपचाप खड़े रहे। फिर कुछ ठहर कर बोले—"गान्धार में वज्जियों के अष्टकुलों की कीर्तिध्वजा फहराने वाले, शासानुशास की वाहिनीपति को जीवित बन्दी बनाने वाले मेरे सुहृद प्रिय-दर्शी सिंह यहां आपके सम्मुख उपस्थित हैं जिनके नेतृत्व में वैशाली-तन्त्र के तरुणों ने यह कीर्ति कमाई थी। वहां हमारे संघ ने वयस्य सिंह को गान्धार जनपद का नागरिक और गान्धार गणसंघ का आजन्म सदस्य चुना था। परंतु भन्ते गण, मुझे और भी कुछ कहना है। जब हर्षध्वनि के बीच आचार्य बहुलाश्व ने गान्धार गण के समक्ष यह घोषणा की कि उन की सुकुमारी कुमारी रोहिणी का वीरवरसिंह के प्रति सात्विक प्रेम है और वे उसका अनुमोदन करते हैं तब सम्पूर्ण गणजन में आनन्द और उल्लास का समुद्र हिलोरे लेने लगा और गणजन ने इच्छा प्रकट की कि रोहिणी और सिंह का पाणिग्रहण गण के समक्ष वहीं हो।

"गणपति की इस आज्ञा को पालन करने जब सुश्री रोहिणी वक्ष-कोष्ठक में बैठी, सखियों के बीच से उठ लज्जा और दर्प से आरक्त अवनतमुखी अपनी माता के पीछे २ शाला के भीतर आई तो सदस्यों की उत्सुक दृष्टियों के भार से जैसे वह दब गई। उसके सुनहरी तार के समान बालों में अंगूर के ताजे गुच्छों का और जवाकुसुमों का शृंगार था, उसने कण्ठ में मुक्तामाल और कान में हीरक कुण्डल पहिने थे। वह सुन्दर कौशेय और काशिक के उत्तरीय अन्तरवासक और कंचुकी से सुसज्जिता थी। उस समय गान्धार जनपद की कुलदेवी-सी प्रतीत होती थी। गान्धारराज ने अपने हाथों उसे सिंह को समर्पित किया; और

समस्त जनपद ने दूसरे दिन गण-नक्षत्र मनाया। जो हम जातीय त्योहार के दिन ही मनाते हैं। भन्ते, इस प्रकार गान्धार जनपद ने अष्टकुल के वज्जियों की वीरता का—जो अधिक से अधिक सम्मान किया जा सकता था—किया। परन्तु फिर भी गान्धार-गणपति ने घोषित किया था कि यथेष्ट नहीं है। और फिर गान्धार गणसंघ ने एक नागरिक मण्डल इस अकिंचन की अध्यक्षता में इस लिये भेजा कि हम लोग वैशाली गणतंत्र के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करें। भन्ते, अंत में मैं यह और कहना चाहता हूँ कि दो ही चार दिन में युद्ध में भाग लेने गान्धार से चिकित्सकों और तरुणों का एक सुदृढ़ दल वैशाली में आ रहा है।"

बड़ी देर तक हर्ष-ध्वनि होती रही। काप्यक गान्धार चुपचाप आसन पर बैठ गये।

अब गणपति उठे और सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उन्होंने कहा—

'भन्ते गण सुनें, आयुष्मान् नाग न जयराज और काप्यक के वक्तव्य आपने सुने। आयुष्मान् सिंह के शौर्य की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। परिस्थिति पर आपने विचार किया है। अब मैं आपके सामने चार प्रस्ताव रखता हूं। प्रथम, प्रान्त और कोष की रक्षा। दूसरे, अश्वारोही, पादातिक और नौसेना संगठन। तीसरे, राजस्व-कोष और युद्धोपादान उत्पादन, चौथा कूटनीति प्रचार और गुप्तचर।

"भन्ते गण, प्रथम बार मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रान्त और कोष की रक्षा के लिये आयुष्मान् सूर्यमल्ल का निर्वाचन हो। आयुष्मान् सूर्यमल्ल महाअट्टवी-रक्खक के पद पर सुचारु कार्य करते रहे हैं। वे समस्त सीमा-प्रान्तों, नगर-दुर्गों एवं घाटों तथा राजमार्गों से परिचित हैं। अब जो आयुष्मान् को इस पद पर चुनते हैं वे चुप रहें।"

परिषद् में सन्नाटा था। गणपति ने थोड़ा ठहर कर कहा— "दूसरी बार भी भन्तेगण सुनें—जिसे यह पद आयुष्मान् के लिये स्वीकृत हो वे चुप रहें।"

थोड़ी देर फिर सन्नाटा रहा। गणपति फिर बोले—"तीसरी बार भी भन्तेगण सुनें—जिसे प्रान्त और कोष्ट की रक्षा के लिये आयुष्मान् सूर्यमल्ल का निर्वाचन स्वीकृत हो वे चुप रहें न बोलें।"

क्षणभर ठहर कर गणपति ने घोषित किया कि "सूर्यमल्ल उस पद पर चुन लिये गए।"

अब गणपति ने कहा—"अब भन्तेगण, प्रथम बार सुनें। मैं आयुष्मान् सिंह को छत्तीस गणराज्यों की संयुक्त समस्त चतुरंगिणी, पादाति, अश्वारोही और नौसेना के लिए सेनापति का प्रस्ताव रखता हूं, जो सहमत हों वे चुप रहें।"

सभा में सन्नाटा था। क्षणभर ठहर कर गणपति ने फिर कहा—"भन्तेगण, दूसरी बार सुनें—मैं सिंह आयुष्मान् को सेनापति पद के लिये चुनने का प्रस्ताव रखता हूं जो सहमत हों चुप रहें।"

इस पर भी सन्नाटा रहा। गणपति ने कहा—"तीसरी बार भन्तेगण सुनें—समस्त सेनापति के पद पर आयुष्मान् सिंह के लिये मैं प्रस्ताव करता हूं।"

इसी समय सिंह धीरे से परिषद भवन के बीचोंबीच आ खड़े हुए। गणपति ने कहा—"आयुष्मान् कुछ कहा चाहता है, कह।"

सिंह ने कहा—"भन्तेगण सुनें गणपति और जनसंघ जो सम्मान मुझे दिया चाहता है उसके लिये मैं आभार मानता हूं। परन्तु मेरी अभिलाषा है कि इस पद के उपयुक्त पात्र वज्जीगण के महाबलाध्यक्ष सुमन हैं। अतः मैं प्रस्ताव करता हूं कि इस सेनापति पद पर वही रहें, और हम लोग उनकी अधीनता में युद्ध करें।"

एक दो सदस्यों ने कहा—"साधु, साधु!"

तब गणपति ने कहा—"परिषद में सेनापति पद के लिये थोड़ा मतभेद है। इसलिए छन्द लेने की आवश्यकता है। भन्तेगण, आप सावधान हों। शलाकाग्राहक छन्द शलाकाएँ लेकर आपके पास आ रहे हैं। उनके एक हाथ की

शलाकाएँ हैं, दूसरी में काली। लाल शलाका 'हां' के लिये है और काली 'नहीं' के लिये। अब जो आयुष्मान् मेरे मूल प्रस्ताव का अनुमोदन करते हैं—अर्थात् सिंह को प्रधान सेनापति-पद देना चाहते हैं वे लाल शलाका लें और जो आयुष्मान् सिंह द्वारा संशोधित प्रस्ताव सेनापति सुमन को चाहते हैं—वे काली शलाका लें।"

सिंह ने फिर खड़े होकर कुछ कहने की इच्छा प्रकट की। गणपति ने कहा—"आयुष्मान् फिर कुछ कहना चाहता है, कह।"

सिंह ने कहा—"भन्तेगण सुनें। मेरा प्रस्ताव गणपति के मूल प्रस्ताव का विरोधी नहीं है। सेनापति सुमन हमारे श्रद्धास्पद, वृद्ध अनुभवी सेनानायक हैं। उनका अनुभव बहुत भारी है। उन्होंने बड़े २ युद्ध जीते है। वैशालीगण के लिए इनकी सेवायें असाधारण हैं। इसलिये हम सब तरुणों को उनके वरद हस्त के नीचे युद्ध करना सब भांति शोभायोग्य है, उचित भी है। कम से कम मेरे लिये उनकी अधीनता में युद्ध करना सेनापति होने की अपेक्षा अधिक सौभाग्यमय है। इससे मैं अनुरोध करता हूं कि आप भन्तेगण काली शलाका ही ग्रहण करें।"

परिषद में फिर 'साधु-साधु' की ध्वनि गूंज उठी। शलाका-ग्राहक छन्द-शलाका लेकर एक २ सदस्य के पास गए। सबने एक २ शलाका ली। लौटने पर गणपति ने गिना। काली कम लौटी थीं। गणपति ने घोषित किया—"काली शलाकाएँ कम लौटी हैं। तो भन्तेगण, आयुष्मान् सिंह के प्रस्ताव से सहमत हैं। तब सेनानायक सुमन सम्पूर्ण सयुक्त सेना के सेनापति निर्वाचित हुए।

"अब भन्तेगण सुनें, प्रथम बार मैं राजस्व कोष और युद्धोत्पादन के लिए आयुष्मान् भद्रिय का प्रस्ताव करता हूं।"

फिर तीन बार गणपति ने परिषद की स्वीकृति लेने पर कूटनीति और गुप्त-विभाग का अधिपति संधि-वैग्राहिक जयराज को बनाया।

इसके बाद सिंह सेनापति, गान्धार काप्यक नौसेनापति, आगार-कोष्ठक स्वर्णसेन नियत हुए। यह सब कार्य-सम्पादन होने पर गणपति ने कहा—"भन्तेगण सुनें, हमने युद्ध-उद्वाहिका का संगठन कर लिया। अब हमें कुछ भीतरी बातों पर भी विचार करना है। सबसे प्रथम हमें धन और अन्न की आवश्यकता है। राजकोष में युद्ध-संचालन के योग्य यथेष्ट धन नहीं है। यदि राजकोष का स्थायी कोष सन्तोषजनक न हुआ तो इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

सूर्यमल्ल ने खड़े होकर कहा—"तब धन आवेगा कहां से? धन के बिना शस्त्र, नौका, अश्व और दूसरे उपादान कैसे जुटेंगे?"

"नहीं जुटेंगे, इसी से भन्तेगण, हमें सेट्ठियों से धन ऋण लेना होगा"—भद्रिय ने कहा।

"सेट्ठिजन ऋण क्यों देंगे?" स्वर्णसेन ने कहा।

"नहीं क्यों देंगे, क्या गण के साथ उनकी सुख-समृद्धि संयुक्त नहीं है? क्या वे गण की व्यवस्था ही से अपने वाणिज्य-व्यापार नहीं कर रहे हैं? क्या श्रेणिक बिम्बसार का उदाहरण हमारे सम्मुख नहीं है?"

महासेनापति सुमन ने कहा—"भन्तेगण सुनें, जो संकट आज हमारे सम्मुख है, ऐसा वैशाली पर कभी नहीं आया था। शत्रु को यही छिद्र मिल गया है कि हमारी सेना और कोष अव्यवस्थित और अपर्याप्त हैं तभी वह साहस कर रहा है; और यह झूठ भी नहीं है। हमें नियमित राजस्व नहीं मिल रहा है। दुर्ग-प्राकारों और नगर-प्राकारों का भी संस्कार कराना आवश्यक है। परिधि में जल नहीं है, और उसमें मिट्टी भर गई है। वे खेत हो रही हैं।"

भद्रिय ने खड़े होकर कहा—"भन्तेगण सुनें, सेट्ठि और सार्थवाह परिषद को कोटि सुवर्ण धन ऋण दें। और यह ऋण उन्हें बारह वर्ष

में चुकाया जायगा। मैं आशा करता हूँ कि वे गण को प्रसन्नता से धन देंगे।"

सिंह ने खड़े होकर कहा—"भन्तेगण सुनें, धन की व्यवस्था हो जाय तो और विषयों में युद्ध उद्वाहिका अपने मोहनगृह के गुप्त अधिवेशनों में निर्णय करे जिससे शत्रु को छिद्रान्वेषण का अवसर न मिले।"

इस पर कोलियगण राजप्रमुख विश्वभूति ने कहा—"कासी कोल के १८ गणराज्य इस युद्ध में अर्द्ध अक्षौहिणी सेना और तीन कोटि सुवर्ण भार देंगे। अपनी सैन्य की रसद-व्यवस्था वे स्वयं करेंगे।"

सन्निपात ने प्रसन्नता प्रकट की। मल्लों के प्रमुख रोहक ने कहा—"तो एक सहस्र हाथी, इतने ही रथ, बीस सहस्र अश्वभट और पचास सहस्र पादाति मल्लों के नौ गण राज्य देंगे। तथा अपना सब व्यय-भार उठावेंगे। मल्ल युद्ध-उद्वाहिका को अपने सम्पूर्ण तटों, दुर्गों और युद्धोपयोगी स्थलों को उपयोग करने का भी अधिकार देते हैं।"

महाबलाधिकृत ने अब युद्ध-उद्वाहिका का इस प्रकार संगठन किया—"महाबलाधिकृत सुमन सेनापति, सिंह उपसेनापति, नौ बलाध्यक्ष गान्धार काप्यक, राजस्वकोष और युद्धोत्पादन भद्रिय, रसदाध्यक्ष स्वर्णसेन, प्रान्तकोष्ठ-रक्षक सूर्यमल्ल। कासीकोल प्रतिनिधि विश्वभूति, और मल्लप्रतिनिधि रोहक।"

इसके बाद सन्निपात-भेरी का कार्य समाप्त हुआ।

: ११४ :

मोहनगृह की मन्त्रणा

संथागार के पिछले भाग से संलग्न निशान्त हर्म्य थे, जिनमें चारों ओर अनेक अट्टालिकायें ऐसी चतुराई से बनाई गई थीं जिनकी भीत और निकास के मार्गों का सरलता से पता ही नहीं लगता था। एक बार अपरिचित जन उन टेढ़े तिरछे मार्गों में फँसकर फिर निकल ही नहीं सकता था। इसी निशान्त के बीचों-बीच भूगर्भ में यह मोहनगृह था। इसके द्वार के समीप ही चैत्य देवता का थान था। इस चैत्य में आने जाने वालों का तांता लगा ही रहता था। इससे इस ओर आने जाने वालों की ओर किसी की दृष्टि नहीं जाती थी। चैत्य के देवता की विशाल मूर्ति पोली धातु-निर्मित थी। इसी मूर्ति के पृष्ठ भाग में सिंहासन के नीचे मोहनगृह का गुप्त द्वार था। जो यन्त्र के द्वारा खुलता था, तथा जिसे यत्नपूर्वक गुप्त रखा जाता था। इस गुप्त द्वार के अतिरिक्त मोहनगृह में आने जाने के लिये अनेक सुरंगें भी थीं, जिनका सम्बन्ध उच्च राजप्रतिनिधि जनों के आवास में था। उनके आवास में से इन सुरंगों का मार्ग या तो किसी खम्भे के भीतर था या भीत के भीतर होकर। ये द्वार इतने गुप्त थे कि निरन्तर सेवा करने वाले दास-दासी और भृत्य भी उनके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे। वज्जी-संघ का यह कठोर विधान था कि मंगल-पुष्करिणी में स्नात लिच्छवि राजपुरुष को छोड़ अन्य जो कोई भी किसी भांति इन द्वारों से परिचित हो, या इन द्वारों के भीतर चरण रखे तो तुरन्त उसी समय उसका वध कर दिया जाय, फिर वह अपराधी चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो। इन सब कारणों से इस मोहनगृह के सम्बन्ध में बहुत कम लोग जानते थे। जिन लो-

ने मोहनगृह का नाम भी सुन रखा था, के भी उसके सम्बन्ध में विविध किम्वदन्तियाँ कहते थे। वह किस उपयोग में आता है यह भी लोग नहीं जानते थे। वहाँ जाने की चेष्टा करने वालों, जिज्ञासा करने वालों को "जिन्होंने तुरन्त मृत्यु-दण्ड पाते देखा था" वे वहाँ की विविध काल्पनिक विभीषिकायें सुना २ कर लोगों को भयभीत करते रहते थे।

इसी मोहनगृह में आज वज्जीसंघ के विशिष्ट जनों की मन्त्रणा बैठी थी। मन्त्रणागृह में घृत के सात दीप दीपाधारों पर जल रहे थे। और सब मिलाकर कुल नौ पुरुष वहाँ गम्भीर भाव से मन्त्रणा में व्यस्त थे। इन नौ पुरुषों में एक गणपति सुनन्द, दूसरे महाबलाध्यक्ष सुमन, तीसरे सेनापति सिंह, चौथे विदेश-सचिव नागसेन, पाँचवें संधिविग्राहिक जयराज, छठे नौबलाध्यक्ष काश्यक, सातवें अर्थ सचिव भद्रिय, आठवें आगार-कोष्ठक स्वर्णसेन और नवें महाअट्टवी-रक्षक सूर्यमल्ल थे। विदेशसचिव नागसेन ने मन्त्रणा का प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—"भन्तेगण सुनें, यह मोहनमन्त्रणा अत्यन्त अनिवार्य होने पर मैंने आमन्त्रित की थी। मेरे पास इस बात के पुष्ट प्रमाण संगृहीत हैं कि अतिनिकट भविष्य में मगध-सम्राट् वैशाली पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं और उनके आमात्य ब्राह्मण वर्षकार मन्त्रयुद्ध का संचालन करने वैशाली में आये हैं। सम्राट् द्वारा उनका कलह और बहिष्कार केवल कपट-योजना है, उन्होंने मन्त्रयुद्ध का वैशाली में प्रारम्भ कर दिया है और वे उसमें सर्वतोभावेन सफल होते जा रहे हैं। उनके सैंकड़ों गुप्तचर विविध रूप धारण कर वैशाली में आ बसे हैं। अनेक नट, विट, वेश्याएँ, कुटनियें, विदूषक और सत्री और तीक्ष्ण सभ्य नागरिकों के वेश में शिल्पी, दूत, वणिक, सार्थवाह, सेट्ठि बनकर वैशाली में फैल गये हैं, विविध प्रकार के धूर्त चर चारों ओर भर गये हैं और यह ब्राह्मण कुण्डग्राम के ब्राह्मण-सन्नि-वेश में एक टूटे छप्पर के नीचे बैठ उनके द्वारा मन्त्रयुद्ध का संचालन कर रहा है।

गणपति सुनन्द ने कहा—"आयुष्मान् के पास इन सब बातों

के सम्बन्ध में क्या क्या प्रमाण हैं ?"

"क्या भन्तेगणपति, आपने अभी जो कुण्डग्राम के ब्राह्मण-सन्निवेश में घटना हुई उसे नहीं सुना ?"

"क्या आयुष्मान् उन चाण्डाल मुनि और यक्षकन्या की बात कह रहे हैं ?"

"वही बात है भन्ते, मैं कहता हूँ यह कोरा इस कुटिल ब्राह्मण का षड्यन्त्र है, इसमें वैशाली जनपद के सौ से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। और अब सम्पूर्ण वैशाली भयभीत हो उस काणे कपटमुनि के चरणों में गिर गिर कर अपने सुख-दुःख भावना आकांक्षा तथा गोपनीय बातें भी बता रहे हैं। क्या आप नहीं सोच सकते कि ये सब छिद्र और जन जन की जीवनगाथा उस कुटिल ब्राह्मण के कान में पहुँचकर वैशाली के विनाश का साधन बन रही है।"

"परन्तु आयुष्मान्, इसका क्या प्रमाण है कि वह भदन्त कोई प्राकृतिक वंचक है, त्यागी समर्थ ब्रह्मचारी नहीं ?"

"भन्ते, वह जो कुछ है उसे हमने जान लिया है।"

"तो कौन है वह ?"

"वह जयराज कहेंगे, इन्हीं ने वैशाली में अनुसन्धान-सूत्र-ग्रहण किया है।"

"तो आयुष्मान् जयराज कहें !"

"भन्ते, वह काणा राजगृह का प्रसिद्ध नापित धूर्त प्रभंजन है। वैशाली के बहुत जनों ने राजगृह में उससे बाल मुड़वाये हैं।" जयराज ने कहा।

"क्या कहा ? राजगृह का नापित ?"

"हाँ भन्ते, इसका नाम प्रभञ्जन है, और वह महाधूर्त है।"

"और वह यक्षिणी ?"

"वह राजगृह की प्रसिद्ध वेश्या मागधिका है।"

"किन्तु ब्राह्मण-उपनिवेश के ब्राह्मणों के उन्मत्त होकर मरने का कारण क्या है ?"

"पूर्व-नियोजित योजना, नन्दन साहु ने विष-मिश्रित खाद्य उन्हें दिया है। वह दुष्ट इसी कुटिल ब्राह्मण का चर है और उसकी सम्पूर्ण योजनाओं का माध्यम वाहक।"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

"यही नहीं भन्ते, आपने क्या विदिशा की वेश्या भद्रनन्दिनी का नाम नहीं सुना, जिसके हाथ में आज वैशाली के प्राण हैं।"

"वह कौन है ?"

"मागध विषकन्या कुण्डनी, उसमें ऐसी सामर्थ्य है भन्ते, कि जिस पुरुष को वह छू लेगी उसकी तुरन्त मृत्यु हो जायगी। चम्पा की विजय का श्रेय इसी विषकन्या को है, इसी ने चम्पा के महाराज दधिवाहन के प्राण लिये हैं भन्ते !"

"ओह, ऐसी भयंकर सूचना, क्या तुमने उसके सम्बन्ध में याथा-तथ्य जाना है भद्र !"

"भन्ते, मैं उससे मिल लिया हूं। अब तक जो लिच्छवि उसके द्वारा मरे नहीं यह उसकी कृपा है, नहीं तो कोई दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन वह सौ सुवर्ण देने वाले किसी लिच्छवि तरुण का अपने आवास में स्वागत न करती हो। यह भी सम्भव है कि वह किसी महती योजना की प्रतीक्षा में है।"

"यह तो अतिभयंकर बात है आयुष्मान् !"

नागसेन ने कहा—"अभी अर्थसचिव भद्रिय और महाअट्वी-रक्खक सूर्यमल्ल भी कुछ सूचनाएं देंगे।"

"आयुष्मान् भद्रिय कहें !"

"भन्ते, आपको ज्ञात है कि चम्पा का कोई धनकुबेर कृतपुण्य सेट्ठि

गृहपति अन्तरायण में बस गया है।"

"उसके ऐश्वर्य और सम्पदा तथा बाहन अर्थों के सम्बन्ध में मैंने सुना है, उसकी क्या बात है?"

"वह भी इसी कुटिल ब्राह्मण का चर है, वह देश-देशान्तरों में वैशाली निगम के नाम हुंडिया मोल ले लेकर संचित कर रहा है, उसका विचार किसी भी दिन ब्राह्मण का संकेत पाते ही वैशाली के सब सेट्ठियों के टाट उलटवाने का है।"

"यहां तक भद्र?"

"अब भन्ते, सूर्यमल्ल की सूचना भी सुनें।"

"आयुष्मान् बोलें!"

"भन्ते, मुझे यह सूचना देनी है कि जिस दस्यु बलभद्र के आतंक से आजकल वैशाली आतंकित है वह भी एक मागध सेनानी है और उसके अधीन दस सहस्र साहसी भट मधुवन में छिपे हैं। एवं पचास सहस्र सैन्य वज्जीगण के विविध प्रान्तों में गुप्त रूप से व्यवस्थित हैं। उसके सेनानायक, सामन्त और नायकगण वैशाली के उत्तर-क्षत्रिय-कुण्डपुर-सन्निवेश, वाणिज्य-ग्राम, चापाल-चैत्य, सप्ताम्रचैत्य, बहुपुत्र-चैत्य, कपिनह्य-चैत्य आदि स्थानों में छद्मवेश और छद्म नामों से बस रहे हैं।

"तो इसका अभिप्राय यह है कि अब वैशाली में कौन शत्रु है और कौन मित्र, इसका जानना ही कठिन है।" महाबलाधिकृत सुमन ने कहा।

भन्ते नागदन्त ने कहा—"अब वैशाली विजय करने को सम्राट् के यहां आने की और सैन्य अभियान की आवश्यकता ही नहीं है। जो कुछ हो गया है वैशाली को जय करने के लिये वही यथेष्ट है।"

अब सेनापति सिंह ने खड़े होकर कहा—

"भन्ते गणपति, यह आपने शत्रुओं की विकट योजना का एक अंश सुना, अब अपने बल को भी देखिए। वैशाली का सम्पूर्ण राष्ट्र आज

मदिरा और विलास में डूबा हुआ है। उसके प्राण अम्बपाली के आवास में पड़े रहते हैं। ये सेट्ठिजन, जो असख्य सम्पदा के साथ सम्पूर्ण व्यापार-विनिमय के भी एक धन-स्वामी हैं, आवश्यकता पड़ने पर हमें युद्ध में कोई सहायता नहीं देंगे। हमारे कोश की दशा शोचनीय है, अर्थ-सचिव इस पर प्रकाश डाल सकते हैं। सैन्य-संगठन का ढाँचा ढीला है। तरुण कामुक और विलासी हैं। उन्होंने तीखी दृष्टि स्वर्ण-सेन पर डाली, जो चुपचाप विमन भाव से सब बातें सुन रहे थे।

गणपति ने कहा—"भद्र, भद्रिय क्या कुछ कहेंगे ?"

भद्रिय ने कहा—"केवल यही कि यदि हमें तत्काल ही युद्ध करना पड़ा तो राजकोश को कोई सहायता नहीं मिलसकती। बलि-संग्रह नहीं हो रहा; और जब से दस्यु बलभद्र का आतंक बढ़ा है इसमें और भी वृद्धि हो गई है। सम्भव है आगार-कोष्ठक मित्र स्वर्णसेन, सेना को अन्न और सामग्री दे सकें।" उन्होंने भी मुस्कराकर स्वर्णसेन की ओर देखा।

स्वर्णसेन ने खड़े होकर कहा—"दस्यु बलभद्र का दमन यदि तत्काल नहीं हुआ तो फिर आगार की सारी व्यवस्था नष्ट हो जायगी।"

अब नौबलाध्यक्ष समदक ने खड़े होकर कहा—

"भन्ते गणपति, एक महत्वपूर्ण सूचना मुझे भी देनी है, मागधों ने गगा के उस पार पाटलिग्राम में सेना का एक अड्डा बनाया है। वे जब तब आकर ग्रामवासियों को घर से निकाल कर स्वयं वहां रहने लगते हैं और वे गगा और मिही के तीर पर दो दो लीग के अन्तर पर काष्ठ के कोट बनवाते जा रहे हैं। पाटली ग्राम का गंगातट नौकाओं से पटा पड़ा है। इस प्रकार वैशाली की ऐन नाक पर यह पाटलिग्राम मगधों का सैनिक स्कन्धावार बनता जा रहा है, और कभी वह वैशाली को नौबल की बहुत बड़ी बाधा प्रमाणित हो सकता है।"

- "तो आयुष्मान् नागसेन कहें कि सब बातों को विचार कर हमें क्या करणीय है ?"

स्वर्णसेन ने बीच ही में खड़े होकर कहा—

"मेरा मत है कि इस कुटिल ब्राह्मण को तुरन्त बन्दी बना लिया जाय, और उन सब गुप्तचरों को भी।"

"यह तो खुला रण-निमन्त्रण होगा, आयुष्मान्"–महाबलाधिकृत सुमन ने कहा। "और इसका परिणाम भीषण हो सकता है।"

नागसेन ने कहा—

"मेरा मत है कि हमें त्रिसूत्रीय योजना विस्तार करनी चाहिये। एक सूत्र यह कि—हमें निसृष्टार्थ दूत मगध को प्रेषित करना चाहिये। यह दूत कुलीन, बहुश्रुत, बहुबान्धव, बहुकृत, बहुविद, बुद्धि-मेधा-प्रतिभा-सम्पन्न, मधुरभाषी, सभाचतुर, प्रगल्भ, प्रतिकार और प्रतिवाद करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, कष्टसहिष्णु, निरभिमानी तथा स्थिर-स्वभाव वाला पुरुष हो। उसके साथ सब यान-वाहन पुरुष परिवाप हो, करणीय विषय का ऊहापोह करने योग्य हो।

"वह सम्राट् को मैत्री संदेश दे, उसकी गतिविधि देखे, शत्रु के आटविक, अन्तपाल, नगर तथा राष्ट्र के निवासी प्रमुख जनों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करे, मागध सैन्य का संगठन, व्यूह-परिपाटी-संख्या देखे, समझे। शत्रु के दुर्ग, उसका कोष, आय के साधन, प्रजा की जीविका और राष्ट्र की रक्षा एवं उसके छिद्रों को भी देखे।

"दूसरा सूत्र यह कि—हमें अपने इंगित, चेष्टा, आचार, विचार किसी से भी ऐसा प्रकट नहीं करना चाहिये जिसमें वैशाली में व्याप्त मागध दूतों को यह ज्ञात हो जाय कि हम सावधान हैं और हमारी योजना क्या है।

"तीसरा सूत्र यह कि—हमें कोष, अन्न और सैन्य का भली भांति संगठन और व्यवस्था करनी चाहिए।"

महाबलाधिकृत ने कहा—"मुझे योजना स्वीकृत है। आयुष्मान् नागसेन का कथन यथार्थ है, मैं प्रस्ताव करता हूं कि स्वयं नागसेन ही मगध जायँ।"

"नहीं भन्ते, यह ठीक नहीं होगा, मैं यहां नियुक्त हूं मेरी अनुपस्थिति तुरन्त प्रकट हो जायगी, मेरा प्रस्ताव है कि मित्र जयराज जायं।"

"मैं स्वीकार करता हूं; परन्तु योजना मेरी अपनी होगी। प्रकट में कोई अन्य व्यक्ति बहुत-सी उपानय सामग्री लेकर चले, और मैं गुप्त रूप में। दूत का जाना वर्षकार की सम्मति से उनके लिये सम्राट् से अनुनय करने के लिये हो। हम लोग सब भांति से दबे हुए हैं, भय-भीत हैं, असंगठित, हैं, असावधान हैं, यही भाव प्रकट हो। मेरी अनुपस्थिति भी प्रकट न हो। मेरे स्थान पर मेरा मित्र काप्यक मेरा अभिनय करें।"

"यह उत्तम है आयुष्मान्"—महाबलाधिकृत सुमन ने कहा। "सैन्य संगठन का कार्य मैं आयुष्मान् सिंह को सौंपता हूं।"

"मैं स्वीकार करता हूं। मेरी भी अपनी स्वतन्त्र योजना होगी। और वह अभी गुप्त रहेगी।"

"तो ऐसा ही हो आयुष्मान्, अब रह गया कोष, धान्य और साधन; इसके लिये आयुष्मान् भद्रिय उपयुक्त हैं। फिर हम सब सबकी सहायता करेंगे। आयुष्मान् जयराज एक मास में लौट आवें, तभी दूसरी बार मोहनगृह मन्त्रणा हो"—गणपति सुनन्द ने कहा। तथा मन्त्रणा समाप्त हुई।

———

: ११५ :

पारग्रामिक

काप्यक गान्धार ने बहुत-सी बहुमूल्य उपानय सामग्री ले, दास, सैनिक और पथप्रदर्शकों के साथ ठाठ और आडम्बर के साथ राजगृह को प्रस्थान किया। सम्राट् से महामात्य वर्षकार का विग्रह शमन कराने के लिये यह आयोजन किया गया है, यह सुनकर ब्राह्मण वर्षकार ने एक शब्द भी 'हाँ' या 'ना' नहीं कहा। हर्ष विषाद भी कुछ उसने नहीं प्रकट किया। परन्तु उसी दिन उसने मध्यरात्रि में कुछ आदेश लेख लिखे, और उन्हें ब्राह्मण सोमक को देकर कहा—यह लेख नन्दन साहु के पास अभी पहुँचने चाहियें। नन्दन साहु ने वह लेख पाकर उसी रात्रि को एक दण्ड रात्रि रहते अपने घर से प्रस्थान किया, और वैशाली उपनगर में आकर उपालि कुम्भकार के घर आया। उपालि कुम्भकार श्रावस्ती से आकर अभी कुछ दिन हुए यहाँ बसा था। आकर नन्दन साहु ने वे लेख उसे दिए और कुछ भाण्ड उपालि से क्रय कर उनका मूल्य चुका सूर्योदय से पूर्व ही घर लौट आया। परन्तु वैशाली के तीन द्वारों से तीन पुरुष सूर्योदय के साथ ही तीन दिशाओं को निकले। तीनों पादातिक थे--एक ने उत्तरपूर्व में कुण्डपुर जाकर एक हर्म्य में मगध सेनापति उदालि को एक लेख दिया। दूसरे ने पश्चिम में वाणिज्य-ग्राम जाकर मागध सन्धिवैग्राहिक भ्रुवपर्ष को एक लेख दिया। तीसरे ने कोल्लोग-सन्निवेश में स्थित मागध सेनानायक सुमित्र को तीसरा लेख दिया। वे अपना २ कार्य पूर्ण करके अपने २ स्थान पर फिर वैशाली में लौट आये। परन्तु इन तीनों ही व्यक्तियों के पीछे छाया की भांति तीन और व्यक्ति भी उपर्युक्त स्थानों पर उनके पीछे २ जा पहुंचे थे।

वे तीनों वैशाली नहीं गए। पूर्वोक्त व्यक्तियों के वैशाली लौट जाने पर वे लम्बा चक्कर काट कर टेढ़े तिरछे मार्गों में घूमते फिरते हुए द्युति-पलाश चैत्य में जा एकत्रित हुए। वहां एक ग्रामीण तरुण एक वृक्ष की छाया में बैठा सुस्ता रहा था। तीनों ने उसके निकट पहुंचकर अभि-वादन करके अपने २ संदेश दिये। ग्रामीण तरुण ने उनमें से प्रत्येक को कुछ मौखिक संदेश देकर भिन्न दिशाओं में चलता किया। फिर वह कुछ देर बैठा कुछ सोचता रहा। उसने वस्त्र से कुछ लेख-मान चित्र निकाल कर उन्हें ध्यान से भली भांति देखा, फिर उन्हें नष्ट कर दिया। इसके बाद वह मन ही मन बडबडा कर हँसा, और उसके मुंह से निकला—"बस यह खड्ग और मैं।" एक बार उसने अपने चारों ओर देखा और फिर उठकर राजगृह के मार्ग पर चल दिया। इस समय दोपहर दिन चढ़ गया था; और वह मार्ग विजन वन में होकर था। दूर २ तक बस्ती का नाम न था; कहीं सघन वन और कहीं एकाध ग्राम। परन्तु वह सूर्यास्त तक बिना कहीं रुके चलता ही चला गया। उसने यथेष्ट मार्ग पार किया। अन्ततः वह भिरिड-ग्राम की सीमा में आया। यह एक सम्पन्न ग्राम था जो वैशाली गणराज्य और मगध की सीमा पर था। यहां एक चैत्य में उसने विश्राम करने का विचार किया। वह बहुत थक गया था। साथ ही भूख प्यास से व्याकुल भी था। चैत्य के निकट ही एक गृहस्थ का घर था। वहाँ जाकर उसने कहा—"गृहपति, क्या मैं तेरे यहां आज ठहर सकता हूं? मैं पारग्रामिक हूं, मुझे भोजन भी चाहिए। मेरे पास पाथेय नहीं है। परन्तु तुझे मैं स्वर्ण दे सकता हूं।"

गृहपति ने कहा—"तो तेरा स्वागत है मित्र, वहां गवाट् में और भी दो पारग्रामिक टिके हैं, वहीं तू भी विश्राम कर, वहाँ स्थान यथेष्ट है। आहार्य मैं तुझे दूंगा। स्वर्ण की कोई बात ही नहीं है।"

"तेरी जय रहे गृहपति!"—ग्रामीण ने कहा। और धीरे २ गवाट्

में चला गया। गवाट् के प्रांगण के एक ओर छप्पर का एक ओसारा था। वहां दो पुरुष बैठे बातें कर रहे थे। उन्हीं के निकट जाकर उसने कहा—"स्वस्ति मित्रो, मैं भी पारग्रामिक हूं, आज रात भर मुझे भी आपकी भांति यहीं विश्राम करना है।"

"तो तेरा स्वागत है मित्र, बैठ।" दोनों में से एक ने कहा। परंतु उन्होंने परस्पर नेत्रों में ही एक गुप्त संदेश का आदान-प्रतिदान किया। आगत ने भी उसे देखा। परंतु निकट बैठते हुए कहा—"कहां से मित्रो ?"

"वाणिज्य-ग्राम से ?"

"किंतु कहां से ?"

"ओह, चम्पा से ?"

"परन्तु चम्पा से इस मार्ग पर क्यों ?"

"प्रयोजनवश मित्र !"

"ऐसा है तो ठीक है"—ग्रामीण ने हँस कर कहा।

उस हंसी से अप्रसन्न हो एक ने कहा—

"इसमें हँसने की क्या बात है मित्र !"

"बात कुछ नहीं मित्र, मुझे कुछ ऐसी ही टेव है। हां, क्या मित्रो, आपमें से कोई अच्छी कहानी कहना भी जानता है ?"

"कहानी ?"

"कहानी सुनने की भी टेव है"—वह फिर हँस दिया।

इस पर दोनों चिढ़ गए। उनके चिढ़ने पर भी वह ग्रामीण हँस दिया। एक ने तीखा होकर कहा—"यह बात २ पर हँसना क्या ? तू मित्र, ग्रामीण है।"

"ग्रामीण तो हूं और तुम ?"

"हम नागरिक हैं।"

इस बार ग्रामीण जोर से हस पड़ा। उस नागरिक ने उस पर क्रुद्ध होकर पास का दण्डहस्थक उठाया। उसके साथी ने उसे रोक कर—"यह क्या करता है, उसे हंसने दे, उससे हमारा क्या बनता बिगड़ता है।"

साथी की बात मान कर वह व्यक्ति नवागन्तुक को क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगा।

इसी समय गृहपति भोजन-सामग्री लेकर वहां आया। उसने कहा—"भन्ते गण, कुछ सैनिक ग्राम की उस ओर किन्हीं को खोजते फिर रहे हैं, कहीं वे आप ही को तो नहीं खोज रहे हैं।"

सुनकर तीनों व्यक्ति चौकन्ने हो शङ्कित दृष्टि से एक दूसरे को देखने लगे। इस पर पीछे आये पुरुष ने कहा—"मैं उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा हूं मित्र, हम लोग उन छद्मवेशी मागध गुप्तचरों को ढूंढ रहे हैं जिन्हें सूली पर चढ़ाने का आदेश वैशाली से प्रचारित हुआ है।" उसने तिरछी दृष्टि से दोनों पुरुषों को देखा जो शंकित से उसे देख रहे थे।

पारग्रामिक ने कहा—"मित्र, वे किधर गये हैं मुझे बता, मैं उन्हें अभी लाता हूं" इतना कह—वह द्रुतगति से गृहपति की बताई दिशा की ओर चल दिया। उसके बाद ही दोनो बटारू भी उद्विग्न-से हो----'हम भी देखें कौन हैं' कह कर उठ कर उसकी विपरीत दिशा को भाग खड़े हुए, गृहपति अवाक् खड़ा यह अद्भुत व्यापार देखता रहा।

———————

: ११६ :

छाया-पुरुष

इन्हीं दिनों वैशाली में एक और नई विभीषिका फैल गई। लोग भय-विस्फारित नेत्रों से एक दूसरे को देखते हुए परस्पर कहने लगे—'एक भयानक घोर अद्भुत काली छाया उन्होंने कभी २ नगर के बाहर प्रान्त भाग में संध्या के धूमिल अन्धकार में घूमती फिरती देखी है। ज्यों २ दिन बीतते गये, लोग इसका समर्थन करने लगे। बहुत जन भय से दबे हुए स्वर से कहने लगे। उस छाया में केवल गति है, किन्तु वह अशरीरी है। किसी ने कहा—वह छाया बोलती भी सुनी गई है। वह मनुष्याकार तो है, किन्तु मनुष्य कदापि नहीं है। इतना लम्बा मनुष्य होता ही नहीं। अशरीरी होने पर भी वह छाया वायु-वेग से अम्बर में उड़ती है, पृथ्वी को छूती नहीं, उसकी गति अबाध है; वन, पर्वत, नद, गह्वर कुछ भी उसकी गति में बाधक नहीं हो सकता। अनेकों ने देखा है कि स्वच्छ चांदनी रात में वह छाया सुदूर पर्वत-शृंगों के ऊपर होती हुई वायु में तैरती-सी वैशाली के निकट आती और कभी धीरे २ और कभी अति वेग से नगर के चारों ओर चक्कर काटती हुई लोप हो जाती है। बहुत लोग बहुत भांति की अटकल उसके सम्बन्ध में लगाने लगे। जिन्होंने देखा नहीं था वे अविश्वास करते और जिन्होंने देखा वे प्रतीत कराने लगे। फिर भी विश्वास हो चाहे न हो, यह सूचना कहनेवालों और सुननेवालों सभी के लिए भय का कारण बन गई थी। स्त्रियों में से भी कुछ ने देखा और वह भय से चीत्कार करके मूर्छित हो गईं। बच्चे उस छाया की बात सुनते ही सकते की हालत में हो गए। एक बात अवश्य थी, इस छाया ने किसी

था। नगर अन्तरायण में भी वह नहीं घुसी थी। उसका दर्शन अधिकतर मर्कट ह्रद-पलाशवन और वैघंटिक-यक्षनिकेतन के निकट ही बहुधा होता था। किसी २ ने उसे यक्षनिकेतन में प्रविष्ट होते भी देखा था। इससे लोग उसे यक्ष ही कहने लगे थे। युद्ध की विभीषिकाएँ दिन २ बढ़ती जाती थी, इससे वैशाली में घर बाहर सर्वत्र एक घबराहट-सी फैलती जाती थी; और यह लोकचर्चा होने लगी थी कि कोई न कोई अप्रिय अशुभ घटना होने वाली है।

एक बात इस सम्बन्ध में और विचारणीय थी, प्रतिदिन चम्पा के सेट्ठि कृतपुण्य का पुत्र भद्रगुप्त सान्ध्य भ्रमण के लिए जिस ओर वडवाश्व पर घूमने जाया करता था, उसी ओर वह छाया बहुधा देखी जाती थी। सबसे प्रथम सेट्ठिपुत्र के साथियो ही ने उसे देखा भी था। सेट्ठिपुत्र उसे देख अति भयभीत हो गया था। एक बार तो वह छाया सेट्ठिपुत्र के निकट आकर उसे छू भी गई थी। उस स्पर्श ही से सेट्ठिपुत्र भय से मूर्छित हो गया था, कृतपुण्य ने बहुत उपचार कराया तब वह स्वस्थ हुआ था, परन्तु तब से सेट्ठिपुत्र ने बाहर भ्रमणार्थ जाना ही बन्द कर दिया था। इससे वह छाया-पुरुष जैसे अति उद्विग्न हो वेग से बहुधा वैशाली के चारों ओर घूमा करती थी। हाल ही में चाण्डाल मुनि और यक्षकन्या के प्रादुर्भाव और कृत्य-प्रभाव से भयभीत वैशाली की जनता इस छाया-पुरुष से अत्यधिक भयभीत शंकित और उद्विग्न हो गई थी।

———

: ११७ :

विलय

कृत्यपुण्य सेट्टि ने पुत्र के विवाह का आयोजन किया। आयोजन असाधारण था। वैशाली ही के सेट्टि जेट्ठक धनञ्जय की सुकुमारी कुमारी से कृत्यपुण्य सेट्टि के पुत्र का विवाह नियत हुआ था। कृतपुण्य सेट्ठि के धन-वैभव का अन्त नहीं था। उधर सेट्टि जेट्ठक धनञ्जय भी उस समय जम्बूद्वीप भर में विख्यात धन-कुबेर था। उसकी किशोरी कन्या मृणाल केले के नवीन पत्ते की भांति उज्ज्वल कोमल और सुशोभनीय किशोरी थी। सेट्टि जेट्ठक के भण्डार में सहस्र कोटि भार स्वर्ण था, ऐसा सारा ही वैशाली का जनपद कहता था। इस विवाह की वैशाली में बड़ी धूम थी, बड़ी चर्चा थी। दूर २ के कलानिपुण पुरुष, नृत्य संगीत में विलक्षण वेश्याएँ और विविध भांति के आमोद-प्रमोद और शोभा के आयोजन एकत्र किए गए थे। इस विवाह की धूमधाम, मनोरंजन और व्यस्तता के कारण एक बार वैशाली की जनता का ध्यान उस छाया-पुरुष से सर्वथा ही हट गया था।

विवाह सम्पन्न हो गया। कृत्यपुण्य पुत्रवधू को लेकर मंगल उपचार करता और वधू पर रत्न लुटाता हुआ घर आ गया। पुत्र और पुत्रवधू की मधु-रात्रि मनाने के लिए उसने सर्वथा नवीन एक कौमुदी-प्रासाद निर्माण कराया था। उस प्रासाद में उसने समस्त जम्बूद्वीप में प्राप्य सुख-सामग्री संचित की थी। उसी कौमुदी-प्रासाद में वधू के गृह-प्रवेश का उत्सव मनाया जा रहा था। नगर के गण्य मान्य सेट्टि सामन्तपुत्र और राजपुरुष आ आकर हँस २ कर सेट्ठिपुत्र को बधाई देते, भेंट देते और गंध-पान से सत्कृत होते अपने २ घर जा रहे थे। पौर जानपद जनों का षडरस व्यंजन परोसकर भोज हो रहा

ब्राह्मणों को कौशेय शाल, दुधार गाय, स्वर्णालंकृता दासियां और स्वर्ण बांटा जा रहा था। कृत्यपुण्य सेट्ठि के वैभव और चमत्कार एवं दानशीलता को देख २ कर लोग शत सहस्र मुखों से प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। अन्तःपुर में सेट्ठिनी नागरिक महिलाओं से घिरी पुत्र-वधू का परछन कर रही थी। स्त्रियां वधू पर से रत्नाभरण न्यौछावर कर रही थीं। मंगलगान की मधुर ध्वनि ने अन्तःपुर की रत्नखचित भीतों को आन्दोलित करती-सी प्रतीत हो रही थी। सेट्ठिपुत्र समवयस्कों के बीच विविध हास्यों और व्यंगो का घात-प्रतिघात मुस्करा कर सह रहा था। गुणीजन बन्दी और वारवधुएं अपनी २ कलाओं का विस्तार कर रही थीं।

एक दण्ड रात्रि व्यतीत हो गई। आगत समागत जन अपने २ घर बिदा होने लगे। जाने वाले वाहनों का तांता बँध गया। धीरे २ भीड़ कम होते २ कौमुदी-प्रासाद में केवल परिजन-परिचारक और घनिष्ठ मित्र ही रह गये। मधुरात्रि के उपचार होने लगे। कौमुदी-प्रासाद का शयन-गृह और मधु-शैया पर श्वेत पुष्पों का मनोरम श्रृङ्गार किया गया था। मित्रों से विदा होकर सेट्ठिपुत्र सुभाषित ताम्बूल चबाता हुआ शयन-कक्ष में प्रविष्ट हुआ। अनङ्गदेव का प्रथम सुखद प्रहार उसके प्राणों को विह्वल कर रहा था। उसका स्वस्थ सुन्दर स्वर्ण सुवर्ण अङ्ग पर धवल कौशेय और धवल ही पुष्पमाल सुशोभित थी। उसके नेत्र औत्सुक्य, आनन्द और काममद से विह्वल हो रहे थे। नववधू को समवयस्का सखियों ने लाकर शयन-कक्ष में एक प्रकार से धकेल दिया, वे कपाट-सन्धि से झांक २ कर एक दूसरी को नोचने लगीं। पुष्पभार से नमित धनंजय सेट्ठि जेट्ठक की सुकुमार कुमारी द्वितीया के चन्द्र की शोभा धारण करती हुई-सी शयन-कक्ष में व्रीडा से जड़-सी खड़ी की खड़ी रह गई। आंख उघार कर प्रियदर्शन पति को देखने का उसका साहस ही न हुआ।

इसी समय कौमुदी-प्रासाद में एक भीति का आभास हुआ। गान-वाद्य एकबारगी ही रुक गये, लोगों का जनरव भी स्तब्ध हो गया। जो जहां था जड हो गया। किसी के मुंह से हल्की चीत्कार-सी निकली। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कौमुदी-प्रासाद में कोई जीवित सत्व उपस्थित ही नहीं है, सबने भय और आतंक से देखा, छायापुरुष ने कौमुदी-प्रासाद मे प्रवेश किया है। छाया को देखकर बहुत लोग मूर्च्छित होकर गिर पड़े, बहुत पत्थर की मूर्ति की भांति जड हो गये। लोगो की जीभ तालु से सट गई। छाया-मूर्ति धीरे धीरे स्थिर चरणों से पृथ्वी से कुछ ऊपर ही वायु में तैरते हुये से एक के बाद दूसरा कक्ष अलिन्द पार करते हुये सेट्ठिपुत्र के शयन-कक्ष के द्वार पर आ पहुँची। उसे देखते ही सखी दासी पौर कन्या जो जहां थी भयभीत एवं मूर्च्छित भूमि पर गिर गईं।

नव दम्पति ने भी, प्रासाद में कोई अशुभ बात हुई है, इसका आभास अनुभव किया। सेट्ठिपुत्र ने आगे बढ़कर द्वार खोला, द्वार खोलते ही छायापुरुष शयन-कक्ष में आ प्रविष्ट हुआ। उसे देखते ही सेट्ठिपुत्र भय से आंखें फाड़े निर्जीव की भांति पीछे हट कर भीत में चिपक गया। वधू चीत्कार करके मूर्छित हो गिर पडी। छायापुरुष ने उसी भांति पृथ्वी से अधर स्थिर गति से जाकर सेट्ठि-पुत्र को छुआ। उसके छूते ही सेट्ठिपुत्र मूर्छित होकर नीचे गिर गया। छायापुरुष ने उसे अनायास ही दोनों हाथों में उठाकर पुष्प-शैया पर लिटा दिया। इसके बाद उसने द्रुत गति से शयन-कक्ष में चारों ओर चक्कर लगाना प्रारम्भ किया। चक्कर लगाते २ वह शैया की परिक्रमा-सी करने लगा। प्रत्येक बार उसकी परिक्रमा परिधि छोटी होने लगी। अन्ततः वह शैयातल्प को चारों ओर से छूता हुआ नथने फुला २ कर कुछ सूँघता हुआ-सा घूमता रहा। इस समय उसके नेत्रों से विद्युत्-प्रवाह के समान एक सतेज धारा

में प्रविष्ट होने लगी; बीच २ में वह रुक २ कर, सेट्ठिपुत्र के बिल्कुल ऊपर झुककर देखता और फिर द्रुत वेग से शैया के ऊपर नीचे चारों ओर घूम जाता। प्रासाद में ऐसा सन्नाटा था जैसे यहां एक भी जीवित पुरुष न हो। अब उसने मुँह से एक प्रकार की हुंकृति-ध्वनि प्रारम्भ की। फिर वह कंदुक की भांति एक बार ऊपर को उछला। उसने धुएँ के बादल के समान सिकुड़कर मूर्छित सेट्ठिपुत्र के ऊपर अधर में लटक कर अपना मुँह उसके मुँह के एकदम निकट लाकर मुँह से मुँह मिला कर उसके मुँह में फूँक मारना प्रारम्भ किया। फूँक मारने से सेट्ठिपुत्र का मुँह खुल गया. वह अधिकाधिक खुलता चला गया, तब अद्भुत चमत्कारिक रूप से वह छायापुरुष एक द्रव-मत्स्य की भांति समूचा ही सेट्ठिपुत्र के मुँह में धँस गया। सेट्ठिपुत्र अति गहन नींद में सो गया। धीरे २ उसके सफेद मृतक के समान मुँह पर लाली दौड़ने लगी। लकड़ी के समान अकड़े हुए अङ्ग हिलने डुलने और सिकुड़ने लगे। उसके मुँह की विकृति भी दूर हो गई। उसने सुख से कर्वट ली और सो गया। मूर्छिता वधू भूमि में पड़ी रही। छायापुरुष का कोई चिन्ह कक्ष में न रह गया। इस अद्भुत अतर्क्य घटना का कोई साक्षी भी न था।

———

: ११८ :

असमंजस

बहुत भोर में वधू की निद्रा तन्द्रा या मूर्छा भङ्ग हुई। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। उसने अकचका कर रात की अकल्पनीय घटना पर विचार किया, फिर उसने भयभीत दृष्टि कक्ष में घुमाई: कोई अप्रिय असाधारण बात नहीं थी। रात में देखे हुए छायापुरुष का वहां कोई चिन्ह भी न था। उसकी दृष्टि सब ओर से हटकर मृदुल पुष्प-शैया पर सोते हुए सेट्ठिपुत्र पर गई, उसे गाढ़ निद्रा में सोता देख वह कुछ आश्वस्त हुई। उसने अपने वस्त्र ठीक किये, कक्ष को एक गवाक्ष से झांक कर बाहर देखा, उषा का उदय हो रहा था। वह डरती २ सेट्ठिपुत्र की शैया के निकट आई। जब उसे भली भांति विदित हो गया कि वह प्रगाढ़ निद्रा में सो रहा है, तो वह आंख भर कर पति को देखती रही। उसके सौन्दर्य पर वह मोहित हो गई, उसकी मुख-मुद्रा से भय की रेखाएं दूर हो गईं। वह वहां से हटकर गवाक्ष के निकट बड़े-से मुकुर के सामने आ खड़ी हुई। पुष्पिता लता के समान अपनी ही शोभा पर मन ही मन वह गर्वित हुई। उसने एक बार शैया पर सोते हुए पति के सुकुमार शोभाखान के अंग पर दृष्टि डाली, एक मधुर उज्ज्वल हास्य-रेखा उसके होठों में फैल गई। इसी हास्य-रेखा से उसकी उस भयानक मधुरात्रि का सब लेखा जोखा समाप्त हो गया। वह शान्त, स्निग्ध और शुभ दृष्टि से कक्ष की बहु-मूल्य सजावट को देखने लगी। इसी समय दासी ने द्वार पर आघात किया, वधू ने धीरे से आकर द्वार खोल दिया। वधू को मुस्कराता तथा सेट्ठिपुत्र को सोता देख दासी ने मृदु हास्य हंसकर वधू से बाहर आने का संकेत किया। बाहर आने पर स्त्रियों के झुरमुट ने उसे घेर लिया। सबने

पर औत्सुक्य घबराहट और चिन्ता की रेखाएं थीं, सभी ने एक दूसरे से आंखों ही आंखों में कुछ पूछा, सभी ने वधू की भाव-भङ्गिमा से समझा रात की विभीषिका से वधू सर्वथा अज्ञात प्रतीत होती है। इसी समय सेट्ठि कृतपुण्य 'हा पुत्र,हा पुत्र' करता हुआ वहां आया और पुत्र के शयन-कक्ष में घुस गया। वहां पुत्र को सुख से सोते हुए और वधू को स्वाभाविक देख वह हर्षोन्माद से नाच उठा। प्रथम संकेत से और फिर खुलकर अब रात की बातें होने लगीं। जिस जिसकी मूर्छा भंग होती गई, उठकर वहीं एकत्र होने लगा। प्रश्न यह था कि वह छायामूर्ति थी क्या? वह वहां वास्तव में आई भी थी या भ्रम था स्वप्न था। यदि वह आई थी तो गई कहां? सारा ही घर प्रथम फुसफुसाहट और फिर कोलाहल से भर गया। उस कोलाहल को सुनकर सेट्ठिपुत्र की नींद भी खुल गई। वह मद्यपों के से भारी २ डग भरता हुआ, अपरिचितों की भांति आंखें फाड़ कर इधर उधर देखता, वहां आया कृतपुण्य पुत्र को देखकर दोनों हाथ फैलाकर उसकी ओर दौड़ा और उसका आलिंगन करके कहा—"पुत्र, क्या तूने भी रात को कोई विभीषिका देखी?"

सेट्ठिपुत्र ने विचित्र दृष्टि से सेट्ठि की ओर देखा, तनिक मुस्कराया। ब्राह्मण पुरोहित ने कहा—"गृहपति, वह छायापुरुष वास्तव में एक दुःस्वप्न था, मैं अभी पुरश्चरण करता हूं, तथा अथर्व पाठ करके उसकी शान्ति करता हूं, तुम पुत्र और वधू को अधिक असुविधा में मत डालो।"

सेट्ठि ने बहुत ऊंच-नीच दिन देखे थे, उसने भी जब देखा कि घर में सब कुछ ठीक-ठाक है, कुछ कहना-सुनना ठीक नहीं समझा, वह पुत्र और वधू के अंग-संस्कार स्नान आदि की सुविधा देने के विचार से अपने कक्ष में चला गया।

पीठमर्दकों, अवमर्दकों और सेवकों द्वारा सेवित स्नान वसन भूषण सज्जित सेट्ठिपुत्र जब प्रासाद के बाहर अपने कक्ष में आया, तब सब वयस्कों ने उसका सस्मित प्रीति-सम्मोदन किया। कुछ ने संकेत

से रात्रि का हाल-चाल पूछा। उनमें से जो रात की विभीषिका से गत थे, उन्होंने संकेत से सेट्ठिपुत्र से रात की बात पूछने से निषेध कि सेट्ठिपुत्र ने केवल मन्द मुस्कान ही से मित्रों के प्रश्नों का उत्तर द परन्तु उसकी दृष्टि में कुछ विचित्रता सभी ने लक्ष्य की।

एक ने कहा—"मित्र, क्या इतना आसव ढाल लिया?"

दूसरे ने कहा—"नहीं नहीं रे, जागरण का प्रभाव है, कह मित्र से रात बीती?"

अब सेट्ठिपुत्र ने मुंह खोला, उसने कहा—"वडवाश्व"

यह शब्द सुनकर सब समुपस्थित चौंक उठे। बिल्कुल अपरिचित स्वर था, उसका घोष भी अमानुष था, जैसे सुदूर पर्वत-शृङ्गों को चीर कर कोई ध्वनि आई हो। मित्रगण सेट्ठिपुत्र के मुंह की ओर देखने लगे।

उसने एक बार फिर उसी भाँति "वडवाश्व" कहा—और उठ खड़ा हुआ, उसकी रुखाई और चेष्टा ऐसी थी जैसे वह किसी को नहीं पहचानता हो, अथवा वह उन सबकी उपस्थिति ही से अज्ञात हो। सभी एक दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे—पर सेट्ठिपुत्र उठकर कक्ष से बाहर चल दिया। दो एक पार्श्वद पीछे दौड़े। उसके चले जाने का ढब भी निराला था। पार्श्वदों ने समझा कि सेट्ठिपुत्र ने बहुत मद्य ढाल ली है इसी से पैर डगमगा रहे हैं, वह कहीं गिर न जाय, इसी से एक ने उसे थाम लिया। उसे संकेत से निवारण करके उसने उसी स्वर में फिर कहा—"वड़वाश्व"।

इधर जब से छायापुरुष की विभीषिका फैली थी तथा भ्रमण-काल में एक बार छायापुरुष ने उसे छू लिया था तब से सेट्ठिकुमार का वडवाश्व पर वायु-सेवनार्थ भ्रमण रोक लिया गया था। आज अकस्मात् ही अतर्क्य रीति से वड़वाश्व की इच्छा इस आग्रह से व्यक्त करने

पर सेवक विमूढ हो गया, एक बात और थी, सेट्ठिपुत्र में पूर्ण मार्दव, विनयशील संकोच न था, एक अभूतपूर्व दवङ्गता और दुर्धर्ष वेग उसकी वासना-शक्ति का उसके नेत्रों से प्रवाहित हो रहा था। सेवक उस आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सका, वह अश्व लाने को दौड़ गया। दूसरा सेवक भयभीत होकर गृहपति को सूचित करने दौड गया, गृहपति सेट्ठि दौड़ा आया, उसने पुत्र को भ्रमण के लिये जाने का निषेध किया, पर सेट्ठिपुत्र ने मुस्करा कर गृहपति की ओर देखा—उस विलक्षण दृष्टि से सेट्ठि घबरा गया, वह सोचने लगा—क्या मेरा पुत्र उन्मत्त हो गया है? यह कैसी छवि है, इतने ही में सेट्ठिपुत्र पिता की उपस्थिति की अवहेलना करके अश्व की ओर चल दिया। सेवक अश्व ले आया था, एक अभूतपूर्व लाघव से सेट्ठिपुत्र अश्व पर चढ गया और द्रुतगति से उसने अश्व छोड़ दिया।

ऐसा पहिले कभी भी नहीं हुआ था। पुत्र का यह परिवर्तन कैसा है? क्या उसने रात अधिक मद्य पी है? या कोई और बात है। छाया-पुरुष की विभीषिका मन में होते हुए भी किसी ने भी यह नहीं सोचा कि इस घटना से छाया भी किसी भाँति सम्बन्धित है।

परन्तु सहसखियों से सेट्ठिपुत्रवधू ने उस भयानक छाया का शयन-कक्ष में आना वर्णित किया। सहसखियां समक्ष हुईं, उन्होंने कहा—तब यह स्वप्न नहीं सत्य है, वह छायामूर्ति हमारे सामने ही शयनकक्ष में गई थी परन्तु फिर उसका क्या हुआ? वह कहां गई इसका कोई उत्तर न दे सका। वधू ने लजाते हुए कहा—कि वह उसे देखते ही मूर्छित हो गई थी और रात भर वह मूर्छिता ही भूमि पर पड़ी रही। तब सब स्त्रियां तथा सेट्ठिनी भी भय-चिन्ता से व्याकुल हो गईं। प्रासाद में सभी कोई मूर्छित हो गये थे और सभी रात्रि भर माया मूर्छित रहे, यह तो अद्भुत बात है। इसी समय सेट्ठि कृतपुण्य ने भीतर आकर पत्नी से एकान्त में कहा - कह नहीं सकता क्या बात है, पर पुत्र में

बड़ा अन्तर पाता हूँ। क्या उसने रात बहुत मद्य पी थी?
शयन-कक्ष का जो विवरण वधू से सुना वह सेट्ठि को सुना दि-
कर सेट्ठि बहुत भयभीत हुआ, उसने कहा—आर्य वर्षकार को
देनी होगी, मैं अभी नन्दन साहु को बुलाता हूँ।

: ११६ :

देवजुष्ट

वह सेट्ठिपुत्र भद्रगुप्त वाडवाश्व पर चढ़कर अतर्क्य वेग से निकल गया, अश्व-संचालन में ऐसा नैपुण्य कभी उसका देखा नहीं गया था। पार्श्वचर अनुचर अपने अपने अश्वों को ले उसके पीछे दौड़े परंतु सेट्ठिपुत्र को न पा सके। सेट्ठिपुत्र का वह वाडव अश्व आज शतगुण वेग से वन, पर्वत, कन्दरा पार करता वायु में तैर रहा था। अनुचर चिन्तित थकित वन उपत्यका में खड़े निरुपाय सुदूर पर्वतों के मध्य में वायु में तैरते सेट्ठिपुत्र को देखते रहे। किसी की कुछ भी समझ में नहीं आरहा था, बहुत देर बाद अश्व लौटा। निकट आने पर सेट्ठिपुत्र ने अश्व की गति सरल की। उसने मुस्करा कर अनुचरों की ओर देखा, सब आश्वस्त हो उसे घेर कर चल दिये। अश्वारोहण का यह अभूतपूर्व कौशल उन्होंने सेट्ठि को जाकर बताया। सेट्ठि अधिक चिन्तित हो गया। पुत्र का असाधारण परिवर्तन वह स्पष्ट देख रहा था। एक-दो बार उसने पुत्र से बात करने की भी चेष्टा की, पर वह पिता को देख मुस्करा दिया। उसकी अनोखी दृष्टि से ही घबरा कर वह भाग गया। सेट्ठिनी ने यह कह कर समाधान किया—विवाह का, कामज्वर का यह आवेश है, सब ठीक हो जायगा। उसने पुत्र के विश्राम-शयन-आहार की ओर भी यत्न से व्यवस्था करने के आदेश दिये। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसने मित्र-मण्डली से मिलना भी बन्द कर दिया। अनेक मित्र रुष्ट हो गये। अनेकों ने हंस-कर कहा—'यह सुहागरात का उन्माद है।' माता-पिता और निकटवर्ती पार्श्वदों दासियों से भी वह कम बोलता, केवल मुस्कराता। उसकी दृष्टि तो सहन ही नहीं होती थी। एकाध वाक्य जो वह बोलता, स्वर अपरिचित

उच्चारण विचित्र। उसने शयन-कक्ष में ही डेरा जमाया, उसमें को छोड़ और किसी का आना-जाना निषिद्ध कर दिया। बहुत कर पूछने पर वधू ने बताया—केवल सोते हैं, आसवपान करते कम बोलते हैं, बहुत कम खाते हैं।

नन्दन साहु के द्वारा यह सब समाचार यथासमय ब्राह्मण के पास भी पहुँच गया। सब घटना सुनकर वर्षकार भी विचार में गये। छायापुरुष का वैशाली के प्रान्त भाग में चक्कर लगाना सुना था। बहुत विचार करने पर उन्होंने सोमिल को एकान्त में कहा—"भद्र सोमिल, क्या वह छाया अब भी वैशाली में कहीं दीख पड़ती है ?"

"नहीं आर्य, सुना तो नहीं।"

"तो तुम इसका ठीक २ पता लगाओ और नन्दन साहु कहो कि वह सेट्ठि कृतपुण्य से कहे कि पुत्र पर कड़ी दृष्टि रखें।

सेट्ठिपुत्र भद्रगुप्त का यह परिवर्तन एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में होता हुआ वैशाली भर में फैल गया, विशेषकर उसका अद्भुत अश्वारोहण वैशाली की चर्चा का विषय बन गया। उसका समय एकांत, अत्यल्प भाषण, मर्मभेदिनी दृष्टि सब कुछ कृत विकृत होकर घर २ की चर्चा का विषय हो गई। बहुत निषेध करने पर भी सेट्ठिपुत्र ने सान्ध्य-भ्रमण-सम्बन्धी पिता की बात नहीं मानी। पुत्र के दुर्विनय पर खिन्न हो सेट्ठि नाना प्रकार की चिन्ताओं में विलीन हो गया।

: १२० :

कीमियागर गौड़पाद

विश्वविश्रुत कीमियागर गौड़पाद अपनी प्रयोगशाला में बैठे देश-विदेश से आए बटुकों को रसायन के गूढ़ रहस्य बता रहे थे। विविध भ्राष्ट्रियों और क्यूप्यकों पर अनेक रसायन सिद्ध किये जा रहे थे। बटुकों में चीन, तातार, गान्धार, तिब्बत, कपिशा, शकद्वीप, पारसीक, यवन, ताम्रपर्णी, सिंहल आदि सभी देशों के बटुक थे।

कपिशा के बटुक धन्वन ने कहा—"भगवन्, इस विस्तृत संसार के सब सजीव और निर्जीव पदार्थ किस प्रकार बने हैं?"

आचार्य ने कहा—"सौम्य धन्वन्, वे सब मूलतत्त्वों के परस्पर संयोग से बने हैं। इनके तीन वर्ग हैं। कुछ पदार्थ तत्त्व रूप ही में विद्यमान हैं, इनमें एक ही जाति के परमाणु मिलते हैं, इन्हें मूलतत्त्व कहते हैं। कुछ दो या अधिक तत्त्वों के रासायनिक संयोग से बने है, ये यौगिक कहाते हैं। कुछ अधिक तत्त्वों और यौगिकों के भौतिक मिश्रणों से बने हैं, ये भौतिक मिश्रण कहाते हैं।"

"और भगवन्, अणु परमाणु क्या है?" लम्बी चोटी वाले पीतमुख चीनी बटुक ने कहा।

"पदार्थ के कल्पनागम्य सूक्ष्मतम उस विभाग को जिसमें उस पदार्थ के सब गुणधर्म उपस्थित हो किन्तु उसके फिर विभाजन से मूल पदार्थ के वे गुण-धर्म नष्ट होकर उसके अवयवों के परमाणु में मिल जायँ वह 'अणु' कहाता है। 'परमाणु' का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे सदा संयुक्त अवस्था में 'अणु' के रूप ही में रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व 'अणु' की अवस्था ही में रहता है, परमाणु की अवस्था में नहीं। ये अणु,

परमाणु भारयुक्त हैं और भिन्न २ परमाणुओं और तत्त्वों में क्षमता' है जो परिस्थिति के अनुरूप बदलती रहती है। एक तत्त्व तत्त्व से उसकी 'परमाणु-बन्धन-क्षमता' की समानता होने पर ही संयोग बना सकता है।"

"तो भगवन् ! इस प्रकार भूमण्डल के समस्त जो परमाणुओं के संयोग से बने हैं, क्या हमें सुलभ हैं ? वे ० लिये सतत व्यवहार्य हैं ?"–एक सिंहल छात्र ने बद्धाञ्जलि होकर ०४

"नहीं भद्र, इनमें से कुछ हमें सुलभ है और कुछ विरल।"

"तो भगवन् क्या परमाणु नित्य अविभाज्य हैं ?"—एक यवन ०, ने पूछा।

"नहिं नहिं भद्र, कुछ परमाणु स्वयं ही टूट कर दूसरी जाति के परमाणु बन जाते हैं, तथा उन्हें रासायनिक रीति से तोड़ा जा सकता है; नाग के परमाणु तोड़ कर हम उसे पारदीय रूप दे सकते हैं और पारद से सुवर्ण बना सकते हैं। आवश्यकता यही है कि लघु परमाणु-भार को अपेक्षित गुरु परमाणु-भार स्थापित किया जाय !"

"किन्तु भगवन्, परमाणु कैसे खण्डित किया जा सकता है ? कैसे लघु-भार परमाणु को गुरु-भार परमाणु के रूप में व्यवस्थित किया जा सकता है ?"—गान्धार छात्र कपिश ने पूछा।

"रश्मिक्षेपण द्वारा। पदार्थों और अणु परमाणुओं के संगठन विघटन का प्रकृत साधन परमाणु में विद्युत्-सत्त्व है तथा उस संगठन को स्थायित्व प्राप्त होता है। रश्मिपुञ्ज से जब परमाणु का विस्फोट किया जायेगा तो विद्युत्-सत्त्व और रश्मिपुञ्ज-क्षेपण करना होगा। उसके बाद जब फिर से परमाणु-संगठन करना होगा तो विद्युत्-आवेश और रश्मिपुञ्ज का विकास करना होगा।"

"यह किस प्रकार भगवन्।"

"इस प्रकार कि प्रत्येक तत्त्व का प्रत्येक परमाणु एक छोटी-सी सूर्य-

माला है। तुम जानते हो भद्र, कि पृथ्वी आदि सम्पूर्ण ग्रह अपने विशिष्ट वृत्तों में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य रूप भी स्थिर नहीं है। इसी प्रकार समस्त विद्युत्-सत्त्व रश्मिपुञ्ज की परिक्रमा करते रहते हैं। इससे रश्मिपुञ्ज और विद्युत्-सत्त्व परमाणुओं का अत्यल्प स्थान व्याप्त कर पाते हैं। उस व्याप्त स्थान की अपेक्षा परमाणु का बहुत-सा अन्तराकाश ठोस से ठोस परमाणु में शून्य रहता है। इसी से तो हम कहते हैं—अणोरणीयान् महतो महीयान्।"

"भगवन्, हम क्या शून्य को ही आकाश समझें? शून्य तो 'नहीं' है पर तत्त्व 'नहीं' नहीं है, आकाश यदि तत्त्व है तो वह 'नहीं' नहीं, 'है' है। फिर भगवन् वही आकाश परमाणु में भी व्याप्त व्याख्यात, हुआ है। सो यदि वह 'शून्य है तो वह आकाश तत्त्व नहीं है।"—एक मागध छात्र ने शंका की।

"नहीं भद्र, 'आकाश' शून्य का नाम नहीं है। आकाश तत्त्व एक अति सूक्ष्म तरल पदार्थ है। वह तरल पदार्थ भूमण्डल के बाहर भी व्याप्त है, भीतर भी है। ग्रहों, नक्षत्रों और उसके मध्यवर्ती आकाश से लेकर ठोस से ठोस पदार्थों के अणुओं में, यहां तक कि परमाणु में भी वह व्याप्त है। यह सब सचराचर विश्व उसी द्रव-सत्त्व के अथाह समुद्र में रह रहा है। उसी से विद्युत्-सत्त्व में शक्ति, प्रकाश में आलोक-प्रवाह, और भूतत्त्व में स्थिर आकर्षण स्थापित है।"

"तो भगवन्, जड़ पदार्थ और शक्ति में सामञ्जस्य किस प्रकार है?" —तिब्बत के एक छात्र ने पूछा।

"पदार्थों के पुत्र, दो ही तो स्वरूप हैं। या तो जड़ स्वरूप या शक्ति-स्वरूप। जड़ पदार्थ वे हैं जिनमें भार और विस्तार ये दो गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। शक्ति में कार्यक्षमता है पर वह जड़ पदार्थ के आश्रय से रहती है। प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएं हो सकती हैं। घन, द्रव और वाष्प। ये तीनों अवस्था ताप-शक्ति के कारण हैं। घन का

प्रधान गुण काठिन्य है, द्रव का समतल होना और वाष्प का स्थान उसे मिले सपमें व्याप्त हो जाना। ये जड पदार्थ अग्नि उनके केवल रूपों का परिवर्तन होता है।"

"शक्ति स्वरूप पदार्थ क्या हैं भगवन्?" ताम्रपर्णी के एक छात्र ने-

"बल,ताप, प्रकाश और विद्युत्-सत्त्व ये चार प्रमुख शक्ति पदार्थ पदार्थ के अणुओं की गतिज शक्ति को ताप कहते हैं। प्रकाश सीधी रे में गमन करता है, उस रेखा को रश्मि कहते हैं। विद्युत्-सत्त्व और नियामक पदार्थ हैं।

"तो भगवन्! जब हम विद्युत्सत्त्व और रश्मिपुञ्ज क्षेपण से नाग 'परमाणु' तोड़ कर पारद और पारद से सुवर्ण बना सकते हैं तो फिर ही से सुवर्ण क्यों न बना लिया जाय? पारद तो सुलभ है।"

"है, किन्तु सौम्य, जब नाग परमाणु विघटन होगा तो हमें पारद परमाणु उसमें विघटित प्राप्त होगा, पारद में वह सगठित है। अतः उस विघटन करने में हमें बडी बाधा यह है कि वह विघटन होते २ और ताम्र में लय होते२ रश्मिपुञ्ज क्षेपण प्रक्रिया के कारण उड़ जाता था, उस अग्नि स्थिर करने में अधिक परिश्रम करना पडता है इसी से नाग परमाणु विघटन करके और उस विघटित पारद पर परमाणु के रूप देकर ताम्रविलय करना अधिक उपादेय है। फिर वह नाग पारद-विघटित परमाणु विद्युत्-सत्त्व एवं रश्मिपुञ्ज प्रतिवाहित हो शक्ति-बल और अवस्थान के अनुक्रम से शत-सहस्र-लक्ष-कोटिवेधी हो जाता है।"

"किन्तु यदि पारद ही को अग्नि-स्थिर किया जाय?"

"तो पहिले उसे क्षार, अम्ल, लवण, मूत्र, पित्त, वसा, विषवर्ग में स्नान करना होगा, उसे केंचुली रहित और बुभुक्षित करना होगा। बुभि-क्षित होने पर उसे शस्त्र में दग्ध करा कर उसका बीजकरण करना होगा। तब वह भी शत सहस्र लक्ष कोटिवेधी होगा। उसके लिए उसे खोट-बद्ध करना होगा। फिर वह ताम्र-तार वेग को वेध करेगा।"

"लोह वेधकर रसायन की इति है भगवन् ?"

"ना पुत्र, वह तो परीक्षण-मात्र है। रस सिद्ध होने पर जब देखो कि उसने लोहवेध कर लिया तब उसे भक्षण करो, देहवेध सिद्ध हो गया।"

"देहसिद्ध पुरुष के क्या लक्षण हैं भगवन् ?"

"पुत्र, देहसिद्ध पुरुष अत्यक्त शरीर होते हैं, यह शरीर ही भोगों का आश्रय-स्थल है, परन्तु वह स्थिर नहीं है। यह देहलोह सिद्ध रसायन ही उसे स्थैर्य देता है, काष्ठौषध नाग में, नाग वंग में, वंग ताम्र में, ताम्र तार में, तार स्वर्ण में और स्वर्ण पारद में लय होता है, सो यह सिद्ध धातुवेधी-शरीरवेधी पारद शरीर को अजर अमर करता है, स्थिर-देह पुरुष अभ्यासवश अष्टसिद्धियों का अनुष्ठाता, परम ज्योतिस्वरूप, अमल, गलितानल्प-विकल्प, सर्वार्थविवर्जित होता है। उसकी भृकुटी के मध्य में प्रकाशतत्व और विद्युत्तत्व अधिष्ठित हो जाता है। उसी में दृष्टि को केन्द्रित करके वह सचराचर सब जगत् को प्रत्यक्ष देख जाता है। वह सब क्लेशों से रहित, शान्त और स्वयं वेद्य और अमितायु हो जाता है।"

"किन्तु भगवन्, क्या वृद्धावस्था और मृत्यु जीवन का अवश्यभावी परिणाम नहीं ? क्या वह नियत समय पर शरीर को आक्रान्त नहीं करतीं ? क्या वह किसी प्रकार टाली जा सकती हैं ?" तिब्बत के पीतकेशी एक वटुक ने प्रश्न किया।

आचार्य ने कहा—"सौम्य, वृद्धावस्था और मृत्यु एक रोग हैं, शरीर के अवश्यंभावी परिणाम नहीं। वे युक्ति और रसायन द्वारा टाले जा सकते हैं। शरीर जिन अवयवों से बना है, उनमें अनेक धातु और खनिज पदार्थ हैं जिनका शरीर के पोषण में निरन्तर व्यय होता रहता है। सौम्य, युक्ति से इन पदार्थों के मूल अवयव शरीर में जीर्ण करने से यही शरीर चिरकाल तक अमितायु हो जाता है।"

: १२१ :

अप्रत्याशित

महारासायनिक कीमियागर गौड़पाद जिस समय देश-विदे बटुकों को रसायन के गुह्य गहन तत्त्व समझा रहे थे और अजर होने के मूल सिद्धान्तो की गूढ व्याख्या कर रहे थे; तभी उन्हें एक अप्रत्याशित कण्ठस्वर सुनाई दिया।

शताब्दियों पूर्व श्रुत, विश्रुत अप्रत्याशित कण्ठस्वर सुनकर गौडपाद चमत्कृत हुए, उन्होंने आंख उठाकर देखा- सेट्टिपुत्र भद्रवसन धारण किए सम्मुख खड़ा मुस्करा रहा है, आचार्य के दृ निक्षेप करते ही सेट्टिपुत्र की आंखों से एक विद्युत्प्रभा निकल आचार्य को आन्दोलित कर गई। उन्हें फिर वही अप्रत्याशित, शता ब्दियों पूर्व श्रुत कण्ठस्वर सुनाई दिया—

"सोऽह सोऽहं गौड़पाद !"

"एक चुम्बकीय आकर्षण के वशीभूत होकर गौड़पाद भ्रान्त हो दौड़ कर सेट्टिपुत्र के चरणों मे लकड़ी के कुन्दी की भांति गिर गए।

युवक सेट्टिपुत्र ने लाल लाल उपानत से अपना कमनीय चरण निकाल अगुष्ठ के नख से आचार्य का भूपतित मस्तिष्क छूकर कहा—

"उत्तिष्ठ"

गौड़पाद उठकर बद्धांजलि हो स्तवन करने लगे। बटुक आश्चर्य से मूढ बने खड़े रहे और यह अघटित घटना देखने लगे।

सेट्ठिपुत्र ने हाथ उठाकर बटुकों को वहां से चले जाने का संकेत किया भय, विस्मय और आश्चर्य से हतबुद्धि बटुक वहां से भाग गए। एकान्त होने पर सेट्ठिपुत्र ने एक आसन पर बैठकर गौडपाद को भी सामने बैठने का आदेश दिया। दोनों में अपरिष्कृत संस्कृत में बातें होने लगीं। यहां हम अपनी भाषा में लिखेंगे। गौडपाद ने कहा—

"देवाधिदेव यहां ?"

"तूने क्या देखा नहीं था ?"

"देखा था देव !"

"तो आया क्यों नहीं ?"

"सन्देह में रहा देव !"

"सोचता था—अब मैं नहीं रहा।"

"नहीं देव, यही विचारता रहा—देव यहां क्यों ?"

"क्या वैशाली मेरे लिए अगम्य है रे ?"

"देव के लिए ब्रह्माण्ड गम्य है, परन्तु वैशाली का भाग्योदय क्यों ?"

"यह भण्ड कृतपुण्य कालिकाद्वीप से मेरा बहुत-सा रत्न-भण्डार और मेरे वाडव अश्व हरण कर लाया है।"

"इसी लिये देव-दैत्य-पूजित श्री मन्थान भैरव का इस लोक के मर्त्य शरीर में आगमन हुआ !

"नहीं रे गौडपाद, मैं कौतूहलाक्रांत भी हूं।"

"कैसा देव ?"

"अम्बपाली का रे, अभिरमणीय है न ?"

"है तो, किन्तु 'काकिणी' नहीं है।"

"देख लिया तूने ?"

"ठीक देखा है देव !"

"तो दर्शनीय ही सही"

"दर्शनीय तो है।"

"देखूंगा, फिर।"

"एक और स्त्री है देव।"

"काकिणी है?"

"है, किंतु अभिरमणीय नहीं है।"

"क्यों रे?"

"विषकन्या है।"

"अच्छा, अच्छा, उसका मदभंजन करूंगा, कौन है वह!"

"मागधी है, छद्म-वेष में यहां भद्रनन्दनी वेश्या बनी बैठी है।"

"अभिरमण करूंगा।"

"मर जायगी देव!"

"अरे, युद्ध कब होगा?"

"नातिविलम्ब।"

"उत्तम है, रक्तपान करूंगा, कुरु-संग्राम के बाद रक्तपान किया ही नहीं है। कितनी सेना का विनाश होगा?"

"सम्भवतः तीन अक्षौहिणी देव!"

"बहुत है, आकण्ठ तृप्ति होगी।" सेट्ठिपुत्र मृदुल भाव से मोहक मुस्कान कर आसन से उठ खड़ा हुआ। गौडपाद ने पृथ्वी में गिरकर प्रणति-पात किया। सेट्ठिपुत्र ने हंस कर कहा—"रहस्य ही रखना गौडपाद?"

"जैसी देव की आज्ञा!"

वह देवजुष्ट सेट्ठिपुत्र चल दिया। गौडपाद बद्धांजलि खड़ा रहा।

: १२२ :

अनाहूत

अम्बपाली का जन्म-नक्षत्र था। वैशाली में उसका उत्सव मनाया जा रहा था। सम्पूर्ण नगर तोरण-ध्वजा और विविध पताकाओं से सजाया गया था। संथागार की छुट्टियां कर दी गई थीं। गत ८ वर्षों से लिच्छविगण तन्त्र का यह एकजातीय त्यौहार-सा हो गया था।

अम्बपाली के आवास सप्तभूमि प्रासाद ने भी आज शृंगार किया था; परन्तु यह कोई नहीं जानता था कि यह उसका अन्तिम शृंगार है। सहस्रों दीपों की झिलमिल ज्योति नीलपद्म सरोवर में प्रतिबिम्बित होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों स्वच्छ नील गगन अगणित तारागण सहित सदेह ही भूमि पर उतर आया है। उस दिन देवी की आज्ञा से आवास के सम्पूर्ण द्वार खोल दिये गए थे और जन-साधारण को बे-रोक-टोक वहां आने की स्वच्छन्दता थी। आवास में आज वे लोग भी आनन्द से आ जा रहे थे जो कभी वहां आने का साहस नहीं कर सकते थे।

सातवें अलिन्द में देवी अम्बपाली अपनी दासियों, सखियों और नर्तकियों सहित नगर के श्रीमन्त सेट्ठिपुत्रों और सामन्तपुत्रों का हँस हँस कर स्वागत एवं मनोरंजन कर रही थीं। बहुमूल्य उपहारों का आज ढेर लगा था और भी तांता लग रहा था। सुदूर चम्पा, ताम्रपर्णी, सिंहल, श्रावस्ती, कौशाम्बी और विविध देशों से अलभ्य भेंट ले लेकर प्रतिनिधि आए थे। उनमें गज, अश्व, मणि, मुक्ता, रजतपात्र, शस्त्र-अस्त्र कौशेय सभी कुछ थे। उनको एक कक्ष में सुसज्जित किया गया था और प्रदर्शन किया जा रहा था। उन्हें देख देखकर लोग कौतूहल और आश्चर्य प्रकट कर रहे थे। बहुत सेट्ठिपुत्र और सामन्तगण अपनी

अपनी भेंटों को उनके समक्ष नगण्य देखकर लज्जा की 'तु
थे। जिन्हें देवी अम्बपाली अपने स्वच्छ हास्य एवं गर्मागर्म
संतुष्ट कर रही थी।

सुगन्धित मद्य ढाली जा रही थी। और विविध प्रकार के
तले हुए मांस भक्ष्य भोज्य स्वच्छन्दता से खाये पीये जा
दीपाधारों पर सहस्र सहस्र दीप सुगन्धित तेलों के कारण सुरभि
कर रहे थे। सैंकड़ों धूप-स्तम्भों पर सुगन्ध द्रव्य जलाए जा
सुन्दरी युवती दासियां पैरों में पैंजनियां पहने, कमर में ि
करधनी लटकाए, मृणाल भुजदण्डों में बड़े २ रत्नों के वलय
कानों में हीरे के मकर-कुण्डल झुमाती, इठलाती, मुस्काती, बल
फुर्ती और चुस्ती से मद्य ढालती चन्दन का लेप करती, नागर
पुष्पहार पहनाती, द्यूत के आसन बिछाती, उपाधान लगाती और
भोज्य पदार्थ इधर से उधर पहुंचाती फिर रही थीं। स्वयं देवी
एक भव्य शुभ्र कौशेय धारण कर चारों ओर अपने हंस की-सी चाल
चलती हुई मन्द मुस्कान और मृदु कोमल विनोद वाक्यों से तं.
का मन मोहती फिर रही थी।

मध्य रात्रि व्यतीत होने लगी। पान आहार समाप्त होने पर आया।
अनावश्यक भीड़ छँट गई। केवल बड़े २ सामन्तपुत्र और सेट्ठिपुत्र अब
निराला पा सुख से उपधानों पर उठँग गये। उनकी अलस देह, अध-
मुंदी आंखें और गद्गद् वाणी प्रगट कर रही थी कि वे आज इस
लोक में नहीं, प्रत्युत मायापूरित किसी अलौकिक स्वर्गलोक में पहुंच
चुके हैं।

मद्य की झोंक में युवराज स्वर्णसेन ने कहा—"देवी, इस परमानन्द
के अवसर पर एक ही अभिलाषा रह गई।"

"तो समर्थ युवराज, अब उसे किस अवसर के लिये अवशिष्ट रखते
हैं, पूरी क्यों नहीं कर लेते।"

"खेद है पूरी नहीं कर सकता। उन्होंने हाथ का मद्यपात्र खाली करके मदलेखा की ओर बढा दिया। मदलेखा ने उसमें और मद्य डाल दी।

अम्बपाली ने मन्द मुस्कान करके कहा—"क्यों नहीं युवराज।"

युवराज ने ठण्डी सांस लेकर कहा—"ओह, बड़ी अभिलाषा थी।"

"हाय, हाय, ऐसी अभिलाषा की वस्तु यों ही जा रही है। परन्तु युवराज प्रिय, क्या उसकी पूर्ति एक बार परिपूर्ण छलकते मद्यपात्र को पीने से नहीं हो सकती?"

"नहीं, नहीं, सौ पात्रों से भी नहीं, सहस्र पात्रों से भी नहीं।" यह कहकर उन्होंने वह प्याला भी रिक्त करके मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने देवी का इंगित पा उसे फिर आकंठ भर दिया। देवी ने कृत्रिम गाम्भीर्य धारण करके कहा—"प्रिय सूर्यमल्ल, प्रियव्रत, अरे प्राणसखाओ यहां आओ, भाई, युवराज की एक अभिलाषा आज अपूर्ण हीं रही जाती है, वह सौ मदपात्र पीने से भी नहीं, सहस्र पात्र पीने से भी नहीं पूरी हो रही।"

दो चार मित्र अपने २ मदपात्र लिए हँसते हुए वहां आ जुटे। स्वर्णसेन खाली मदपात्र हाथ में लिये ठण्डी सांस ले रहे थे।

सोमदत्त ने कहा—"क्या मेरा यह पात्र पीने से भी नहीं मित्र?"

"नहीं रे नहीं, ओफ, अन्तस्तल जला जा रहा है।"

"अरी ढाल री द्राक्षा-रस ढाल, युवराज का अन्तस्तल जला जा रहा है।" देवी अम्बपाली ने हँसकर मदलेखा से कहा।

सभी मित्र हँसने लगे। प्रियवर्मन ने कहा—"युवराज की उस अपूर्ण अभिलाषा के समर्थन में एक २ परिपूर्ण पात्र और पिया जाय।"

सब ने पात्र भरे, स्वर्णसेन ने भी रिक्त पात्र मदलेखा की ओर बढ़ा दिया। मदलेखा ने द्राक्षारस ढाल दिया।

सोमदत्त ने कहा—"मित्र युवराज, आपकी वह अभिलाषा क्या है?"

"यही, कि इस समय दस्यु बलभद्र यहां यदि आमन्त्रि होता तो इस मद्य में अपने खड्ग को डुबोकर इसे उसके पार कर देता।"

"तो देवी अम्बपाली, आपने यह अच्छा नहीं किया, ५ को निमन्त्रित करना ही भूल गईं।"

"भूल नहीं गई प्रिय, मैं तो केवल नागरिकों को ही नि सकती हूँ, दस्यु बलभद्र तो अनागरिक है" अम्बपाली ने हँ.

सूर्यमल्ल ने हँसकर कहा—"अरे मित्र, यह कौन बड़ी आज सूर्योदय से पूर्व ही तुम अपनी अभिलाषा पूर्ति कर लेना।'

देवी अम्बपाली ने कहा—"मित्रो, क्या तुम में से किसी को देखा भी है?"

"नहीं, नहीं देखा है"

"तो यदि वह छद्म-वेश धारण करके यहां आया हो, आकर गोष्ठी का आनन्द लूट ले गया हो तो?"

"नो, तो यह तो बड़ी दूषित बात होगी"—सूर्यमल्ल ने कहा।

"दूषित किस लिये प्रिय?"

"हम भद्र नागरिकों के साथ एक दस्यु पान करे?"

"परन्तु मैं सोचती हूं भद्र, कि किसी भांति हम जान जायँ। वन्य पशु-पक्षी हम लोगों के विषय में क्या सोचते होंगे—तो . . है हम जानकर आश्चर्य करें कि वे हम भद्र नागरिकों में बहुत से दोषों का उद्घाटन कर लेंगे।"

"किन्तु देवी यदि उस दस्यु को एक बार देख पावें?"

"तो मैं उसे स्वयं एक पात्र भरकर दूँ और अपने को प्रतिष्ठित करूँ"

"प्रतिष्ठित?"—सूर्यमल्ल ने चिढ़ कर कहा।

"क्यों नहीं, मित्र, अन्ततः वह एक साहसिक और वीर पुरुष तो है ही।"

"यह तो तभी कहा जा सकता है जब एक बार हमारे खड्ग का पानी पी जाय।"

"तो जब उसने बज्जीभूमि में चरण रखा है तो यह एक दिन होगा ही और यदि सूर्यमल्ल की भविष्यवाणी सत्य हो तो आज ही।"

"आपके इस प्रश्न का उत्तर जाननेवाले को गणपति ने दस सहस्र स्वर्णभार देने की घोषणा की है।"

"तो यह भी हो सकता है भद्र, कि यह दस सहस्र स्वर्णभार उस सूचना देने वाले पुरुष के सिर का ही मोल हो।"

इसी समय कक्ष की एक ओर से किसी ने शान्त स्निग्ध किन्तु, स्थिर वाणी में कहा—

"देवी अम्बपाली अपने हाथों से एक पात्र मद्य देकर यदि अपने को सुप्रतिष्ठित करना चाहें तो यह उनके लिये सर्वोत्तम अवसर है!"

सबने आश्चर्य-चकित होकर उधर देखा। एक स्तम्भ की ओट से दीर्घ-काय, बलिष्ठ पुरुष नग्न खड्ग हाथ में लिए धीर गति से आगे बढ़ रहा था। उसका सर्वाङ्ग काले वस्त्र से आवेष्टित था और मुख पर भी काला आवरण पड़ा हुआ था।"

यह अतर्कित असम्भाव्य घटना देख क्षण भर के लिए सब कोई विमूढ़ हो गए। अम्बपाली उस कण्ठ-स्वर में कुछ २ परिचित ध्वनि पाकर सन्देह और उद्वेग से उस आगन्तुक को देखने लगी। इसी समय सूर्यमल्ल ने खड्ग लेकर आगे बढ़कर कहा—"यदि तुम वही दस्यु हो जिसकी हम अभी चर्चा कर रहे थे तो तुम्हें इसी क्षण मरना होगा।"

"जल्दी और व्यवस्था-क्रम-भंग मत करो मित्र, सूर्यमल्ल, मैं वही हूं जिसकी तुम लोग चर्चा कर रहे थे। परन्तु मैं तुमसे अभी बात करूंगा, पहले देवी अम्बपाली एक चषक मद्य अपने हाथों मुझे प्रदान कर मुझे सुप्रतिष्ठित होने का सम्मान प्रदान करेंगी।"

सूर्यमल्ल ने बिना कुछ बोले खड्ग उठाया। अम्बपाली ने अब

आगन्तुक के कण्ठ-स्वर को भली भांति पहचान लिया। उ॰ बढ़कर सूर्यमल्ल का हाथ पकड़ कर कहा—

"ठहरो, भद्र, पहिले मद्य दूंगी।" उन्होंने अपने हाथों भर कर आगे बढ़ कर दस्यु को दिया।

मद्य पीकर उसने पात्र आधार पर रख दिया और कहा—"… ष्ठित हुआ देवी।"

"मैं सुप्रतिष्ठित हुई भन्ते!"

सूर्यमल्ल ने आगे बढ़ कर कहा—"बहुत हुआ देवी अम्ब॰, अब आप तनिक हट जाइये।"

"परन्तु मेरे आवास में आज रक्त-पात नहीं होगा' उन्होंने आ॰ बढ़ कर कहा।

दस्यु ने कहा- "देवी अम्बपाली! आज सबकी इच्छा पूरी होने दो मित्र सूर्यमल्ल, तुम्हारी पारी क्षण भर बाद आवेगी। अभी कुमार स्वर्णसेन, अपनी वह चिरभिलषित इच्छा पूरी करें, जो शत सहस्र मद्यपात्रों से भी पूर्ण होने वाली नहीं थी।" फिर थोड़ा आगे बढ़ कर कहा—"मित्र स्वर्णसेन, यह सेवक दस्यु बलभद्र उपस्थित है। खड़े हो जाओ, हाथ का मद्यपात्र रख दो, वह सम्मुख खड्ग है उठा लो और झटपट चेष्टा करके देखो कि अभिलाषा-पूर्ति कर सकते हो या नहीं; क्योंकि जब मैं अपनी अभिलाषा पूर्ति करने में जुट जाऊँगा तो फिर युवराज के मन की मन में रह जायगी। अवसर नहीं मिलेगा।"

कक्ष में उपस्थित स्त्री पुरुष स्तब्ध आतंकित खड़े थे। केवल अम्ब-पाली का रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने दस्यु को और दस्यु ने उनको चुराई आंखों में देखकर मन ही मन हंस दिया।

दो पग आगे बढ़ कर खड्ग को हवा में ऊँचा उठाते हुये दस्यु ने कहा—"उठो युवराज, मुझे अभी बहुत काम है, आज देवी अम्बपाली

का जन्म-नक्षत्र है। आज प्रत्येक नागरिक की मनोभिलाषा पूरी होनी चाहिए।

युवराज अभी नशे में झूम रहे हैं। अब उन्होंने हाथ का मद्यपात्र फेंक कर लपक कर एक भारी बर्छा भीत से उठा लिया। अन्य लिच्छवि-तरुणों ने भी खड्ग खींच लिये।

दस्यु ने उनकी ओर देख कर कहा—"मित्रो, पहिले युवराज"

युवराज ने इसी समय प्रबल वेग से बर्छा फेंका। दस्यु ने उछल कर एक खम्भे की आड़ ले ली। बर्छा खम्भे में टकरा कर टूट गया। दस्यु ने आगे बढ़ कर युवराज स्वर्णसेन के कण्ठ में हाथ डाल कर उन्हें आगे खींच लिया और कण्ठ पर खड्ग रखकर कहा—"अब इस खड्ग से क्या मैं तुम्हारा सिर काट लूं युवराज ?"

"नहीं, नहीं, इस समय यहां ऐसा नहीं होना चाहिए।" अम्बपाली ने कातर कण्ठ से कहा।

दस्यु ने हंस कर कहा—"यही मेरी भी इच्छा है। परन्तु इसके लिए घुटने टेक कर युवराज को प्राण-भिक्षा मांगनी होगी।"

स्वर्णसेन ने सूखे होठ चाट कर कहा—"मेरा खड्ग कहां है ?"

"यह है मित्र, दस्यु ने खड्ग उठाकर युवराज पर फेंक दिया। युवराज ने भीम वेग से आगे बढ़ कर दस्यु पर खड्ग का प्रहार किया, परन्तु नशे के कारण वार पृथ्वी पर पड़ा। दस्यु धीरे से एक ओर हट गए। युवराज झोंक न सम्हाल सकने के कारण औंधे मुँह पृथ्वी पर गिर गये।

दस्यु ने एक लात मार कर कहा—"अब घुटनों के बल बैठ कर प्राणदान मांगो युवराज"—और उसने अनायास ही युवराज को अपने चरणों पर लुटा दिया।

अम्बपाली ने हर्षातिरेक से विह्वल होकर कहा—'ओह !'

परन्तु दूसरे ही क्षण क्रुद्ध सामन्त-पुत्र चारों ओर से कर दौड़े।

"जो जहां है वहीं खड़ा रहे"—दस्यु ने कड़कते स्वर में कहा—तुम मद्यप स्त्रैणों की हत्या करने नहीं आया हूं।"

लोगों ने भयभीत होकर देखा अनगिनत काली २ मूर्तियां भांति कक्ष में न जाने कहां से भर गईं। सबके हाथ में विकरा खड्ग थे।

दस्यु ने कहा—"एक एक आओ, और स्वर्ण रत्न आभरण अपने अंगों पर से उतार कर यहां मेरे चरणों में रखते जाओ।"

सब ने देखा, प्रत्येक की पृष्ठ पर एक २ जन नग्न खड्ग लिये है। सब जड़वत् खड़े रहे।

"पहिले तुम स्वर्णसेन"—दस्यु ने युवराज की गर्दन पर खड्ग नोक रखकर कहा।

स्वर्णसेन ने अपने रत्नाभरण उतार कर चुपचाप दस्यु पैरों में रख दिये।

इसके अनन्तर एक एक करके सबने उनका अनुसरण किया।

दस्यु ने मुस्कराकर कहा—"हां, अब ठीक हुआ। अम्बपाली ने मदलेखा को संकेत किया, वह कक्ष में गई और एक रत्न-मंजूषा लेकर लौट आई, उसे अम्बपाली ने अपने हाथों में ले चुपचाप दस्यु के चरणों में रख दिया।

इसी समय महाप्रतिहार ने भय से कांपते २ आकर कहा—'देवी, सम्पूर्ण आवास को सहस्रों दस्युओं ने घेर लिया है।"

अम्बपाली ने स्निग्ध स्वर में कहा—

"आगार-जेट्ठक को कह भद्र, कि सब द्वार खोल दे, सब पहरे हटा ले, समस्त भण्डार उन्मुक्त कर दे, और दस्युओं से कह—कि वे सम्पूर्ण आवास को लूट ले जायं।"

प्रतीहार भयभीत होकर कभी देवी और कभी दस्युपति के चरणों में पड़े रत्न-राशि की ओर और कभी प्रस्तर-प्रतिमा की भांति अवाक् निस्पन्द खड़े सेट्ठि-सामन्त-पुत्रों को देखने लगा। फिर चला गया।

अम्बपाली ने कक्ष में खडे दस्युओं को सम्बोधित करके कहा—"मित्रो, उस कक्ष में आज की बहुमूल्य उपालय उपहार-सामग्री एकत्रित है इसके अतिरिक्त आवास में शत कोटि स्वर्णभार, बहुत-सा अन्न-भण्डार तथा गज, रथ, अश्व हैं। वह सब लूट लो। अनुमति देती हूं, आज्ञा देती हूं।" ऐसा प्रतीत होता था जैसे देवी अम्बपाली के शरीर की एक २ रक्त बूँद आनन्द से नृत्य कर रही थी।

दस्यु बलभद्र ने संकेत से सब को रोक कर फिर अम्बपाली की ओर घूर कर कहा—"देवी और सब तथाकथित भद्र जन उस कक्ष के उस पार अलिन्द में तनिक चलने का कष्ट करें।"

सब ने दस्यु की आज्ञा का तत्क्षण पालन किया। अलिन्द में जाकर दस्यु ने द्वार का आवरण उघाड दिया। सबने देखा—नीचे प्राङ्गण में असंख्य नरमुण्ड खडे हैं। सब की पीठ पर एक २ गठरी है।

बलभद्र ने पुकार कर कहा—"मित्रो, तुमने देवी अम्बपाली के आवास से क्या लूटा है?"

"हमने केवल अन्न लिया है भन्ते!"

अम्बपाली ने कहा—"मेरे आवास में शत-कोटि स्वर्ण-भार और अनगिनत रत्न चहबच्चों और खत्तों में भरे पडे हैं। सब के द्वार उन्मुक्त हैं। तुम लूट क्यों नहीं लेते प्रिय जनो?"

"नहीं नहीं देवी, हम ऐसे दस्यु नहीं हैं। हम भूखे ग्रामीण कृषक हैं। अन्तरायण के अधिकारियों ने सेना भेज कर हमसे बलि ग्रहण कर ली थी, वे हमारी सारी फसल उठा कर ले गए हैं, हमारे बच्चे भूखों मर रहे थे। देवी की जय रहे। अब वे पेट भर कर खायेंगे।"

दस्यु ने कहा—"देवी अम्बपाली, यह गण-तन्त्र भी उसी भांति

गण शेखक है जैसे साम्राज्य। यहां भी दास हैं, दरिद्र निकम्मे मद्यप स्त्रैण सामन्तपुत्र हैं। ये सेट्ठिपुत्र हैं। पत्थर की भांति अरब खरब की रत्न-मणि अपने शरीर पर भूखे नंगे कृषकों को लूटने को सेना भेज कर यहां मद-मत्त है। ये सभी गणरक्षक तो यहां हैं, जो निर्लज्ज की भांति करते हैं। देवी! मैं ये हीरे मोती इन्हीं कृषको को लौटा देना जिनके पेट का अन्न छीनकर ये मोल लिए गए है। इन्हें फिर से ये अन्न मोल लेकर अपने बच्चों को खिलावेंगे और वस्त्र पहन

दस्यु की आंखों से आग की झड़ें निकल रही थीं। इसी . लेखा धीरे २ आगे बढ़ी। उसने अपने दोनो हाथ आगे बढ़ा। उनमें उसके दो तीन आभरण थे। मृदु मन्द स्वर से कहा—"ये भन्ते, इन्हें लेकर मुझे भी अनुगृहीत कीजिये।"

कठोर दस्यु द्रवित हुआ। उसने आशीर्वाद का वरद हस्त उस दासी के मस्तक पर रखा और फिर कहा—"मित्रो, अब तुम शांत से अपने २ स्थान को चले जाओ।"

सब के चले जाने पर दस्यु ने कहा—"आप सब जो जहां हैं भर वहीं रहें।"

सबने चुपचाप दस्यु की आज्ञा का पालन किया। दस्यु वहां से उसी प्रकार लोप हो गया जिस प्रकार प्रकट हुआ था।

: १२३ :

एकाकी

जयराज ने साहस किया। वे लोमड़ी की भांति चक्कर काट कर अगले गांव की ओर बढ़े। वे जानते थे, वह ग्राम बड़ा था। तथा वहां ठहरने की भी सुविधाएं थीं। ये ग्राम मल्लों और कोलों के थे। इससे जयराज को यह भी आशा थी कि आवश्यकता होने पर नगरपाल या ग्राम-जेट्ठक उनकी सहायता कर सकेगा। मार्ग में एक निविड़ वन पड़ता था। रात अन्धेरी थी और जयराज के पास अश्व भी न था। अन्धकार और भय का परस्पर सम्बन्ध है, जयराज एक जीवट के पुरुष थे। कार्य-गुरुता समझ उन्होंने प्रत्येक मूल्य पर आगे चले जाना ही ठीक समझा। वे नग्न खड्ग हाथ में लिए गहन वन में घुस गए। सम्पूर्ण रात्रि उनको चलते ही व्यतीत हुई। थकान प्यास और भूख जब असह्य हो गई, तब उन्होंने एक वृक्ष का आश्रय ले शेष रात काटी। कुछ देर विश्राम करने से उन्हें थोड़ा सुख मिला। सूर्योदय से कुछ पूर्व ही वे फिर चल पड़े। थोड़ी ही देर में उन्हें राज-मार्ग दीख पड़ा। तीन ओर से तीन मार्ग आकर मिले थे। निकट ही वह ग्राम था। ग्राम में आहार आश्रय पाने की आशा से वे शीघ्र २ चलने लगे। इसी समय एक सार्थवाह का साथ होगया। इसमें सब मिलाकर छै पुरुष, चार अश्व और ३ टाघन थे। ये मैरेय के कुप्यक लेकर राजगृह जा रहे थे। जयराज इनसे बात ही कर रहे थे कि चार और मनुष्य इस मण्डली में आ मिले। सार्थवाहों ने कहा—'ये अपने ही जन हैं, पीछे रह गये थे, जयराज को सदेह हुआ, परन्तु वह उन्हीं के साथ बातें करते हुए चलने लगे। उन्होंने अपने को एक वस्त्र-व्यवसायी बताया। इस पर उनमें से एक उनके लम्बे खड्ग की ओर देखकर खिलखिला कर हँस पड़ा।

दो दण्ड दिन चढ़ते २ वे सब उस ग्राम में जा पहुँचे। ग्राम और बड़ा था। उसमें पक्की अट्टारियाँ थीं। भद्रवसन जन खाद्य-हाट भी थीं। नगर के बाहर ही एक पान्थागार था। उसी विश्राम किया। सबके साथ मिलकर जयराज भी खाने-पीने की में लग गये। निकट ही एक छोटी-सी नदी थी। वहां जाकर स्नान किया। वस्त्र धोये और फिर भोजन बनाया। साथी . इधर उधर फैल कर खाने की खटपट में लगे। परन्तु उनका संदेहास्पद था। जयराज ने देखा वे अत्यन्त गुप्त भाव से उन्हीं पर दिए हैं। उन्हें यह भी सन्देह हुआ कि सम्भवतः वे किसी आगन्तुक प्रतीक्षा कर रहे हैं। सन्देह बढ़ता ही गया और जयराज नग्न खड्ग रख भोजन बनाने लगे। उनके खड्ग को देख कर जो हँसा था उ. दिल्लगी से कहा—'भन्ते, यह क्या बात है ? आप भात भी क्या खड्ग ही खाते हैं?'

जयराज ने भी हँस कर कहा—"नहीं मित्र, परन्तु कुत्ते बिल्ली भय तो है ही।"

"ओह, तो इसी लिए नग्न खड्ग निकट रख कर भोजन बना रहे हैं।"

"इसीसे मित्र।"

सार्थवाह जनों ने कुटिल मुस्कान की।

जयराज ने भोजन तैयार होने पर भोजन करने को हाथ बढ़ाया। इसी समय काणे चाण्डाल मुनि ने आगे बढ़ कर कहा—"आयुष्मानो, मैं जन्मतः चाण्डाल हूं। ब्रह्मचर्य-व्रत मैंने धारण किया है। यम नियमों का विधिवत् पालन करता हूं। मैं रांध कर नहीं खाता। अपने बचे हुए आहार में से थोड़ा मुझे दो।"

उस धूर्त काणे नापित गुप्तचर को अपने सिर पर उपस्थित देखकर जयराज का माथा ठनका। उन्होंने सोचा, ब्राह्मण महामात्य की सहस्र आँखें हैं, सहस्र भुजायें हैं। उसकी दृष्टि से बचकर कुछ नहीं किया

सकता। कैसे यह काणा नापित इस समय यहां उपस्थित हो गया।

किन्तु शेष सार्थवाह-जनों ने ससम्भ्रम उठकर काणे मुनि का बहुत २ स्वागत सत्कार किया और विविध भावभंगी दिखा कर कहा—"आइये मुनि, आइये भदन्त, यह आसन है, हमारा आज का भोजन ग्रहण कर हमें कृतार्थ कीजिए।"

जयराज पर अब सार्थवाहजनों की वास्तविकता भी प्रकट हो गई। निस्सन्देह ये सब मागध गुप्तचर थे। उन्होंने मन की चिन्ता मन ही में छिपा कर हँस कर उस छद्मवेशी काणे मुनि के सत्कार में साथियों का योग दिया। काणा विविध सेवा-सत्कार से संतुष्ट हो धार्मिक कथा कहकर उन्हें सम्बोधित करने लगा। जयराज अपनी आत्मरक्षा के लिये योजना स्थिर करने लगे। उन्होंने सोचा, निस्संदेह आज एक बड़ी योजना का सामना करना पड़ेगा। उन्होंने मन ही मन कर्तव्य स्थिर किया और साथियों से कहा—

"मित्रो मैं एक अश्व खरीदना चाहता हूँ, क्या यहां मिलेगा?

"कैसे कहें भन्ते, हम तो सब नवागन्तुक हैं।"

"परन्तु कोई एक मेरे साथ बस्ती में चले तो अश्व देखा जाय।

सार्थवाहों ने दृष्टि विनिमय किया। एक ने उठकर कहा—"मैं चलता हूँ भन्ते।"

दोनों गांव में चक्कर काटने और अश्व ढूँढने लगे। ढूँढते २ वे कोटपाल के घर के निकट पहुँचे। यहां पहुँचकर जयराज ने कहा—"मित्र यह कोटपाल का घर है। क्यों न इससे सहायता ली जाय।"

साथी हिचकिचाया, परन्तु उसे सहमत होना पड़ा। कोटपाल के निकट जाकर जयराज ने एक अश्व खरीदने में उसकी सहायता मांगी। कोटपाल के पास एक अड़ियल टट्टू था। उसकी बहुत २ प्रशंसा करके उसने वह टट्टू जयराज के गले मंढ दिया। जान-बूझकर जयराज ने टट्टू पसन्द कर लिया। टट्टू की चाल की परीक्षा करने और पान्थागार से सुवर्ण ले

आने के बहाने जयराज उस व्यक्ति को कोटपाल के निकट बैठा ।
'अभी मुहूर्त भर में लौट कर आता हूं' कह कर वहां से टट्टू ले,
जिस तीव्र गति से जाना शक्य था, राज-गृह के मार्ग पर दौड़
सूर्यास्त तक वे चलते गए। टट्टू अड़ता था परन्तु उससे विशेष
होती थी। रात होते २ जयराज एक दूसरे ग्राम के निकट पहुंचे।
एक चैत्य में एक क्षपणक रहता था। उसकी अनुमति से वहीं रात क
का विचार किया। क्षपणक थोड़ा धन पाकर सन्तुष्ट हो गया ।
से निवृत्त होकर जयराज ज्यों ही शयन की व्यवस्था कर रहे थे कि व
काणा उनके निकट पहुंचा। पहुंचकर कहा—"मैं चाण्डाल कुल
ब्रह्मचारी हूं, अष्टाङ्ग-यम-नियम का विधिवत्‌""""

उस धूर्त काणे गुप्तचर को प्रेत की भांति अपने पीछे लगा दे
जयराज क्रोध से पागल हो गये परन्तु उन्होंने उठकर उस कपट मुनि
सत्कार करके कहा—"भदन्त, भोजन मैं कर चुका, आहार शेष नहीं है।
क्या स्वर्ण दूं ?"

"नहीं उपासक ! मैं स्वर्ण नहीं छूता, हाथ से रांध कर खाता भी नहीं"

"तो दुःख है भदंत ! तुम किसी गृहस्थ से भोजन ले आओ।"

"या निराहार ही सो रहूं ? जैसा तू कहे, उपासक।"

"जिसमें भदन्त अपना धर्म समझें।"

जयराज कक्ष में जा, दीपक एक कोने में रख, भूमि पर बिछौना
बिछा सो गए। कुछ देर काणा मुनि उस क्षपणक के साथ धर्मचर्चा
करता रहा। फिर वह भी वहीं सो गया।

जब जयराज ने दोनों को सोया समझा तो झांक कर उन्हें देखा।
युक्ति से उसके कक्ष का द्वार रोक कर सोए थे। जयराज ने समझ लिया—
दोनों यह क्षपणक भी गुप्तचर ही हैं। उसने भली भांति कक्ष की दीवारें
छुईं और द्वार को देखा। घर पुराना था और द्वार सड़ा हुआ। आक्रमण
होने पर रक्षा के योग्य नहीं था। परन्तु उन्होंने सोचा कि ये दो ही हैं,

तब तो मैं ही यथेष्ट हूँ। उन्होंने आवश्यकता होने पर उस धूर्त काणे को जान से मार डालने का दृढ संकल्प कर लिया। उन्होंने स्वर्ण से भरी थैली अपने कण्ठ में लटका ली। खड्ग नग्न करके निकट रख लिया। उतारे हुए वस्त्र फिर से पहन लिए। इसके बाद द्वार को भली भांति परीक्षा करके उन्होंने दीप बुझा दिया।

दीप बुझाकर वे निश्शब्द बिछौने मे उठकर द्वार से कान लगा कर बैठ गये। थोडी ही देर में काणा मुनि उठकर बैठ गया। क्षपणक भी उठ बैठा। क्षपणक दो उत्तम बड़े २ खड्ग छिपे स्थान से उठा लाया। जयराज यह सब देख बिस्तर पर जा सोने का नाटक करते हुए वेग से खुर्राटे भरने लगे।

आखेट को सोया हुआ समझकर दोनो खड्ग लेकर द्वार के निकट आ खडे हुए। किसी पूर्व-निश्चित विधि से उन्होंने निश्शब्द द्वार खोल डाला। द्वार खुलते ही जयराज बिछौने से उठकर द्वार के पीछे आड में छिप गया। आगे काणा और पीछे क्षपणक दोनों निश्शब्द आगे बढ़े। काणे के तनिक आगे बढ़ जाने के बाद क्षपणक वहीं ठिठुक कर 'काणा बिछौने के निकट क्या कर रहा है यह देखने लगा।' इस अवसर से लाभ उठा कर जयराज ने एक भरपूर हाथ खड्ग का क्षपणक के मोढ़े पर फेंका। और क्षपणक बिना एक शब्द किए बीच म दो टूक होकर गिर पडा।

काणा नापित खड्ग हाथ में ले घूम कर खडा हो गया। जयराज ने कहा—"भदन्त, यहां तो बहुत अन्धकार है, तुम्हारा साथी तो निर्वाण-पद को पहुँच गया। अब तुम बाहर आओ। वहां चन्द्रमा का क्षीण प्रकाश है। पर मैं समझता हूं तुम्हारे निर्वाण के लिए यथेष्ट है।"

नापित ने कहा—'भन्ते, ऐसा ही हो'। बाहर आकर दोनों घोर युद्ध में रत हुये। कोई भी जीवित प्राणी वहां उनका साक्षी न था। जयराज ने कहा—"प्रभंजन, तू खड्ग चलाने में उतना ही प्रवीण है जितना छद्मवेश धारण करने में। परन्तु आज तेरी यहीं मृत्यु है।"

"जीवन और मृत्यु तो भन्ते, आने जाने वाली वस्तु है। जो कार्य में रत हैं, वे इस बात पर विचार नहीं करते।"

"यह क्या चाण्डाल मुनि का वचन है ?"

"नहीं भन्ते, प्रभंजन नापित गुरु का। मैं खड्ग-हस्त होकर नहीं बोलता।"

और बातचीत नहीं हुई। दोनों वीर असाधारण कौशल से करने लगे। ऐसे भी क्षण आए जब जयराज को प्राणों का भय उपस्थित हुआ। पर एक अवसर पर प्रभंजन का पैर फिसल गया उसका उठा हुआ खड्ग लक्ष्य-च्युत हुआ और दूसरे ही क्षण उसके कंधे पर जयराज का भरपूर खड्ग पड़ा जिससे उसका मस्तक कट कर लुढ़क कर दूर जा गिरा। मस्तक कटने पर भी प्रभंजन का रुण्ड कुछ समय तक खड्ग घुमाता रहा। उस एकान्त रात में, जनशून्य चैत्य में रक्त से भरी भूमि में रक्त चूता हुआ खंग हाथ में लिए जयराज ने छिन्न मस्तक रुण्ड को हवा में खड्ग ऊंचा किए अपनी ओर दौड़ता देखा तो भय से वह पीले पड़ गए। इसी क्षण प्रभंजन का कबंध भूशायी हो गया। जयराज अब वहां एक क्षण भी न ठहर उसी के वस्त्रों से खड्ग का रक्त पोंछ राजगृह के मार्ग पर एकाकी ही अग्रसर हुए। उस समय वह भय और साहस के झूले में झूल रहे थे।

: १२४ :

मधुवन में

दस्यु बलभद्र आगे, देवी अम्बपाली उनके पीछे, स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल उनसे भी पीछे तथा पांच दस्यु खंग-हस्त उनके पीछे इस प्रकार वे वैशाली के शून्य राजपथ को पार कर वन-वीथी में होते हुए उत्तर रात्रि में मधुवन-उपत्यका में पहुँच गए। अम्बपाली दस्युराज से बात किया चाह रही थीं; परन्तु दस्यु चुपचाप आगे बढा जा रहा था, मार्ग में अन्धकार था। अम्बपाली एक सुखद भावना से ओत-प्रोत हो गई। उसके मानस नेत्रों में कुछ पुराने चित्र अंकित हुए। वह होठों ही में कहने लगी, यदि इसी समय एक बार फिर सिंह आक्रमण करे और मुझे उधर पर्वत-शृंग पर स्थित कुटीर में एक बार अवश नृत्य करना पड़े तो कैसा हो?"

उसने आवेश में आकर अश्व बढाया। अश्व को दस्युराज के निकट लाकर कहा—

"भन्ते, हमें कब तक इस भांति चलना पड़ेगा।"

"हम पहुंच चुके देवी"—दस्यु ने कहा।

फिर एक संकेत किया। कहीं से एक दस्यु काले भूत की भांति निकल कर सम्मुख उपस्थित हुआ। दस्यु ने मन्द स्वर से कहा—

"साम्ब, सब यथावत् ही है न?"

"हां भन्ते।"

"तब ठीक है तू अपना कार्य कर।"

काला भूत चला गया। दस्यु ने अब पर्वत पर चढ़ना प्रारम्भ किया। पहाड़ी बहुत ऊंची न थी। चोटी पर चढ़कर सब लोग यथा-स्थान खड़े हो गये। सर्वमल्ल और स्वर्णसेन ने भयभीत होकर देखा—

सम्मुख उस टेकरी के दक्षिण पार्श्व की उपत्यका में
स्थान २ पर आग जल रही है। उस जलती आग के बीच में,
पीछे बहुत से दस्यु अश्व पर सवार हो इधर से उधर आ जा
सब का सर्वांग काले वस्त्र हो आवेष्टित है। सूर्यमल्ल ने धीरे से।
खड़े हुए युवराज स्वर्णसेन से कहा—"यह तो दस्यु-सैन्य-शिविर
होता है। दीख पड़ता है, जैसे दस्युओं का दल चीउँटियों के दल
समान अनगिनत है।"

एक विचित्र प्रकार का अस्फुट शब्द-सा सुनकर स्वर्णसेन ने
के वाम पार्श्व में घूम कर देखा। उधर से एक सुसज्जित अश्वारो
सैन्य धीरे २ सावधानी से इस तथाकथित दस्यु-शिविर की ओर
रहा था। उनके शस्त्र इस अन्धेरी रात में भी दूर जलती हुई आग
प्रकाश में चमक रहे थे। इस सैन्य को धीर-गति से आगे बढ़ते देख
स्वर्णसेन ने प्रसन्न मुद्रा से उंगली से उधर संकेत किया।

सूर्यमल्ल ने हर्षित होकर कहा—

"यह हमारी सेना है, दस्युओं के शिविर पर अब आक्रमण हुआ ही
चाहता है। परन्तु दस्यु क्या बिल्कुल ही असावधान हैं?" उसने अचल
भाव से आग की ओर निश्चल देखते हुए दस्युओं की ओर
देखा। फिर पीछे खड़े हुए दस्युओं को मुंह फेर कर देखा। वे उसी
प्रकार नग्न खग लिए खड़े थे।

इतने ही में लिच्छवि सेना ने एकबारगी ही फैलकर दस्यु शिविर
पर धावा बोल दिया। स्वर्णसेन और सूर्यमल्ल का रक्त उबलने लगा।
उन्होंने दस्यु बलभद्र की ओर देखा, जो उसी भांति निस्तब्ध खड़ा
था।

"क्या इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, किस भरोसे यह निश्चिन्त
यहां खड़ा है?" स्वर्णसेन ने हाथ मलते हुए कहा—"खेद है हमारे पास
शस्त्र नहीं हैं।"

लिच्छवि सैन्य ने वेग से धावा बोल दिया। परन्तु यह कैसा आश्चर्य है कि दस्यु सम्मुख नहीं आ रहे। जो दस्यु सैनिक इधर उधर वहां घूमते दीख रहे थे, वे भी अब लुप्त हो गए हैं। लिच्छवि सेना यों ही शून्य में अपने भाले और खड्ग चमकाती हुई चिल्ला रही थी। वह जैसे वायु से युद्ध कर रही है।

"यह सब क्या गोरखधन्धा है मित्र"–स्वर्णसेन ने सूर्यमल्ल का कन्धा पकड़ कर कहा।

सूर्यमल्ल की दृष्टि दूसरी ओर थी। उसकी आंखें पथरा रही थीं और वाणी जड़ थी। उसने भरे हुए स्वर में कहा—

"सर्वनाश", साथ ही एक ओर को उँगुली उठाई।

स्वर्णसेन ने देखा—"काली नागिन की भांति काले वस्त्र पहने दस्यु-सैन्य एक कन्दरा से निकल कर लिच्छवि-सैन्य के पिछले भाग में फैलती जा रही है। दूर तक इस काली सेना के अश्वारोही घाटी में बिखरे हुए हैं। देखते ही देखते, लिच्छवि सैन्य का उसने समस्त पृष्ठ भाग छा लिया। और जब वह सेना विमूढ की भांति दल बांध कर तथा सम्मुख एक भी शत्रु न पाकर ठौर २ पर जलती हुई आग के चारों ओर घूम २ कर तथा हवा में शस्त्र घुमा २ कर चिल्ला रही थी, तभी दस्यु-सैन्य ने, जैसे कोई विकराल पक्षी अपने पर फैलाता है, अपने दाहिने बाएं पक्षों का विस्तार किया। देखते ही देखते लिच्छवि-सैन्य तीन ओर से घिर गई। सम्मुख दुर्गम दुर्लंघ्य पर्वत था। परन्तु लिच्छवि-सैन्य को कदाचित् आसन्न विपत्ति का अभी आभास भी नहीं मिला था। सूर्यमल्ल के होठ चिपक गये और शरीर जड हो गया। स्वर्णसेन के अंग से पसीना बह चला।

आग के उजाले के कारण लिच्छवि-सैन्य ने दस्युदल को बहुत निकट आने पर देख पाया। थोड़ी ही देर में मार-काट मच गई; और दस्युओं के दबाव से सिकुड़ कर लिच्छवि जलती हुई आग की ढेरियों

: १२५ :

विसर्जन

साम्ब ने देवी अम्बपाली को दूसरी गिरि-गुहा में ले जाकर श्यामा वामा के उन्हें सुपुर्द किया, उसके अंग सौष्ठव और भाव देख अम्बपाली भाव-विमोहित हो गई। राजमहालयों में दुर्लभ सज्जा इस दुर्गम वन में उपस्थित थी। उस गिरि-गुहा के और विलास को देखकर अम्बपाली आश्चर्य चकित रह गई। आगे बढ़कर सम्मुख स्मितवदना श्यामा वामा की ओर देखकर कहा

"तू कौन है हला?"

"मैं नाउन हूं भट्टिनी"—वह हँस दी।

जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी खिल जाती है उसी प्रकार श्यामा वामा के निर्दोष मृदुल हास्य से पुलकित होकर अम्बपाली उसे अंक में भर कर कहा—

"तू बड़भागिनी है हला, तू जिस पुरुष की सेवा में नियुक्त है उसकी सेवा करने को न जाने कितने जन तरस रहे हैं।"

"सुन कर कृतकृत्य हुई, भट्टिनी, आपके दर्शनों से मेरे नेत्र स्नात-पूत हो गये। अब आज्ञा हो तो मैं आपका अंग-संस्कार करूं। इस वन में जो साधन सुलभ हैं उन्हीं पर, भट्टिनी, संतोष करना होगा।"

अम्बपाली ने मुस्करा कर कहा—"अच्छा हला।"

नाउन ने देवी अम्बपाली का अंग-संस्कार किया, उन्हें सुवासित किया। नाउन के हस्त-लाघव, हस्त-कौशल, मृदुल-वार्तालाप और यत्न से देवी अम्बपाली का सारा श्रम दूर हो गया। फिर जब सुवासित मदिरा और विविध प्रसून और एक से एक बढ़कर खाद्य-पेय उनके

सम्मुख आए तो उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने कहा—"हला, तेरे स्वामी वे दस्यु-सम्राट् क्या दर्शन ही न देंगे ?

"यह तो उनकी इच्छा पर निर्भर है भट्टिनी, किन्तु अभी आप आहार करके थोड़ा विश्राम करलें।"

"नहीं नहिं हला, उन्हे बुला।"

नाउन ने हँस कर कहा—"क्या कहूं भट्टिनी, बुलाने से तो वे आवेंगे नहीं। आप ही आ सकते हैं।"

"यह कैसी बात ?"

"वे किसी की इच्छा के अधीन नहीं हैं, इसी से।" नाउन ने दुष्टतापूर्ण हँसी हँसते हुए कहा।

"ऐसा ही मैं भी कभी समझती थी। कभी अवसर मिलने पर उनसे कह देना, कह सकेगी ?"

"कह सकूंगी।"

"अब भी ऐसा ही है देवी अम्बपाली"-सोमप्रभ ने हँसते २ आकर कहा।

अम्बपाली ने सोमप्रभ को सुवेशित भद्र नागरिक वेश में नहीं देखा था। आज देख कर क्षण भर को उनकी प्रगल्भता लुप्त हो गई।

सोम ने कहा—

"आप मुझ पर कुपित तो नहीं हैं देवी !"

"कुपित होकर तुम्हारे जैसे समर्थ का कोई क्या कर सकता है भद्र ?"

"समर्थ पर भी कुछ जन समर्थ होते हैं।"

"ऐसे कितने जन हैं प्रियदर्शन !"

"केवल एक को मैं जानता हूं, आज्ञा पाऊं तो कहूं !"

"स्वेच्छा से कहना हो तो कहो !"

"तो सुनो, मैंने एक व्यक्ति देखा है जो निरातंक, साह्लाद, से हो स्वर्ण रत्न-भाण्डारों के द्वार उन्मुक्त करके दस्युओं को लूट लिए अभिनन्दित करता है।"

"रहने दो प्रिय, आओ कुछ खाओ पिओ।"

दोनों बैठ गये। अवसर पा नाइन पान लेने खसक गई। ...ने सोम का हाथ पकड़ कर कहा—

"तुम ऐसे समर्थ, ऐसे सक्षम, कामचारी, दिव्य शक्तियों से ...त ऐन्द्रजालिक कौन हो प्रिय दर्शन!"

"यही कहने को मैं तुम्हें यहां ले आया हूं अम्बपाली!"

"तो कह दो प्रिय, मैंने तो तुम्हारे कण्ठ-स्वर से ही प... लिया था।"

"यह मैंने तुम्हारे इन नेत्रों में पढ़ लिया था।"

"तुम्हारी नेत्रों से पढ़ने की विद्या से मैं परिचित हूँ, पर ... को"

"मैं मागध हूं प्रिये, मेरा नाम सोमप्रभ है।"

अम्बपाली ने जैसे तप्त अंगार स्पर्श कर लिया।

सोम ने कहा—

"क्या मागधों को तुम सहन नहीं कर सकती?"

"नहीं प्रिय, नहीं।"

"इसका कारण?"

"अकथ्य है।"

"अब भी।"

"मृत्यु के मूल्य पर भी प्रियदर्शन सोम, तुम यदि अम्बपाली को क्षमा कर सको तो कर देना" उनके बड़े २ नेत्र आँसुओं से गीले हो गए।

"प्रिये, अम्बपाली, क्या मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता हूं?"

"नहीं, प्रियदर्शन नहीं। अम्बपाली निस्सहाय, निरुपाय है।"

विषादपूर्ण मुस्कान सोमप्रभ के मुख पर फैल गई। उन्होंने एक लम्बी सांस ली। उसके साथ अनेक स्मृतियां वायु में विलीन हो गईं।

"प्रियदर्शन सोम, क्या मैं तुम्हारा कुछ प्रिय कर सकती हूं, प्राणों के मूल्य पर भी।"

"प्रिये, तुम मुझे सदैव क्षमा करती रहना और सहन करती जाना"

"अरे, यह तो मेरा अनुरोध था प्रियदर्शन।"

"तब तो और भी अच्छा है। हम दोनों एक ही नाव पर जीवन-यात्रा कर रहे हैं।"

"जो कदाचित् विषाद, निराशाओं और आंसुओं से परिपूर्ण है।"

"तो क्या किया जा सकता है प्रिये, प्रियतमे, जीवन से पलायन भी तो नहीं किया जा सकता।"

"न, नहीं किया जा सकता, सोम प्रियदर्शन, एक याचना करूं ?"

सोम ने अम्बपाली के दोनों हाथ पकड कर कहा—

"यह अकिंचन सोम तुम्हारा ही है, प्रिये अम्बपाली।"

"तो प्रियदर्शन मुझे सहारा देना, जब जब मैं स्खलित होऊं तब तब" उनके होठ कांपे, फिर उन्होंने टूटते अवरुद्ध स्वर में कहा—"यह मत भूलना सोमभद्र, कि मैं एक असहाय दुर्बल नारी हूं, तुम पुरुष की भांति मेरी रक्षा क ना, मैं तुम्हारी किंकरी, तुम्हारी शरण हूं। अम्बपाली सोम के पैरों में लुढ़क गईं। सोम ने उन्हें उठा कर अंक में भर लिया और अपने तप्त-तृषित, आग के अंगारों के समान जलते हुए ओठ उनके शीतल कम्पित ओठों पर रख दिए। अम्बपाली मूर्छित होकर सोम के अंक में बिखर गईं।

: १२६ :

एकान्त पान्थ

शरत्कालीन सुन्दर प्रभात था। राजगृह के अन्तरायण में मनुष्यों की भीड भरी थी। लोग अस्त्र-शस्त्रो से सु. इधर उधर आ जा रहे थे। प्रत्येक मनुष्य के मुँह पर युद्ध ि चर्चा थी। नगर अशांति और उत्तेजना का केन्द्र-स्थान बना हुआ लोग भय और आशङ्का से भरे हुए थे। शस्त्रधारी सैनिक ुण्ड झुण्ड वीथियों और हट्टों में फिर रहे थे। तथा आवश्यकता की स. खरीद रहे थे। सम्राट् और महामात्य वर्षकार के विग्रह की ब चढ़ा चढ़ा कर और नमक मिर्च लगा कर चर्चाएँ हो रही थ गुप्तचरों, और संत्रियों का नगर में जाल बिछा था। मन्त्री, ुोहि अन्तर आमात्य, दौवारिक, अन्तर्वेशिक, अन्तपाल, आदि व्यस्तभाव से नगर में आ जा रहे थे। हिरण्य और धान्यों से हुए शकट-सशस्त्र प्रहरियो के बीच राजभाण्डागार में जा रहे थे। अनेक संत्री और तीक्ष्ण पुरुष, तथा गूढाजीवा अदिति, कौशिक स्त्रियां नगर में घूम रही थीं। कोई दैवज्ञ के वेश में, कोई भिक्षुकी के वेश में, कोई क्षपणक के वेष में परस्पर मिलने पर गूढ संकेत करते हुये घूम रहे थे। नगर की चर्चा का मुख्य विषय युद्ध-कौशल शस्त्र-प्रयोग और युद्ध-प्रियता थी। थोडा भी कोलाहल होने पर लोगों की भीड किसी भी स्थान पर जमा हो जाती थी।

पान्थागार के सम्मुख एक परदेशी एकान्त पान्थ अश्वारोही आकर रुक गया। अश्व और आरोही दोनों ही अद्भुत थे। अश्व ऊँची रास का एक मूल्यवान् सैन्धव था और अश्वारोही एक स्फूर्तियुक्त बलिष्ठ किन्तु ग्रामीण-सा युवक था। ऐसा प्रतीत होता था—उसने

कोई बडा नगर देखा नहीं है, तथा वह अकस्मात् राजगृह की इस तडक भडक को देखकर विमूढ हो गया है। उसका अश्व मांसल, सुन्दर एवं चंचल था। अश्वारोही का लम्बा गम्भीर मुख, बडे २ ज्योतिर्मय नेत्र, उन्नत मस्तिष्क और दीर्घ वक्ष तथा दृढ अंग उसके उत्कृष्ट योद्धा होने के साक्षी थे। और उसके ग्रामीण वेश तथा अद्भुत व्यवहार करने पर भी उसका सौष्ठव व्यक्त करते थे। एक विकराल खड्ग उसकी कमर में लटक रहा था। उसकी दृष्टि निर्भय थी। वह भीड में खड़ा लोगों की सन्दिग्ध दृष्टियों को उपेक्षा और अवज्ञा की दृष्टि से देख रहा था। उसके वस्त्र धूल से भरे थे और शरीर थकान से चूर चूर था। यह स्पष्ट था कि वह अनवरत लम्बी यात्रा करता हुआ आया है। अश्व भी पसीने से तर-बतर था।

वह पान्थागार के अध्यक्ष से बातें कर रहा था। अध्यक्ष ने उसे सिर से पैर तक घूर कर कहा—"मित्र, खेद है कि मैं तुम्हें स्थान नहीं दे सकता, सब घर घिर गये है। वैशाली से राजदूत आये हैं, उन्हीं के सब संगी साथी तथा स्वयं राजदूत ने भी यहीं डेरा किया है। एक भी घर खाली नहीं है।"

"तो मित्र तू मुझे अपना निजू अतिथि मान। मुझे विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता है। यह दस कार्षापण है।"

सोने के दस चमचमाते टुकड़े हथेली पर रखे देख पान्थागार के अध्यक्ष के सब विचार बदल गए। उसने हँसकर कहा—"यह तो बात ही कुछ और है भन्ते। परन्तु दुःख है कि मेरे पास पान्थागार में स्थान नहीं है, फिर भी आप एक प्रतिष्ठित सज्जन हैं, मैं आपकी कुछ सहायता कर सकता हूँ।"

"किस प्रकार मित्र!"

"मेरा एक मित्र है, वह सम्राट् का प्रतीहार है। यहीं निकट ही उसका घर है, घर बडा और सुसज्जित है। सौभाग्य से वह बडा लालची

है। ऐसे ही दश सुवर्ण पाकर तो वह अपने रहने का सजा ही आपको अर्पण कर सकता है। इतने बड़े घर में वह पत्नी केवल दो ही व्यक्ति रहते हैं।"

"तो मित्र, यही कर, सुवर्ण की चिंता न कर।"

अध्यक्ष उस प्रतीहार को बुला लाया। वह एक ढीला ढा। वस्त्र पहने था। दुबला पतला शरीर, मिचमिची आँखें, गंजी पतली गर्दन। उसने आकर सम्मानपूर्वक युवक को अभिवादन -

युवक ने कहा—"यही वह व्यक्ति है?"

"यही है भन्ते!"

"तब यह स्वर्ण है।" उसने दस टुकड़े उसकी हथेली पर कहा—"शेष तुम्हारा साथी समझा देगा।"

"मैंने समझ लिया, भन्ते, खूब समझ लिया, आइये आप" कह कर अतिविनीत भाव से पान्थ को अपने साथ ले चला।

प्रतीहार का घर छोटा था, परन्तु उसमें सब सुविधायें राज के अनुकूल थीं। वहां वह निःशंक आराम से टिक गए। उसे एक सहायता और मिल गई। प्रतीहार ने उसे एक कृषक-तरुण से ला दिया। यह बालक अठारह वर्ष का एक उत्साही और ... नवयुवक था। जयराज ने उसे एक गंधन खरीद दिया और खूब खि. पिला कर परचा लिया। यह कृषक बालक छाया की भांति जयराज के साथ रह कर उनकी सेवा तथा आज्ञापालन करने लगा।

: १२७ :

प्रतीहार का मूलधन

प्रतीहार का नाम मेघमाली था। जयराज अपने सुमज्जित कक्ष में पड़े अनेक राजनैतिक तानें-बानें बुन रहे थे। इसी समय प्रतीहार ने द्वार खटखटाया। अनुमति पाकर वह अन्दर आया और बारंबार प्रणाम करके विनीत भाव से बोला—"भन्ते, आपका शौर्य और उदारता दोनों ही अद्वितीय हैं, मैं आपका सेवक सदैव आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। परन्तु इस समय मैं अर्थी हूँ, आप मेरी सहायता कीजिये।"

जयराज ने विस्मय को दबा कर कहा—

"कह मित्र, मैं तेरी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

उसने कुछ क्षण रुक कर कहा—

"मेरी स्त्री अति रूपवती है, वह चरित्र की भी उज्ज्वल है। दो वर्ष पूर्व मैंने उससे विवाह किया था। इसके लिये मेरा सब यत्न से संचित स्वर्ण भी खर्च हो गया। सुसराल से मुझे कुछ भी धन नहीं मिला। क्या कहूँ बड़ी विपत्ति में हूँ।"

जयराज हँसने लगे। हँसते ही हँसते उन्होंने कहा—"तो मित्र सुसराल से धन अब कैसे मिल सकता है तथा मैं इसमें क्या सहायता कर सकता हूँ।"

"विपत्ति कुछ और ही है भन्ते" वह रुका। फिर कुछ खांस कर बोला—"भन्ते, वह कल रात से ही नहीं आई है।"

"रात से नहीं आई है? तब गई कहां?"

"मेरा दुर्भाग्य है भन्ते, क्या कहूँ, वह वणिक सुखदा
गई थी।"

"सुखदास कौन है ?"

"एक दुष्ट विदेशी है भन्ते, वह बहुत से सैन्धव अश्व
से चीन देश के कौशेय वस्त्रों के जोडे बेचने राजगृह आया है
उसे उसके पास एक सहस्र उत्तम अश्व और पांच सहस्र व
जोड़े ख़रीदने भेजा था, सम्राट् युद्ध की तैयारी कर रहे हैं
पास कुछ निकम्मे अश्व थे। मैंने सोचा था वे सब मिलाकर
को बेच दूंगा। कुछ लाभ हो जायगा।"

"पत्नी को वणिक के पास क्यों भेजा था स्वयं क्यों नहीं गए ?"

"ये वणिक बडे लुच्चे हैं भन्ते, सुन्दरी और नवयुवती स्त्रियों
देखते ही पानी हो जाते हैं, सौदा ठीक से हो जाता है। मेरी पत्नी
भी है, और चतुर भी है। उसके सुन्दर रूप और मधुर वचनों से
होकर ये वणिक सौदा में खींच-तान नही करते। जितना मूल्य वह हँ
कर दे देती है। वे हँस कर ले लेते है।"

जयराज को इस व्यक्ति में आकर्षण प्रतीत हुआ। उसने मन की
हँसी दबा कर कहा—"तो मित्र, तू अपनी पत्नी से दुहरा लाभ उठाता
है।"

"पर भन्ते, जितना सुवर्ण उसके लोभी पिता ने मुझसे लिया था
अभी उतना भी तो नहीं मिला है।"

"अस्तु, तू पत्नी की बात कह !"

"वही कह रहा हूं भन्ते, मैंने उसे सुखदास के पास एक सहस्र अश्व
और पांच सहस्र चीनांशुक क्रय करने को भेजा था।"

"यह तो मैंने सुना, इसके बाद ?"

"इसके बाद, भन्ते, वह पाजी सुखदास ऐसा प्रतीत होता है मेरी

स्त्री पर मोहित हो गया। और उसे एकान्त में ले जाकर कहा—मूल्य लेकर तो एक भी अश्व, एक भी चीनांशुक नहीं दूंगा, परन्तु हां यदि तू आज रात मेरी सेवा में रहे तो पांच सौ घोडे और एक सहस्र चीनांशुक तेरी भेंट हैं।"

"और तेरी चरित्रवती स्त्री ने स्वीकार कर लिया?"

"नहीं भन्ते, उस साध्वी ने कहा—मैं पति से पूछ लूं, वह आज्ञा देगा तो मैं तेरी बात रख लूंगी।"

"सो तैंने आज्ञा देदी?"

"पांच सौ सैन्धव अश्व और एक सहस्र चीनांशुक भन्ते, कम नहीं होते। ऐसे मूर्ख भी बार बार नहीं मिलते। मैंने सीधे स्वभाव कह दिया—यदि एक ही रात्रि में पांच सौ अश्व और सहस्र चीनांशुक मिलते हैं तो दोष नहीं है, तू ऐसा ही कर।"

"और तेरी वह साध्वी स्त्री तेरा आदेश मान कर वहाँ चली गई?"

"यही बात हुई भन्ते, अब अश्व और चीनांशुक तो उसने भेज दिए; पर स्वयं नहीं आ रही है।"

"उसने कुछ संदेश भी भेजा है?"

"सन्देश भेजा है भन्ते, उसने कहलाया है कि इस सत्त्व रहित और लोभी पति से तो वह पति अच्छा है जो एक रात्रि के पाँच सौ अश्व और सहस्र चीनांशुक दे सकता है।"

"अब तेरा क्या कहना है?"

"मैं कहता हूं कि यह मात्र विनोद वाक्य है। ऐसा बहुत बार कह चुकी है। उसका स्वभाव ही हँसोड है।"

"तेरा अनुमान यदि सत्य हो तो?"

"तो भन्ते राजकुमार, मेरी स्त्री मुझे दिलवा दीजिए। उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकूंगा, भूखों मर जाऊंगा।"

"यह तो सत्य है, जब तू भूखों मर जायगा तो जीवित सकता है।"

"भन्ते, मैं प्रतिष्ठित पुरुष हूं।"

"तो प्रतिष्ठित पुरुष, अभी तू जाकर शयन कर, सुख से भोर होने पर मैं सुखदास के अश्वों को और तेरी उस साध्वी भी देखूंगा।"

प्रतिहार कुछ संतुष्ट होकर मन ही मन बड़बड़ाता चला गया।

: १२८ :

प्रतीहार-पत्नी

दूसरे दिन जयराज भड़कीला परिधान धारण कर अश्व पर आरूढ़ हो, संग में कृषक-तरुण धवल्ल को ले सुखदास वणिक के निवास पर जा पहुंचा। सेवक सहित इस प्रकार एक भद्र पुरुष को देख सुखदास ने उसका सत्कार करके कहा—"भन्ते, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?"

जयराज ने इधर उधर देखते हुए हंसकर कहा—"मित्र मैं किसी अच्छी वस्तु को क्रय किया चाहता हूं, सुना है तू बड़ा प्रामाणिक व्यापारी है।"

"भन्ते, मेरे पास बहुत उत्तम जाति के अश्व हैं और बहुमूल्य चीनांशुक के जोड़े हैं। सम्राट् युद्ध-व्यवस्था में रत हैं, उन्हें अश्वों की आवश्यकता है, इसी से मैं और मेरे ग्यारह मित्र भी अश्व लाए हैं। हमारे पास सब मिलाकर एक लाख अश्व हैं। ये सब सम्राट् के लिये हैं भन्ते।"

"इतर जनों को भी तैंने माल बेचा है मित्र।"

"परन्तु मैं खुदरा बिक्री नहीं करता, थोक माल बेचता हूँ।"

"थोक ही सही, तब कह पांच सौ सैन्धव अश्व और एक सहस्र चीनांशुक का तू क्या मूल्य लेता है?"

"सुखदास वणिक सन्देह और भय से जयराज का मुंह ताकने लगा।"

जयराज ने कहा—"कह मित्र, अभी कल ही तूने एक सौदा किया है। तू बड़ा व्यापारी अवश्य है परन्तु एक ही दिन में इस छोटे से सौदे को तो नहीं भूला होगा।"

"आप क्या राजपुरुष हैं भन्ते?"

"परन्तु मैं राज-काज से नहीं आया हूं, अपने ही काम से आया हूं।"

"तो भन्ते, आपको क्या चाहिए, कहिए-मेरा कर्तव्य है आज्ञापालन करूं।"

"यह अच्छा है, सस्ते में क्रय करना और लाभ लेकर आ' में बेचना व्यापार की सबसे बड़ी सफलता है।"

"लाभ ही के लिये व्यापार किया जाता है भन्ते !"

"यह बुद्धिमानी की बात है। इधर लिया उधर दिया, न ?"

"बिल्कुल ठीक है भन्ते, लाभ मिलना चाहिए।"

"यह बुद्धिमानी की बात है, तो अभीष्ट वस्तु मिलने पर मैं मांगा दाम देता हूं, मेरे पास सुवर्ण की कमी नहीं है मित्र !"

"आप जैसे ही राजकुमारों के हम सेवक हैं भन्ते !"

"तो मूल्य कह मित्र !"

"काहे का ?"

"उस स्त्री का, जिसको तैंने कल खरीदा है।"

सुखदास वणिक का मुँह सूख गया। उसने कहा—"कैसी भन्ते ?"

"प्रतीहारपत्नी रे, क्या मुझे चराता है"—अभयराज ने व्याज-को से कहा।

सुखदास थर थर कांपने लगा। उसने कहा—"दुहाई राजपुत्र, निर्दोष हूं।"

"पर तू जानता है, सम्राट् तुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे, अभी तर बांधने को राजपुरुष आवेंगे, वे तुझे ले जाकर सूली पर चढ़ा देंगे।"

"परन्तु वह स्वेच्छा से आई है भन्ते, अपने पति की अनुमति से।"

"यह सत्य है, परन्तु वह अब उस लोभी वृद्ध और कृपण प्रतीहार के

पास नहीं जाना चाहती, भन्ते, उस सुशीला से वह हठ कर वह कुकर्म कराता है। केवल उस दुष्ट के अधीन होने से वह वणिकों के पास जा क्रय विक्रय करती है। अपने चित्त से अपने योग्य काम समझ कर नहीं। उसके रूप और सौन्दर्य को उस पतित ने अपना मूलधन बनाया हुआ है।"

"तो मित्र, मैं उस मूलधन को देखा चाहता हूं।"

"मै उससे पूछ कर कह सकता हू कि वह आपसे मिलकर बात करना चाहेगी या नहीं।"

"तो तू पूछ ले मित्र!"

वणिक भीतर चला गया। थोड़ी ही देर में उसने आकर कहा—

"चलिए भन्ते, वह आपसे मिलने को सहमत है।"

जयराज ने भीतर जाकर एक सुसज्जित कक्ष में उसे खड़े देखा। उसकी अवस्था बीस बाईस वर्ष की थी। वह अति कमनीय रूपवती बाला थी, सौन्दर्य और लावण्य उसके सुडौल मुख औरअंग२ से लावण्य फूटा पड़ता था। लाल लाल पतले होंठ और बड़ी २ नुकीली आंखें काम-निमन्त्रण-सा दे रही थीं। इस अप्रतिम सौन्दर्य प्रतिमा के मुख पर निष्कलंकता और अभय की आभा देखकर जयराज पुलकित हो गए। प्रफुल्लित रक्तिम आभा से प्रदीप्त मुखमण्डल पर मुस्कान की सुधा देखकर उसने कहा—

"मैं आपका क्या प्रिय करूं प्रिय?"

"उसके कोमल कण्ठ को सुनकर जयराज ने कहा—"सुन्दरी, मैं तेरे पति का मित्र हूं और तुझे यहां से उसके पास ले चलने को आया हूँ। तेरे जैसी चरित्रवती रूपवती के लिये इस प्रकार पुंश्चली की भांति पर-पुरुष का सेवन करना अच्छा नहीं हू।"

"आप ठीक कहते हैं भन्ते राजकुमार, पर यह दूषित कार्य मैंने अपनी इच्छा से अपने विलास के लिये नहीं किया है। आप ही कहिए

जिस लोभी ने आपत्ति के दिना मुझे अन्य पुरुष के हाथ उस सत्त्वहीन निर्लज्ज के पास अब मैं कैसे जाऊं ?" मेरी मर्यादा है भन्ते, यदि मैं वहां जाती हूं तो वह बार २ मुझे प्रयोगों में डालेगा। यहाँ मैं एक सुसम्पन्न, सुप्रतिष्ठित और ७८ की सेवा में हूं जिसने एक ही बात में पांच सौ अश्व और . ; चीनांशुक दे डाले हैं।"

जयराज ने उसकी स्थिति और यथार्थता का समर्थन किया उसने उठते हुए सुखदास वणिक से कहा—"मित्र, तू यथेष्ट ल. रहा। स्मरण रख, सत्वहीन पुरुषों के पास धन और स्त्री नहीं सकती।"

इतना कह, उस रूप-तेज और कोमलता तथा ... की मोहनी मूर्ति मन में धारण कर जयराज अपने आवास को आए।

: १२६ :

गणदूत

गणदूत गान्धार काप्यक का बिम्बसार श्रेणिक ने बड़ी तड़क-भड़क से स्वागत किया। मागध सीमा में पहुँचते ही राज्य की ओर से प्रत्येक सन्निवेश पर उसके स्वागत एवं सुख-सुविधा के सब सरंजाम जुटे हुए मिलने लगे। राजगृह आने पर पान्थागार में उसे राजार्ह भव्य निवास और सत्कार मिला। मागध संधिवैग्राहिक अभयकुमार विशेष रीति पर गणदूत की व्यवस्था पर नियत हुआ।

जयराज ने मार्ग में काप्यक से मिलने की बिल्कुल चेष्टा नहीं की। परन्तु राजगृह में उसे पान्थागार के अध्यक्ष के माध्यम से राजदूत से परिचय प्राप्त करने तथा उससे मैत्री लाभ करने के अभिनय करने का अच्छा सुअवसर मिल गया। प्रतीहार से घनिष्ठता होने पर कभी सांकेतिक भाषा में और कभी स्पष्ट मिलकर परस्पर विचार-विनिमय करने का सुअवसर उसे मिलने लगा। गणदूत और उसका पूर्वापर सम्बन्ध मागध संधिवैग्राहिक अभयकुमार भी नहीं भांप सका। जयराज कभी अश्व पर सवार होकर और कभी पांव प्यादा नगर, वीथी, हाट में जा जाकर राजगृह की सैन्य, दुर्ग, अस्त्रागार और शस्त्रास्त्र-निर्माण आदि युद्धोद्योगों को देखने तथा विविध मानचित्र, संकेतचित्र और विवरण पत्रिकाएं गूढ़ लिपि में तैयार करने लगा।

प्रतिहारपत्नी का वह क्षणिक परिचय उसकी आसक्ति में परिणत हो गया। उसकी आसक्ति भी बहुत काम आई। वह अन्तःपुर का राई-रत्ती हालचाल ला लाकर जयराज को देने लगी। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सूचनाएं उससे उन्होंने प्राप्त कर लीं। सम्राट् के दरबार में

उपस्थित होकर उपानय उपस्थित करने और सम्राट् से भ
नियत हो गया। काप्यक ने जयराज से मिलकर यह निर्णय कर
सम्राट से गणदूत के रूप में काप्यक नहीं जयराज ही मिलेगा
जोखिम की योजना थी, परन्तु अनिवार्य थी। यह भी तय
सम्राट् की भेंट के तत्काल बाद ही जयराज को राजगृह से
कर देना चाहिए। उसने सब व्यवस्था ठीक-ठाक कर ली,
कौशल तथा इन तीनों सहायकों की सहायता से वह
गणदूत के रूप में सम्राट् के सम्मुख जा उपस्थित हुआ।

कृषक बालक उसके लिये बड़ा सहायक प्रमाणित हुआ।
भर अपने टाघन पर चढ़कर राजगृह के बाहर भीतर यथेष्ट चक्कर
करता, विविध जनों से मिलता, गप्पें करता और बहुत-सी जानने
बातें जयराज को आ बताता था। जयराज. उससे हँसते २ काम
बातें पूछ लेता, युक्ति और चतुराई से अभीष्ट कार्य, बिना ही
प्रकट किए, करा लेता। तरुण कृषक बालक विविध पकान्न और
भोजन पाकर तथा टाघन पर स्वच्छन्द घूमते रहकर अतिप्रसन्न हो
मन से जयराज की सब इच्छाओं और आदेशों की पूर्ति करने लगा।

: १३० :

जयराज का दौत्य

वज्जीगण प्रतिनिधि का भव्य स्वागत करने में मागध सम्राट् ने कुछ भी उठा नहीं रखा। प्रशस्त सभामण्डप यत्न से सुसज्जित किया गया। सम्राट् गंगाजमुनी काम के सिंहासन पर विराजमान हुए। मस्तक पर रत्नजटित जाज्वल्यमान स्वर्ण-मुकट धारण किया। पार्श्व में देश-देश के विविध करद राजा सामन्त और राजपरिजनों की बैठकें बनाई गईं। सम्राट् के ऊपर श्वेत रजतछत्र छुहटा रहा था जिस पर बहुत बड़े २ मोतियों की झालर टँकी थी। सिंहासन के सम्मुख राजश्रामात्य, पुरोहित और धर्माध्यक्ष का आसन था। पीछे महासेनापति आर्य भद्रिक और उदायि अपने सम्पूर्ण सेनाधिपतियां सहित यथास्थान अवस्थित थे। एक ओर गायक और नर्तकियां मङ्गलामुखी वारवनिताएं संगीतसुधा बखेरने को सन्नद्ध खडी थीं। राजा के पीछे चांदी की डांड का छत्र लिये एक खवास खड़ा था। दायें बायें दो यवनी दासियां चँवर ढाल रही थीं। दक्षिण पार्श्व में मुर्छल वाला था। उसके पीछे अन्यान्य दण्डधर, कंचुकी, द्वारपाल आदि यथास्थान नियम से खडे थे। सम्राट् का तेजपूर्ण मुख उस समय मध्यान्ह के सूर्य की भांति देदीप्यमान हो रहा था। बारह लाख मगध-निवासियों के निगम जेट्ठक और अस्सी सहस्त्र गांवों के मुखिया भी इस दरबार में आमंत्रित किए गये थे।

लिच्छवि राजप्रतिनिधि ने अपने अनुरूप भव्य वेश धारण किया था। उनका बहुमूल्य स्वर्ण-तारजटित कौर्जव कौशेय और उत्तम काशिक कौशेय का उत्तरीय अपूर्व था। उनके साथ बहुमूल्य उपानय था जिनमें बीस सैंधव अश्व, पांच भीमकाय हाथी, बहुत से रत्नखचित शस्त्रास्त्र तथा स्वर्ण-तार-ग्रथित कासी वस्त्र थे।

जयराज ने सभास्थल में प्रविष्ट होकर देखा—सम्राट् उदित सूर्य की भांति अचल भाव से अपने मन्त्रियों और स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे हैं। सभास्थल में बिछे हुए रत्न-कम्बलों बहुरंग मेघों के समान भासित हो रही थी। कौशय और जो सुनहरी तार पट्टी से गुँथे थे, ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सूर्य शत-सहस्र आभा धारण करके भूमि पर अवतरित हुई हैं।

जयराज ने सम्राट् के सम्मुख जा राज निष्ठा के नियमानुसार अभिवादन कर वज्जीगणपति का राजपत्र उपस्थित किया, तथा की ओर से उपानय स्वीकार कर कृतार्थ करने का शिष्टाचार किया।

सम्राट् ने राजपत्र राजसम्मान सहित ग्रहण कर तथा उपानय के आभार और संतुष्टि प्रगट कर कहा—"कह आयुष्मान्, मैं तेरा अष्टकुल के सुप्रतिष्ठित वज्जीसंघ का क्या प्रिय कर सकता हूं?"

जयराज ने धीमे किन्तु स्थिर स्वर में कहा—"क्या देव मुझे भाषण करने की अनुमति देते हैं?"

"क्यों नहीं, आयुष्मान् तू कथनीय कह।"

"तो देव, वज्जीगण का अनुरोध है कि सम्राट् आर्य महामात्य को राजगृह में फिर से सुप्रतिष्ठित करें।"

"यह तो मगध-राज्य का अपना प्रश्न है भद्र, वज्जीगण राज्य को अनुरोध का इसमें क्या अधिकार है। अपितु राजदण्ड-प्राप्त बहिष्कृत महामात्य को राज-नियम के विपरीत वज्जीगण-संघ ने प्रश्रय देकर मागध राज्य-संधि-भंग की है, जिसका दायित्व वज्जीगण-संघ पर है।"

"इसके विपरीत देव, वज्जीगण-संघ की यह धारणा है कि सम्राट् की अभिसंधि से महामात्य कूट नीति का अनुसरण कर तूष्णीं युद्ध कर रहे हैं।"

"तो इस धारणा के वज्जीगण-संघ के पास पुष्ट प्रमाण होंगे ?"

"देव, वज्जीगण संघ सम्राट् की मैत्री का मूल्य समझता है। वह बिना प्रमाण कुछ नहीं करता, सम्राट् को मैं विश्वास दिलाता हूँ।"

"आयुष्मान् क्या कहना चाहता है, कह।"

"महाराज वैशाली के अष्टकुल सम्राट् से मैत्री सम्बन्ध स्थिर किया चाहते हैं।"

"परन्तु किस प्रकार भद्र !"

"मागध साम्राज्य के प्रति वैशाली के अष्टकुल के जैसे विचार हैं वह मैं भली भांति जानता हूँ।"

"मैं भी क्या उनसे अवगत हो सकता हूँ भद्र !"

"महाराज, वज्जीगण सम्राट् की किसी भी इच्छा की अवहेलना नहीं करेंगे।"

"तब तो मुझे केवल यही विचार करना है कि मुझे उनसे क्या चाहना चाहिए।"

"सम्राट् यदि स्पष्ट कहें।"

"यह तो व्यर्थ होगा आयुष्मान् !"

"तो क्या मैं ही सम्राट् को वज्जीगण-संघ का संदेश निवेदन करूँ ?"

"यह अधिक उपयुक्त होगा।"

"मैं स्पष्ट कहने के लिये सम्राट् से क्षमा-याचना करता हूँ।"

"कह भद्र, कथनीय कह"

"देव यह जानते हैं कि वह बात अब सार्वजनिक हो चुकी है।"

"आयुष्मान्, तेरा अभिप्राय क्या है ?"

"वह स्पष्ट है, देव यदि अष्टकुल की किसी कुलीन कुमारी से विवाह किया चाहते हैं तो यह सुकर है।"

"प्रस्ताव महत्त्वपूर्ण है, और इससे मेरी प्रतिष्ठा होगी।"

"साथ ही अष्टकुल के वज्जीगणतन्त्र और मगध-साम्राज्य की मैत्री भी बढ़ेगी। किन्तु इसके लिए एक वचन देना होगा।"

"कैसा वचन ?"

"केवल लिच्छवि-कुमार ही का पुत्र भावी मगध-सम्राट्

"केवल यही ? और कुछ तो नहीं ?"

"नहीं देव !"

"आयुष्मान् को कुछ और भी कथनीय है।"

"यत्किंचित्, महाराज देवी अम्बपाली वज्जीगण का विषय हैं, सम्पूर्ण गणजनपद का समान अधिकार है। अष्टकुल उन पर एक का एकाधिकार सहन नहीं करेगा।"

"यह मैं समझ गया, और कह भद्र।"

"और तो कुछ कथनीय नहीं है देव।"

"कुछ भी नहीं !"

"नहीं।"

"अच्छा तो मैं अष्टकुल का प्रस्ताव अस्वीकार करता हूं।"

"क्या आप अष्टकुल की किसी भी कुमारी से विवाह करना अस्वीकार कर रहे हैं ?"

"यह मेरे लिए सौभाग्य की बात थी भद्र, किन्तु मैं इसे अपनी स्वेच्छा और भावना की बलि देकर नहीं स्वीकार कर सकता। रही देवी अम्बपाली की बात। वज्जी-गण के उस धिक्कृत कानून की बात मैं जानता हूँ, परन्तु आयुष्मान्, कोई भी मागध स्त्रीजाति के अधिकारों को हरण करने वाले इस कानून के विरोध में खड्ग हस्त होना आनन्द से स्वीकार करेगा। अच्छा आयुष्मान्, अब विदा। अपने प्रस्ताव के लिए अष्टकुल के वज्जीराज प्रमुखों से मेरी कृतज्ञता अवश्य प्रकट कर देना।"

"सम्राट्, मुझे यह भय है कि इस निर्णय का कोई भयानक परिणाम

न हो, दो पड़ौसी राज्य-व्यवस्थाओं के बीच की सद्भावना न नष्ट हो जाय।"

"आयुष्मान्, महाराज्यों की एक मर्यादा होती है, और सम्राट् की भी। मागध सम्राट् की एक पृथक् मर्यादा है आयुष्मान्, जिसका तू स्वप्न देख रहा है, मेरी अभिलाषा उससे बड़ी है।"

"इससे सम्राट् का यह अभिप्राय तो नहीं है कि सम्राट् अष्टकुलों के स्थापित गणतन्त्र से युद्ध छेड़ चुके।"

"अष्टकुलों के गणपति ने क्या इसी से भयभीत होकर तुझे उत्कोच देकर मेरे पास भेजा है?"

"महाराज, लिच्छवि गणसंघ छत्तीस राज्यों के संघ का केन्द्र है। हम गणशासित भली भांति खड्ग पकड़ना जानते हैं।"

"सुनकर आश्वस्त हुआ भद्र, मैं यह बात स्मरण रक्खूँगा।"

इतना कह कर सम्राट् आसन छोड़ कर उठ खड़े हुये। जयराज क्रोध से तमतमाते हुये मुख से पीछे लौटे। चिन्ता की रेखायें उनके ज़रा के उन्नत ललाट पर अपना प्रभाव डाल रही थीं।

: १३१ :

पलायन

जयराज और काप्यक गान्धार ने पलायन की योजना स्थिर कर ली थी। गण-दूत के वेश में जिस दिन जयराज ने . प्रकट भेंट की, उससे प्रथम ही रात्रि के समय चुपचाप गुप्त ~ एकाकी गान्धार काप्यक महत्त्वपूर्ण चित्र, मान-चित्र, लेख और ' लेकर राजगृह से प्रस्थान कर गये थे। मार्ग में सुरक्षा और ०५ उन्होंने यथावत् कर ली थी। शेष सैनिक और राजपरिच्छद की ०५ यह की गई थी कि वह प्रकट में प्रस्थान का प्रदर्शन तो करें; राजगृह के बाहर जाते ही वे विघटित हो जायँ तथा छद्मवेश में . लौट आवें और राजगृह में गुप्त रूप से रहें। इस योजना के का., वैशाली के गण-दूत और उसकी छोटी-सी सैन्य तथा सेव~ कहां लोप हो गई इसका किसी को कुछ पता ही नहीं लगा। ., ~ काप्यक को भी कोई नहीं पा सका।

जयराज सम्राट् से मिलने के तत्क्षण बाद अपने डेरे पर गए ही नहीं वे तुरन्त ही सब की आंख बचा राजगृह से चल दिये। पूर्व-योजना के अनुसार उनका वह कृषक-बालक मित्र उनसे पहिले ही जा चुका था और राजगृह से आठ योजन दूर एक चैत्य में उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। इस प्रकार जयराज और उनके संगी-साथी पूर्व-नियोजित योजना से सकुशल राजगृह से निकल गये।

अभयकुमार मोटी बुद्धि का तथा कुछ दीर्घसूत्री आदमी था। वह सैनिक प्रथम था, राजनीतिज्ञ उसके बाद। वह राजकुमार था। अत: अनुशासित भी न था। उससे इस अगत्य के ' ~

: १३२ :

गुह्य निवेदन

एकान्त पाते ही मागध सन्धिवैग्राहिक अभयकुमार ने कहा—

"देव, वंचना हुई है।"

"कैसी, भणे !"

"यह गणदूत नहीं, पारग्रामिक है, अथवा वह गणदूत वेशी है।"

"कैसे भद्र !"

"देव, जो गणदूत बनकर पान्थागार में राज-अतिथि बना हुआ उसे मैं भली भांति पहचानता हूँ, उसने सभा में सम्राट् से भेंट की है।"

"तब किसने की ?"

"एक अन्य पुरुष ने, जो पान्थाहार से पृथक् एक प्रतीहार के टिका हुआ था।"

"क्या इसकी कोई सूचना महामात्य ने नहीं भेजी थी ?"

"मुझे आर्य महामात्य की यही सूचना मिली थी कि प्रभञ्जन अगरय की सूचना ला रहा है, परन्तु प्रभञ्जन का कोई पता ही नहीं लगता, न जाने वह कहां लोप हो गया है। यह तो परिज्ञात है, कि उसने इस पारग्रामिक का अनुसरण किया था।"

"यह अतिभयानक बात है। भणे, इस पारग्रामिक और उस छद्मवेशी गणदूत दोनों को वन्दी कर लो।"

"किन्तु देव, दोनों ही ने राजगृह से चुपचाप प्रस्थान कर दिया है।"

सम्राट् ने अत्यन्त कुपित होकर कहा—

"तो भणे, मैं अभी नगरपाल और सीमान्त-रक्षक को देखा चाहता हूं। और तुझे आदेश देता हूं कि इस छद्म-वेशी का अनुसरण कर, और इसे जीवित या मृत जिस प्रकार सम्भव हो मेरे सम्मुख उपस्थित कर। तू भणे, अभी प्रयाण कर।"

"अभयकुमार सम्राट् को अभिवादन कर तुरन्त चल दिया। सम्राट् चिन्तित-भाव से अपने कक्ष में टहलने लगे। कुछ ही काल में नगरपाल और सीमान्त-रक्षक ने आकर सम्राट् को अभिवादन किया। सम्राट् ने क्रुद्ध होकर पूछा—

"भणे, वैशाली के गणदूत का कैसा समाचार है?"

"देव, उसने दो दण्ड रात्रि रहते राजगृह से प्रस्थान कर दिया, अब उसका कोई पता ही नहीं लग रहा है।

"उसे जाने की अनुमति किसने दी?"

"देव, इसका निषेध नहीं था। इसी से.. ..."

"और वह पारग्रामिक?"

"देव, उसके सम्बन्ध में तो हमें कुछ सूचना ही नहीं है।"

"क्या मागध-व्यवस्था अब ऐसे ही राजपुरुष करेंगे। दोनों ही मृत जीवित, जिस अवस्था में हों, बन्दी करके मेरे सम्मुख लाये जायं।" प्रत्येक मूल्य पर।" सम्राट् ने सीमान्त-रक्षक को आदेश दिया।

दोनों राजपुरुष घबराकर राजाज्ञा पालन करने को भागे।

: १३३ :

घातक द्वन्द-युद्ध

जयराज ने समझ लिया कि अब उनके और अ ' कुम एक घातक द्वन्द्व-युद्ध होना अनिवार्य है। परन्तु उन्हें नी यात्रा झटपट समाप्त कर डालनी थी। उन्होंने मुस्करा कर कृषक तरुण से कहा—"मित्र, टट्टू की चाल का जौहर दि.। सुअवसर है, हमें शीघ्र से शीघ्र यहां से भाग चलना चाहिए।

"यही अच्छा है"—युवक ने बहुत सोचने विचारने की अ. साथी के मत पर निर्भर होकर कहा।

दोनों ने अपने २ अश्वों को एड़ दी। जयराज ने निश्चय था कि जब तक वह सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुंच जायगे, राह मे नही करेंगे। उनके कंचुक के भीतर बहुमूल्य हलका लौह वर्म उष्णीष के नीचे भी झिल-मिल टोप छिपा था। बहुमूल्य ले मान-चित्रों को उन्होंने यत्न से अपने वक्षःस्थल पर लौह वर्म के नी लिया था और उन सब की एक एक प्रति सांकेतिक भाषा में तैया साथी के कंचुक में सी दी थी।

दोनों के अश्व तीव्र गति से बढ चले। युवक अपने अश्व-सं की सब कला साथी को दिखाना चाहता था, तथा अपने पार्वत्य टट्ट जो वह बढ़ चढ़ कर डींग हांक चुका था उससे प्रमाणित किया च था, उसीसे वह साथी के साथ बराबर उडा जा रहा था। उसकी इ साथी से वार्तालाप करने की थी। परन्तु जयराज गम्भीर प्रश्नों विचार करते जा रहे थे। द्रुत गति से दौड़ते हुए अश्व पर भी गम्भीर विषयों पर विचार कर सकता है, टेढ़ी मेढ़ी राजनीति की

चालें सोच सकता है। सो यहां सन्धिवैग्राहिक जयराज भागते २ यही सब सोचते तथा गहरी से गहरी योजना बनाते जा रहे थे। वह प्रत्येक बात की तह तक पहुंचने के लिए अब तक की पूर्वापर सम्बन्धित सभी बातों की तुलना, विवेचना और आरोप की दृष्टि से देखने के लिये अपने मस्तिष्क में विचार स्थिर कर उन्होंने मन ही मन यह स्वीकार कर लिया कि सम्राट् अद्भुत और तेजवान् पुरुष है। उन्हें सरलता से मूर्ख नहीं बनाया जा सकता है। फिर भी सम्राट् की अम्बपाली के प्रति आसक्ति एवं अपने ही जीवन में उनके शून्यपने को भी वह समझ गये थे। उन्होंने यह समझ लिया था—युद्ध तो अनिवार्य है ही, वह भी अनति-विलम्ब। परन्तु मूल मुद्दा यह है, कि देवी अम्बपाली ही का आवास एक छिद्र होगा जहाँ से मगध-साम्राज्य को विजय किया जा सकता है। आर्य वर्षकार की दुर्धर्ष कुटिल राजनीति के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करके आर्य भद्रिक के प्रबल पराक्रम को नत किया जा सकता है। इसी कूट नीति छिद्र पर जयराज ने अपनी दृष्टि केन्द्रित की। उन्होंने मन ही मन कहा—"सम्राट् एक ऐसी उलझी हुई गुत्थी है जो जीवन में नहीं सुलझेगी। इसी से सम्राट् को पराभव होगा तथा ब्राह्मण वर्षकार की बुद्धि और भद्रिक का शौर्य कुछ भी काम न आयगा।'

उसने बड़े ध्यान से देखा था कि सम्पूर्ण मागध जनपद सम्पन्न और निश्चिन्त है। उसे यहां वह युद्ध की विभीषिका नहीं दिखाई दी थी जो वैशाली में थी। वह अत्यन्त आश्चर्य से यह देख चुके थे कि वहां जनपद में बेचैनी के कोई चिन्ह न थे। कृषक अपने हल बैल लिए खेत की ओर आराम से जा रहे थे। रंगीन वस्त्रों से सुसज्जित ग्रामीण मागध बालाएँ छोटे २ सुडौल घड़े सिर पर रक्खे आती-जाती बड़ी भली लग रही थीं। वे गाने गाती जाती थीं, जिनमें यौवन-जीवन-आनन्द, आशा और मिलन-सुख के मोहक चित्र चित्रित किए हुए थे।

जंगल था। दाहिनी ओर एक टीला था—उसने पीछे मुड़कर देखा उसी टीले के ऊपर तेरह अश्वारोही एक पंक्ति में खड़े हैं। वे उससे कोई दस धनुष के अन्तर पर थे। इनदोनों को देखते ही तेरहों ने तीर की भांति अश्व फेंके। जयराज ने साथी से कहा—'सावधान हो जा मित्र, शत्रु आ पहुचे।' इसी समय बाणों की एक बौछार उनके इधर उधर होकर पड़ी। जयराज ने कहा—मित्र, साहस करना होगा, भागना व्यर्थ है, सामने समतल मैदान है और कोई आड़ भी नहीं है। हमारे अश्व थके हुए हैं, तू दाहिनी ओर को वक्रगति से टट्टू चला, जिससे शत्रु बाण लक्ष्य न कर सकें और अवसर पाते ही सुसराल के गांव में भाग जाना। मेरे लिए रुकना नहीं।"

"किन्तु भन्ते आप ?"

"मेरी चिन्ता नहीं मित्र, तेरा श्वसुर ग्राम निकट है, वहां से समय पर सहायता ला सके तो अच्छा है।"

"वृक्षों के उस झुरमुट के उस ओर ही वह ग्राम है, जीवित पहुंच सका तो दो दण्ड में सहायता ला सकता हूं। मेरे दोनों श्यालक उत्तम योद्धा हैं।"

इसी बीच बाणों की एक और बौछार आई। जयराज ने साथी को दाहिनी ओर वक्रगति से बढ़ने का आदेश दे स्वयं बाईं ओर को तिरछा अश्व चलाया। शत्रु और निकट आगये। वे उन्हें घेरने के लिए फैल गये और निरन्तर बाण बरसाने लगे। जयराजने एक बार साथी को खेतों में जाते देखा और स्वयं चक्राकार अश्व घुमाने लगे। शत्रु अब एक धनुष के अन्तर से बाण बरसाने लगे। जयराज ने अश्व की बागछोड़ दी और फिसल कर अश्व से नीचे आकर उसके पेट से चिपक गये। और अपना सिर घोडे के वक्ष में छिपा लिया, तथा एक हाथ में खड्ग और दूसरे में कमर दृढ़ता से पकड़ ली।

शत्रुओं ने साथी की परवाह न कर उन्हें घेर लिया। एक ने चिल्ला कर कहा—"वह आहत हुआ है, उसे बाँध लो, जीवित बांध लो। परन्तु पहिले देखो मर तो नहीं गया।"

तीन अश्वारोही हाथ में खड्ग लिए उसके निकट आ गये। जयराज ने अब अपनी निश्चित मृत्यु समझ ली। परन्तु आत्म-रक्षा के लिए तनिक भी नहीं हिले। वे उनके अत्यन्त निकट आ गए। जयराज ने एक के पार्श्व में कटार घुसेड़ दी, दूसरे के कण्ठ में उनका खड्ग विद्युत्गति से घुस गया। दोनो गिर कर चिल्लाने लगे। तीसरा दूर हट गया। इसी समय अवसर पा जयराज ने फिर अश्व फेंका। शत्रु क्षण भर के लिए स्तम्भित हो गये। पर दूसरे ही क्षण वे 'लेना-लेना' करके उनके पीछे भागे।

अन्धकार होने लगा था। दूर वृक्षों के झुरमुट की ओट में सूर्य अस्त हो रहा था। जयराज ने एक बार उधर दृष्टि डाली। जब तक वे धनुषों पर बाण सन्धान करें। वह पलट कर दुर्धर्ष वेग से शत्रु पर टूट पड़े। दो को उन्होंने खड्ग से दो टूक कर डाला। एक ने आगे बढ़कर उनके मोढे पर करारा वार किया। अभयकुमार को पहचान कर जयराज आहत होने पर भी उस पर टूट पड़े। दो सैनिक पार्श्व मे झपटे, एक को उन्होंने बांएँ हाथ की कटार से आहत किया। दूसरा पैंतरा बदल कर पीछे हट गया। इसी समय जयराज ने अभय-कुमार के सिर पर एक भरपूर हाथ खड्ग का मारा। वह मूर्छित होकर धड़ाम से धरती पर गिर गया।

अब शत्रु सात थे। नायक के मूर्छित होने से वे घबरा गये थे, परन्तु जयराज भी अकेले तथा आहत थे। उनके मोढ़े से रक्त झर-झर बह रहा था। वे लड़ते २ ग्राम को लक्ष्य कर बढने लगे। इसी समय अभयकुमार की मूर्छा भंग गई। उसने चिल्ला कर कहा—"मारो, उसे मार डालो, देखो बच कर भागने न पावे।" शत्रुओं ने फिर उन्हें घेर लिया।

अब वे चौमुखा वार करके खड्ग चला रहे थे। पर क्षण २ विपत्ति की आशंका थी। अवसर पा उन्होंने एक शत्रु को और धराशायी किया।

इसी समय ग्राम की ओर से चार अश्वारोही अश्व फेंकते आते उन्होंने देखे। उन्हें देख जयराज उत्साहित हो खड्ग चलाने लगे। शत्रु घातक वार कर रहे थे। कृषक तरुण ने कहा—"हम आ पहुंचे भन्ते राजकुमार" और साथियों को लेकर वह शत्रुओं पर टूट पड़ा। सब शत्रु काट डाले गये। अभयकुमार को बांध लिया गया। सब कोई ग्राम की ओर चले। इस समय रात एक दण्ड व्यतीत हो गई थी। ग्राम के निकट पहुँचकर जयराज ने कृषक-युवक और उसके साथियों से कहा—"मित्रो, आपने मेरे प्राणों की रक्षा की है, इसके लिये तुम्हारा आभार ले जा रहा हूं, परन्तु मुझे एक अच्छा अश्व दो।"

"यह क्या भन्ते! क्या आप आज रात विश्राम नहीं करेंगे?"

"नहीं मित्र, मुझे जाना होगा"—इतना कह उसे एक ओर ले जाकर स्वर्ण की एक भारी थैली उसके हाथ में रखकर कहा—"मित्र, तू रात भर यहां रह कर भोर होते ही वैशाली की राह पकड़ना और यह मुद्रा किसी भी प्रहरी को देना वे तुझे मुझ तक पहुँचा देंगे।"

"किन्तु आप आहत हैं भन्ते!"

"परन्तु मित्र, कार्य गुरुतर है।"

"तो मैं भी साथ हूँ।"

"नहीं मित्र, रात्रि भर ठहर कर प्रातः चलना; पर राह में अटकना नहीं, तेरे पास मेरी थाती है।"

"समझ गया भन्ते, किन्तु यह स्वर्ण?"

जयराज ने हँस कर कहा—"संकोच न कर मित्र, वधूटी का कोई आभूषण बनवाना, ला अश्व दे।

युवक ने ऊँची रास का अश्व श्यालक से दिला दिया। फिर उसने आंखों में आंसू भरकर कहा—

: १३४ :

चण्ड भद्रिक

प्रबल-प्रताप मगध सेनापति चण्ड-भद्रिक के शौर्य, तेज और समर-कौशल की गाथाएं उन दिनों सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में गाई जाती थीं। उस युग में उनके जैसा धीर, वीर, तेजस्वी और दूरदर्शी सेनापति दूसरा भारत में न था। उन्होंने वैशाली के महत्त्व और सत्ता पर भली भांति विचार करके भगीरथ प्रयत्न से मागधी सेना का सर्वथा नए ढंग पर संगठन किया था। चम्पा, कोशल और मथुरा अवन्ती के अभियान में जो मागधी सेना का क्षय और हानि हो गई थी, वह उन्होंने सब बात की बात में पूरी कर ली थी, और अब राजगृह में घर २ में वैशाली अभियान की ही चर्चा थी। लोग आमात्य वर्षकार के असाधारण निष्कासन को भी इस समय भूल गए थे।

एक दिन सम्राट् और सेनापति ने अति गोपनीय मन्त्रणा की।

सम्राट् ने कहा—"आर्य भद्रिक, यदि शिशुनाग-वंश के मस्तक पर चक्रवर्ती छत्र नहीं आरोपित हुआ तो इस वंश में बिम्बसार का जन्म ही लेना व्यर्थ हुआ, और आपका मगध-सेना-नायक होना भी।"

सेनापति ने हँस कर कहा—

"सो तो है देव, देखिये पृथ्वी पर हिमालय से दक्षिण समुद्र पर्यन्त अर्थात् उत्तर-दक्षिण में हिमालय और समुद्र के बीच का, तथा एक सहस्र योजन तिरछा, अर्थात् पूर्व-पश्चिम की ओर एक सहस्र योजन विस्तार वाला, पूर्व-पश्चिम समुद्र की सीमा से युक्त देश चक्रवर्ती क्षेत्र कहाता है। इस चक्रवर्ती क्षेत्र में आरण्य, ग्राम्य, पार्वत, औदक, भौम, सम विषम और जो भूभाग हैं उनका निरूपण इस मानचित्र में देखिए;

और विचार कीजिये कि अब करणीय क्या है। प्रथम उत्तर-दक्षिण प्रदेश पर दृष्टि डालिये। आमात्य ने देव की अभिलाषा को चरितार्थ करने को ही यह योजना बनाई थी कि दक्षिणस मुद्र को मगध-साम्राज्य यदि स्पर्श करे तो उसे सर्वप्रथम चण्ड-प्रद्योत अवन्तिनरेश और उसके मित्र मथुरापति अवन्ति वर्मन का पराभव करना चाहिये। रोरुक सौवीर पर भी अधिकार होना चाहिये। परन्तु देव का आग्रह वैशाली अभियान पर ही है और आमात्य विनियोजित हैं तब अभी वैशाली से ही निबट लिया जाय; परन्तु देव से एक निवेदन करूंगा। यदि वैशाली के गण-तन्त्र को भिन्न २ करना है तो उसके संगी साथी मल्ल-शाक्य, काशी कोलिय, और दूसरे गणसंघों के गुट्ट को भी आमूल तोड़ फोड देना होगा, तथा मगध-राजधानी राजगृह से हटा कर या तो वैशाली ही को चक्र-वर्ती क्षेत्र का केन्द्र बनाना होगा या फिर पाटली ग्राम को मागध राज-धानी बनाने का सौभाग्य प्रदान करना होगा। बिना ऐसा किये इन केन्द्रस्थ गणगुट्टों को हम तोड फोड कर आमूल नष्ट नहीं कर सकते। क्योंकि इसके लिये मात्र सामरिक चेतना ही यथेष्ट नहीं है। वहां के जन-पद की मनोवृत्ति बदलने की भी बात है; क्योंकि आर्यों की भांति वहां भी छिद्र हैं। मुख्य छिद्र यह कि इन गणराज्यों में गणप्रतिनिधि लिच्छवि, मल्ल, शाक्य सभी ने यह नियम बनाया है कि राज्य की सारी व्यवस्था अपने हाथ में रखी है। इनके राज्यों में आर्यों को कोई अधिकार ही नहीं है। इससे ब्राह्मण, विस और सेट्ठि सभी जन उनसे उदासीन हैं। विग्रह छिडने पर इन गणों को, जहां युद्ध में उलझना पड़ेगा, वहां इनकी रक्षा का भार भी ढोना होगा, और ये लोग युद्ध में कुछ भी सहायता अपने गण की नहीं करेंगे।

"तो यह छिद्र साधारण नहीं आर्य सेनापति, इसी से हम विजयी होंगे।

"परन्तु सेना से नहीं, संस्कृति से। इसीलिये हमें उन्हीं के बीच या

निरन्तर मोर्चे पर भेजते रहने की सारी व्यवस्था यही सेना करेगी। आवश्यकता होने पर सम्मुख-युद्ध भी कर सकेगी।

"दूसरी सेना 'भृतक-बल' है। इसमें वे ही योद्धा हैं जो केवल वेतन लेकर युद्ध करते हैं। शत्रु के पास भृतबल बहुत कम है और अभी हमें भिन्न शक्तियों से प्राप्त सहायता मिलने में विलम्ब भी है अतः यही सैन्य कठिन मोर्चों पर आगे बढ़कर कार्य करेगी। इसी सेना को शत्रु के यातायात अवरोध पर भी लगाया जायगा।

"तीसरा 'श्रेणीबल' है जो जनपद में अपना २ कार्य करने वाले शस्त्रास्त्र प्रयोग में निपुण पुरुषों की तैयार की गई है। शत्रु के पास भी श्रेणीबल यथेष्ट है। शत्रु से मन्त्र-युद्ध भी होगा और प्रकाश-युद्ध भी। ऐसी अवस्था में श्रेणीबल से हमें बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

"चौथा 'मित्रबल' है। मित्रबल हमारे पास बहुत है। सत्ताईस मित्रराज्यों से हमें मित्रबल प्राप्त होगा। हम उसे मूलस्थान की रक्षा में भी लगा सकते हैं और शत्रु के साथ युद्ध करने भी ले जा सकते हैं। हमें बहुत कम यात्रा करनी है। वैशाली में अब तूष्णीं युद्ध के स्थान पर व्यायाम-युद्ध ही मुख्यतया होगा, इसलिए शत्रु की मित्र-सेना या आटविक सेना को जो कि उसके नगर में आकर ठहरी हुई होगी, पहिले अपनी मित्र-सेना के साथ लड़ा कर फिर अपनी सेना के साथ लड़ाऊंगा।

"इसके अतिरिक्त देव हमारे पास विजित-शत्रु-सैन्य भी है। पहिले मैं इसी को शत्रु से भिड़ाऊंगा। दोनों में से जिस भी सैन्य का विनाश होगा, हमारा लाभ ही लाभ है। जैसे कुत्ते और सुअर के परस्पर लड़ने से दोनों में से किसी भी एक के मर जाने पर चांडाल का लाभ होता है उसी प्रकार, देव!"

इतना कह कर मगध महाबलाधिकृत भद्रिक हँस दिए। सम्राट् भी हँस पड़े। उन्होंने कहा—"यह तो ठीक है, आर्य सेनापति, परन्तु हमारी आटविक सैन्य की व्यवस्था सर्वोत्तम होनी चाहिए।"

"निस्संदेह देव, मेरे चर भिन्न २ रूप में शत्रु-भूमि में फैले हुए वहां का राई-रत्ती मान-चित्र तैयार करने में जुटे हैं। वन, वीथी, उपत्यका, नद, ह्रद, शृंग जहां जो है, उसका ठीक २ चित्रण कर रहे हैं। कहां कहां किस २ युद्धोपयोगी वस्तुओं एवं व्यवहार्य पदार्थों का चय, उत्पादन, गोपन है, देख-भाल रहे हैं। ज्यों-ज्यों उनसे सूचनाएँ मिलती जा रही हैं, हमारी आटविक सेना शिक्षित, अभिज्ञात होती जाती है। वह भली भांति सब मार्गों को जान गई है, उत्तम निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शकों, सूत्रकों का सहयोग उसे प्राप्त है। शत्रु-भूमि में कूट युद्ध पलायन-युद्ध और सम-युद्ध करने की उसे पूरी शिक्षा दी गई है। वह सब भांति आयुधों से सुसज्जित है। जैसे एक बिल्वफल दूसरे बिल्वफल के द्वारा टकरा कर फोड दिया जाता है, उसी भांति हम आटविक बल को ले युद्ध प्रारम्भ कर देंगे। और शत्रु के तृण, काष्ठ आदि छोटे २ पदार्थों तक को उस तक न पहुंचने देंगे। बीच ही में नष्ट कर डालेंगे।"

"सुनकर संतुष्ट हुआ, आर्य सेनापति, और भी कुछ ज्ञातव्य है?"

"हां देव, हमने एक औत्सुक्य-सैन्य का भी संगठन किया है। यह एक नेता-रहित सेना है। इसमें भिन्न २ देशों के रहनेवाले जन हैं। इस का काम शत्रु के देश में केवल लूट-मार करना है। इसमें भरती होने के लिए किसी आज्ञा या अनुशासन की आवश्यकता नहीं है। नगर-जनपद को लूटना, आग लगाना, खेतों और बाग बगीचों को नष्ट करना, मार्गों और यातायात-साधनों को भंग करना तथा शत्रु के सम्पूर्ण राज्य में अव्यवस्था फैलाना ही इस सेना का कार्य होगा। इसके हमने दो भाग किए हैं—एक भेद्य, दूसरा अभेद्य। प्रतिदिन भत्ता लेकर अथवा मासिक हिरण्य नियमित-वेतन के रूप में लेकर शत्रु-देश में लूट-मार मचाने वाला भेद्य है। परन्तु दूसरी औत्साहिक सैन्य में विश्वस्त भागधजन ही है। यह अधिक सुगठित और सुसम्पन्न है। इस प्रकार देव हमने यह सात प्रकार का बल संगठन किया है।"

: १३५ :

दूसरी मोहन-मन्त्रणा

महाबलाधिकृत सुमन के अधिकरण में मोहन गृह में वज्जीगण की समर-मन्त्रणा हुई। सन्धिविग्राहिक जयराज ने अपना विवरण सुनाते हुए कहा—"यद्यपि यह सत्य है कि मगध-सम्राट् के पास उत्तम सेनापति और अच्छे सैनिक नहीं हैं तथा उसकी सेना में बहुत छिद्र है, फिर भी आर्य वर्षकार का तूष्णींयुद्ध और आर्य चण्ड भद्रिक की व्यूह-योजना अद्वितीय है। हम यदि तनिक भी असावधान हुए तो हमारा पतन निश्चित है और हमारे साथ उत्तरपूर्वीय भारत के सब गणराज्य नष्ट हो जायेंगे। यह स्पष्ट है कि मगध-सम्राट् की सम्पूर्ण शक्ति इन दोनों ब्राह्मणों के हाथ में है और यही मागध राज्यसत्ता को साम्राज्य के रूप में संगठित कर रहे है जो आर्यों की पुरानी कुत्सित राज्य-व्यवस्था है। आर्यों के साम्राज्य इसलिये सफल हुए कि उस में आर्यों के शीर्ष-स्थानीय क्षत्रिय और ब्राह्मण एकीभूत हो गये थे, और निरीह प्रजावर्गीय संकर जातियों का कोई आश्रय ही न था, परन्तु अब वह बात नहीं है। शिशुनाग-वंश आर्य नहीं है, वह अपने ही-सवर्गीय जनों पर सम्राट् होकर रह नहीं सकता। ये आर्य ब्राह्मण—जो उस मूर्ख राजा की आड़ में आर्यों के ढांचे पर साम्राज्य गांठ रहे हैं-वह अन्ततः विफल होगा। परन्तु अभी यदि वह वैशाली को आक्रान्त करता है और उधर प्रद्योत का भी पतन हो जाता है तो हमारी सम्पूर्ण गण-भावना नष्ट हो जायगी, और सम्पूर्ण जनपद फिर आर्यों के दासत्व में फँस जायगा अथवा साम्राज्यवाद के मद में अन्धे बिम्बसार जैसे जाति-घातक ही उनके अधिपति बन बैठेंगे।"

"यह अत्यंत भयानक बात होगी, आयुष्मान्, सम्पूर्ण जनपद के मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिये हमें लड़ना और जय पाना होगा।"—सेनाधिनायक सुमन ने कहा।

"किन्तु सेनापति, यदि सत्य देखा जाय, तो हम गणराज्यों के विधाता भी तो ठीक २ जनपद के मानवीय अधिकारों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे। हमने भी तो अपने गणराज्यो की राज्य-व्यवस्था में आर्यों का बहिष्कार कर रखा है।"—सिंह ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"यह है, परन्तु इसके गम्भीर कारण हैं, तथा इस समय हमें केवल मूल विषय पर विचार करना है, आयुष्मान्। अब हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारे भय के दो मध्य-बिन्दु हैं, एक ब्राह्मण वर्षकार और दूसरे चण्ड भद्रिक।"

"एक तीसरा भय और है"

"वह कौन?"

"सेनापति सोमप्रभ। वह एक मागध तरुण है, जिसका स्थैर्य, रण-पाण्डित्य और विलक्षण प्रतिभा पर तक्षशिला के आचार्य और छात्र दोनों ही स्पर्धा करते रहे हैं। सम्भवतः वह मागध तरुण मगध-सेना का संचालन करेगा।"—जयराज ने कहा।

"यह तरुण कौन है भद्र?"

"उसका परिचय रहस्यपूर्ण है, सम्भवतः एक ही व्यक्ति उसका परिचय जानता है पर उसने होठ सी रखे हैं।"

"कौन व्यक्ति?"

"आर्या मातङ्गी"

"यह तो बड़ी अद्भुत बात है। तब फिर सम्राट् ने इस अज्ञात कुलशील को इतना भारी दायित्व कैसे दे रखा है?"

"चम्पा-युद्ध में उसने असाधारण रण-पाण्डित्य प्रदर्शन करके आर्य भद्रिक की प्रतिष्ठा बचाई थी।"

"तो क्या सम्राट् ने उसे सेनापति अभिषिक्त किया है?"

"नहीं, मगध-सेनापति भद्र चण्डिक ही हैं।"

"भद्रिक के शौर्य से मैं अविदित नहीं हूं, भद्रिक मेरा सह-सखा है, मैं उसके सम्मुख असहाय हूँ, वह महाप्राण पुरुष है, फिर तू भद्र ऐसा क्यों कहता है कि श्रेणिक के पास अच्छे सेनापति नहीं हैं।" —सेनापति सुमन ने कहा।

"भन्ते सेनापति, आर्य भद्रिक की निष्ठा निस्संदेह ऐसी ही है, परन्तु मगध में उनकी सी चली होती तो मगध-सेना अजेय होती। परन्तु सम्राट् सदैव उन पर सशंक रहते हैं, वे समझते हैं कि कहीं चण्डभद्रिक उन्हें मार कर सम्राट् न हो जाय। जैसे अवन्ती-आमात्य ने राजा को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना दिया।"

"यही सत्य है आयुष्मान्, मैंने उसका कौशल देखा है। परन्तु आयुष्मन् सोमप्रभ कहां है? कुछ ज्ञात हुआ?"

"मगध में तो यही सुना है कि वह देश-विदेश में घूम कर ज्ञानार्जन कर रहा है।"

"मगध में जो सब कहते हैं वह तो सुना, परन्तु सन्धिविग्राहिक जयराज क्या कहते हैं?"

जयराज हँस दिये। उन्होंने धीरे से कहा—"जयराज कहता है, वह सशरीर, सदलबल वैशाली में उपस्थित है।"

जयराज की यह बात सुन कर सब अवाक् होकर उसका मुँह ताकने लगे। सेनापति ने कहा—

"यह क्या कहता है आयुष्मान्।"

"सिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'ऐसा प्रबल शत्रु दलबल सहित वैशाली में उपस्थित है और हमें इसका ज्ञान ही नहीं है!"

"ज्ञान न होता तो कहता कैसे?"

"वह है कहां?"

और नये दुर्ग निर्माण किये हैं। इन दुर्गों में साल के मोटे खम्भों के तिहरे प्राकार हैं। प्रत्येक दुर्ग में तीन से सात सहस्र तक शिक्षित भट पादातिक, अश्वारोही, रथी और गजारोही हैं। अन्न, जल और अन्य सामग्री इतनी संचित है कि दुर्गवासी आवश्यकता होने पर एक वर्ष तक उससे काम चला सकते हैं।"

यह विवरण सुनकर सेनाध्यक्ष सुमन ने कहा—

"इस व्यवस्था को देखते तो भद्रिक की जितनी प्रशंसा की जाय—थोड़ी है।"

सिंह ने कहा—"हुआ, आगे कहो।"

जयराज ने कहा—"उसने एक सुव्यवस्थित नौसेना भी तैयार कर ली है। इसमें बीस सहस्र नौकाएँ हैं, जो तीन प्रकार की हैं। एक दीर्घा, जिनकी लम्बाई साठ हाथ और चौड़ाई चालीस हाथ है। ये हाथियों और अश्वों एवं रथों को स्थानान्तरित करती हैं। इनमें से प्रत्येक में सोलह नाविक और पचास धनुर्धर बैठ सकते हैं। दूसरी चपला, जो शीघ्र चलने वाली हलकी परन्तु अच्छी सुदृढ है। इसमें ८ नाविक और २० धनु-खड्ग-शूलधारी बैठ सकते हैं। आर्य भद्रिक की योजना यह है कि विजय का पूरा दायित्व नौवाहिनी पर ही केन्द्रित रहे। सम्राट् का कोष निस्संदेह रिक्त था पर सम्राट् ने उसे परिपूर्ण कर लिया है। अनेक श्रेष्ठियों ने उसे भर दिया है। शस्त्र और सैन्य भी हमसे अधिक तथा उत्तम है। अथच हमारी तैयारियों का उसे यथेष्ट ज्ञान है। इसमें उसके गुप्तचर श्रमण ब्राह्मणों के रूप में जो बिखरे हुये हैं, बहुत सहायता कर रहे हैं। अंग को विजय कर लेने पर वहां के कूट-दन्त जैसे बड़े बड़े महाशाल ब्राह्मणों को उसने सम्मान और जागीर देकर अपने पक्ष में कर लिया है। और भद्दिया के मेंढक सेट्ठि की भांति चम्पा के सम्पूर्ण वणिक् भी श्रेणिक बिम्बसार का यशोगान करते हैं, उन्होंने उसे सत्रह कोटिभार सुवर्ण दिया है। आर्य भद्रिक ने वहां

जो व्यवस्था की है, उससे सभी चम्पा-वासी प्रसन्न हैं। उधर उसने अपने को श्रमण गौतम का अनुयायी प्रसिद्ध कर दिया है। गत बार जब श्रमण गौतम राजगृह गये तो वह निरभिमान हो बारह लाख मगध-निवासी ब्राह्मणों और गृहस्थों तथा अस्सी सहस्र गांवों के मुखियों को लेकर गृद्धकूट पर पहुँचा। वहां से गौतम को अपने राजोद्यान वेणुवन में ले आया और वह उद्यान उसने गौतम की भेंट कर दिया।

"बिम्बसार इस प्रकार अपने को बड़ा धार्मिक श्रद्धालु और निरभिमान प्रकट करके प्रशंसा का पात्र हो रहा है। प्रजा में उसका नाम होता जा रहा है। इन सब कारणों से हम कह सकते हैं कि आज मगध-सम्राट् युद्ध करने के लिए सर्वापेक्षा अधिक सक्षम है।"

जयराज इतना कह कर चुप हुए। फिर उन्होंने कहा—"उनकी कुछ संधियां भी हैं जिनसे हम लाभ उठा सकते हैं। इनमें सबसे अधिक यह कि हममें से प्रत्येक लड़ेगा अपने संघ की स्वतन्त्रता के लिये, परंतु मागधी सेना के सब सैनिक आर्य रज्जुल के सैनिकों की भांति नौकरी के लिये लड़ते हैं।

"यह सत्य है कि सम्राट् ने चम्पा से प्राप्त राज-कोष एवं चम्पा के सेट्ठियों से प्राप्त सत्रह कोटि भार सुवर्ण प्राप्त करके उसने कोष परिपूर्ण कर लिया है। अग की लूट-मार का माल भी बहुत है। उसकी सेना भी हमसे अधिक है, परंतु उसकी बहुत-सी सेना उसके बिखरे हुए तथा अरक्षित साम्राज्य की सीमाओं पर फैली हुई है। अभी अङ्ग की आग भी दबी नहीं है। वहां भी उसकी बहुत-सी सेना फँसी हुई है। उधर अवन्ती और मथुरा का भय सर्वथा निर्मूल नहीं हुआ है और सबसे अधिक यह कि मगध का प्राण वर्षकार हमारे हाथों में है। हमें उसकी प्रत्येक चाल और गतिविधि से परिचित होना चाहिये। हमारी सेना के लिच्छवि सैनिक भी यह समझते हैं कि गण-शासन उनका अपना सुख-स्वातन्त्र्य से भरपूर शासन है, यहां उनसे न तो मनमाना

कर लिया जाता है न उनकी सुन्दरी कन्यायें बल-पूर्वक हरण महल में डाल दी जाती हैं। न उनके अच्छे रथ और उनके घोड़े जाते हैं। वज्जी के ब्राह्मण जेष्ठों और गृहपति निगमों से हमें स्वेच्छा सहयोग मिलने की आशा है।"

सब विवरण सुनकर सेनापति सिंह ने कहा—"मित्र जयराज ने कुछ वक्तव्य दिया वह आपने सुना। अब मैं आपको अपनी सेना की स्थिति बताता हूं। हमने मगधों के नदी-तीर के प्रत्येक दुर्ग के सम्मुख ... दो दुर्ग तैयार किये हैं। मही-तट पर तो हमने विशेषतया दुर्गों का तांता बांध दिया है। मही के उस पार की भूमि मल्लों की है, वे हमारे मित्र हैं अतः वहाँ हम मही-पार उतर सकते हैं; आप देख चुके हैं कि मही की धारा बहुत तीव्र है। इसलिए नीचे से ऊपर आने में नौकाओं को बहुत मन्द चाल से जाना पड़ता है। अतः शत्रु हमारे इन दुर्गों पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते। चूँकि हम यहां अपनी रक्षित सैन्य और शस्त्रास्त्र संचित कर सकते हैं।

"दूसरी बात यह है कि इधर तो मल्लों की इस तट-भूमि को मागध अपने उपयोग में नहीं ला सकते और बहाव की ओर मही के मार्ग से हमारी सैनिक नौकाएं तीर की भांति शत्रु पर टूट पड़ सकती हैं, इस समय हमारे पास दो सहस्र से अधिक सैनिक नौकाएं हैं जिन पर पचास सहस्र भट डटकर युद्ध कर सकते हैं। आगामी दो मासों में हम और भी दो सौ रणतरी बना लेंगे। उधर मगध को वज्जी पर आक्रमण करने के लिए बड़ी २ नदियों को पार करना पड़ेगा। उनकी गति-विधि को रोकने के लिए हमें नौकाओं की अत्यन्त आवश्यकता होगी। वास्तव में सत्य यही है कि इस युद्ध में हम नौकाओं द्वारा ही विजयी हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में हमें एक यह सुविधा है कि मागधों की अपेक्षा हमारे पास मल्लाहों के कुल अधिक हैं। ...

असुविधाओं के कारण तथा वज्जी...

सुविधा पाने से मगध के बहुत मल्लाह-कुल वज्जी में आ बसे हैं, यह आप जानते है कि हमारे मल्लाह दास नहीं हैं, वे सुखी सम्पन्न और हमारे गण के सहायक हैं। उनके जेट्ठकों ने स्वेच्छा ही से अपनी सेवाएं हमें समर्पित की हैं। हमारे गान्धार मित्र काप्यक की सम्मति से हमने एक विशेष प्रकार की हल्की रथतरी बनाई है जिनका कौशल गुप्त रखा गया है। ये हमें नौ-युद्ध में अति महत्त्वपूर्ण सहायता देंगी। हाथियों, रथों और अश्वों को पार करने के लिये हमने विशाल नौकाएं तथा उत्तम घाट बना लिए हैं।"

"अब यदि हम दक्षिण और पूर्वी सीमा पर दृष्टि देते हैं तो हमारी पदाति सेना लगभग मगध सेना के समान ही सगठित एव सख्या में है। तथा उनकी शिक्षा आधुनिक गान्धार-पद्धति पर की गई है। अश्व, रथ, गज हमारे पास मागधों से कम अवश्य हैं परन्तु अवन्ति और मथुरा में बहुत-सी मगध अश्वारोही तथा गजसेना वहाँ फँसी है। समय पर उसकी सहायता सम्भव नहीं है फिर हमारे पास नौ-मल्लगण और अठारह काशी-कौशल के गण-राज्यों का अक्षुण्ण बल है। सब मिलाकर हम पौने दो अक्षौहिणी सेना समर में भेजने की आशा करते हैं।"

अब नौबलाध्यक्ष समन्तक ने कहा—"मित्र! सिंह ने जो अपना बल-परिचय दिया है उसके सम्बन्ध में मैं केवल यही कहा चाहता हूं कि मेरी दृष्टि में हम मागधों से अधिक सुगठित हैं। हमें यह जान लेना चाहिए कि दक्षिण का युद्ध ही निर्णायक युद्ध होगा और मैं अपने मित्र काप्यक और उसके गान्धार वीरों की सहायता से, जिनकी हम प्रतीक्षा कर रहे हैं, बहुत आशान्वित हूं। मैं कह सकता हूं कि हमें मही तट-वर्ती दुर्ग और रथतरियां ही सफलता प्रदान करेंगी। मागध सब बातों का प्रत्युत्तर रखता है पर हमारी उन दो सहस्र रथतरियों का उसके पास कोई प्रत्युत्तर ही नहीं है।"

काप्यक ने कहा—"भन्ते, सेनापति और मित्रगण यह जानकर प्रसन्न

होगे कि मुझे समाचार मिला है कि गान्धार से जो वैद्यों और भटों का दल चला है वह दो ही चार दिन में यहां पहुंचने वाला है। यहां मैं नौका-युद्ध का एक रहस्य निवेदन करता हूँ जिसे मैंने भली भांति निरीक्षण किया है। मही-नदी दिधिवारा के पास गंगा में मिलती है, किन्तु सेना उससे बहुत नीचे पाटलि-ग्राम के सामने। इससे मागधों को तो हम भरपूर हानि पहुँचा सकते है और वे हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

इस पर सेनापति सिंह ने कहा—"तो भन्ते सेनापति, मैं प्रस्ताव करता हूँ कि हम अब तैयार हैं और हमें मागधों के आक्रमण की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, तथा अवसर पाते ही प्रथम आक्रमण कर देना चाहिए। पहले आक्रमण के लिए तट की सेनाओं, नौकाओं और हाथियों को पहले तथा रथों, अश्वों और पादातिकों को बाद में प्रयुक्त करना चाहिए और मही की रक्षित सेना को उस समय जब शत्रु थक जाय।"

इस पर महाबलाध्यक्ष सुमन ने कहा—"तो आयुष्मान्, ऐसा ही हो। तू सैन्य को तैयार रख और अवसर पाते ही आरम्भ कर, मैं आमात्य वर्षकार और उनके सहायकों को बन्दी करने की आज्ञा प्रचारित करता हूँ।"

: १३६ :

युद्ध-विभीषिका

वैशाली में आतंक छा गया। मगध-महामात्य ब्राह्मण वर्षकार और ब्राह्मण सोमिल, अनुचर-कलत्र और बटुकवर्ग सहित बन्दी कर लिये गए। नन्दनसाहु, सेट्ठि कृतपुण्य भी बन्दी हो गये। उनका घर-द्वार सभी राजसैनिकों ने अपने अधीन कर लिये। काण्ण चाण्डाल मुनि न जाने कहां एकाएक अन्तर्धान हो गया। सेट्ठिपुत्र भद्रगुप्त को आचार्य गौडपाद के दायित्व पर उसी के घर में दृष्टिबन्धक कर लिया गया। नगर के घाट-द्वार, राजमार्ग सभी बन्द कर दिए गए। बाहर जाने आने के लिए सैनिक का आज्ञापत्र लेना अनिवार्य हो गया। अन्तरायण के सब खाद्य-भण्डारों पर सैनिक का अधिकार हो गया। विदेशियों की बारीकी से छान-बीन होने लगी। बहुत जन संदिग्ध पाए जाकर बन्दी बना लिये गए। जलाशय, कूप, राजमार्ग, वीथी, दुर्ग, द्वार, तोरण, स्तम्भ, बुर्ज सभी पर सैनिकों का अनवरत पहरा बैठा दिया गया। सब स्वस्थ वयस्क पुरुष अनिवार्य रूप में सैनिक बना दिए गए। सम्पूर्ण गृह और व्यवहार-उद्योग युद्धोद्योगों में परिणत हो गए। शस्त्रास्त्र और कवच एवं विविध युद्ध-साधनों का रात-दिन निर्माण होने लगा। लिच्छवि तरुणियां भी सेवा-सेना में भरती होकर शुश्रूषोपचार की शिक्षा पाने लगीं। सेना को शस्त्रास्त्र बांट दिये गए। उनकी टुकड़ियां नगर के भीतर बाहर चलती फिरती दृष्टि पड़ने लगीं। सारे नगर में सैनिक अनुशासन की व्यवस्था कर दी गई। आज्ञा उल्लंघन के लिए मृत्युदण्ड घोषित कर दिया गया। वैशाली के मनमौजी और स्वभाव ही से विलासी लिच्छवियों के मुखों पर हास्य-विनोद के स्थान पर चिन्ता

व्यग्रता और उद्वेग दीख पड़ने लगे। तरुण भट अपने २ शस्त्र चमकाते अश्व कुदाते, बढ़ २ कर बातें बघारते इधर उधर घूमते दीख पड़ने लगे।

बहुत लोग बहुत भांति की बातें करते। कोई दस्यु वज्रभद्र की अद्भुत सर्वत्र-गमन की शक्ति-सत्ता को खूब बढ़ा चढ़ाकर कहता, कोई मागध सम्राट् की कामुकता, वीरता तथा साम्राज्यलिप्सा की आलोचना करता। बहुत जन इस युद्ध का सम्बन्ध अम्बपाली से जोड़ते।

अम्बपाली के आवास की आभा भी फीकी पड़ गई। सैनिक नियमों के आधार पर उसके आवास में सार्वजनिक प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। अम्बपाली के आवास को विशेष रीति पर सैनिक निरीक्षण और संरक्षण में रख दिया गया। राजकोष, महत्वपूर्ण लेख और बहु-मूल्य सामग्री भूमिगर्भ-स्थित भूगृहों में रख दी गई।

वैशाली के सब आबाल-वृद्ध विचलित व्यग्र और आशंकित हो उठे। युद्ध की विभीषिका ने उन्हें विमूढ़ कर दिया।

: १३७ :

मागध स्कन्धावार-निवेश

वास्तुशिल्पियों ने वर्धकि जनों के सहयोग से मौहूर्तिकों से अनुशासित हो आर्य भद्रिक के आदेश और विकल्प से पाटलिग्राम के पूर्वी स्कन्ध पर गंगा और मिही संगम के ठीक सम्मुख तट से तनिक हटकर लम्बे परिमाण में गोलाकार मागध स्कन्धावार-निवेश स्थापित हुआ। उसमें चार द्वार, ६ मार्ग, ६ संस्थान बनाए गये। स्कन्धावार चिर-स्थायी था, इस विचार से खाई, परकोटा और कुछ अटारियां भी बनाई गईं तथा एक मुख्य-द्वार निर्माण किया गया।

स्कन्धावार के मध्य भाग में उत्तर की ओर, नौवें भाग में सौ धनुष लम्बा तथा इससे आधा चौड़ा राजगृह बनाया गया। उसके पश्चिम की ओर उसके आधे भाग में अन्तःपुर निर्मित किया गया। अन्तःपुर की रक्षक सैन्य का स्थान उसके निकट ही रखा गया। राजगृह के सम्मुख राजउपस्थान गृह था। जहां बैठकर सम्राट् सेनापति और अभिलषित जनों से मिलते थे। राजगृह से दाहिनी ओर कोश-शासनकरण, अक्ष-पटल, कार्यकरण निर्मित हुआ। बाईं ओर सम्राट् के गज, रथ, अश्व के लिए स्थान बनाया गया। राजगृह के चारों ओर कुछ अन्तर पर चार बाड लगाई गईं। पहिली बाड़ शकटों की, दूसरी कांटेदार वृक्षों की शाखा की, तीसरी दृढ़ लकडी के स्तम्भों की, चौथी पक्की ईंटों की चुनी हुई थी। प्रत्येक बाड़ का परस्पर सौ सौ धनुष का अन्तर था। पहली बाढ़ के भीतर सामने की ओर मंत्रियों और पुरोहितों के स्थान थे। दाहिनी ओर कोष्ठागार, महानस और बाईं ओर कुप्यागार और आयुधागार था। दूसरी बाड़ के भीतर मौलभृत आदि सेनाओं के उप-निवेश थे। तथा गज रथ अश्व और सेनापति के स्थान थे। तीसरे घेरे में

हाथी, श्रेणीबल तथा प्रशास्ता का आवास था। चौथे घेरे में विष्टि, नायक तथा स्वपुरुषाधिष्ठित मित्रामित्र सेना एवं आटविक सेना थी। यहीं व्यापारियों, वणिकों, वेश्याओं के आवास तथा बड़ा बाज़ार थे। इसीलिए शिकारी, बाजे तथा अग्नि के संकेत से शत्रु के आगमन की सूचना देने वाले ग्वाले आदि के वेश में छिपे हुए रक्षक पुरुष बाहर की ओर रखे गये थे।

जिस मार्ग के द्वारा स्कन्धावार पर शत्रु द्वारा आक्रमण की सम्भावना थी उस मार्ग में गहरे कुए, खाई आदि खोदकर घास-फूंस से ढांप दिए थे। कहीं २ कांटे या लोहे की कीलें ठुके हुए तख्ते बिछा दिए गए थे।

स्कन्धावार पर पहरे के लिए अठारह वर्गों का आयोजन था। कुल सेना मौलभृत आदि छै वर्गों में विभाजित थी। प्रत्येक के तीन २ अधिकारी थे—पदिक, सेनापति और नायक। प्रत्येक सेना के अपने २ अधिकारी की अधीनता में तीन २ वर्ग होकर छः प्रकार की सेनाओं के इस प्रकार अठारह वर्ग थे। यही सब बारी २ से प्रतिक्षण स्कन्धावार की रक्षा सावधान रहकर करते रहते थे। शत्रु के गुप्तचरों की तथा शत्रु की गतिविधि का निरीक्षण करने को गूढ़ पुरुषों की नियुक्ति थी। सैनिकों को लड़ने-झगड़ने, पान-गोष्ठी करने, जुआ आदि खेलने का नितान्त निषेध था। स्कन्धावार के बाहर भीतर आने जाने के लिए राजमुद्रा का कड़ा प्रबन्ध था, बिना आज्ञा युद्धभूमि तथा स्कन्धावार से भागने वाले सैनिक को शून्यपाल तुरन्त बन्दी करले—ऐसी कठोर राजाज्ञा प्रचारित कर दी गई थी।

कण्टक-शोधनाध्यक्ष बहुत से शिल्पी कर्मकर और उनके प्रधानों के साथ मार्ग की रक्षा, जलप्रबन्ध, मार्गस्थापन, जंगल साफ करने और हिंसक प्राणियों को स्कन्धावार से दूर भगाने में सतत संलग्न था।

: १३८ :

प्रयाण

'स्थान', 'आसन' और 'गमन' का ठीक २ विकल्प कर ग्राम अरण्य आदि अध्वनिवेश में ईंधन, धान्य, जल, घास आदि की समुचित व्यवस्था प्रबन्ध कर भोजन, वस्त्र, शस्त्रास्त्र को यत्नपूर्वक सुरक्षा में संग ले मागध सैन्य ने मौहूर्तिकों से नक्षत्र दिखा सम्राट् ने प्रयाण किया।

सेना के अग्रभाग में दस सेनापतियों का नायक, बीच में अन्तःपुर और सम्राट्, इधर उधर शत्रु के आघात को रोकने वाली अश्वारोहिणी सैन्य चली। सेना के पिछले भाग में हाथी चले। अन्न, घास, भूसा आदि सामग्री सब ओर से ले जाया जाने लगा। जंगल में उत्पन्न होने वाला आजीविका योग्य अन्न, घास आदि सामग्री संग्रह होती चली। अन्न, वस्त्र आदि व्यवहार्य साधन लगातार छकड़ों हाथियों में लद २ कर सेना के साथ चले। आसार अपसार को सुरक्षित कर सब से पिछले भाग में सेनापति पर्याय से अपनी २ सेना के पीछे स्थित हो चले।

सेना का अग्रभाग मकर-व्यूह रच कर और पश्चातभाग शकट-व्यूह बद्ध होकर आगे बढ़ा। पार्श्वभाग की सैन्य वज्र-व्यूह से तथा चारो ओर का बहिःसैन्य सर्वतोभद्र-व्यूह में बद्ध हो आगे बढ़ा। कहीं २ तंग घाटियों में, दरारों में, सूची-व्यूह भी बनाना पड़ा। इस प्रकार सर्वतो-भावेन रक्षा-व्यवस्था क्रम स्थापित कर मागध सैन्य ने प्रयाण किया। पहिले कुछ दिन प्रतिदिन एक योजन, फिर डेढ योजन और फिर दो योजन मार्ग प्रतिदिन सैन्य ने काटा।

धन-धान्य से समृद्ध शत्रु नगरों को नष्ट करते हुए, पृष्ठस्थित केन्द्रों तथा शत्रु और अपने देशों के मध्यवर्ती सामन्तो को तथा उदासीन

राजाओं को साम दाम दण्ड भेद नीति से वशवर्ती करते हुए, संकट विषम राह को साफ़ करते हुए, कोश, दण्ड, मित्र-शत्रु आटविक सैन्य, विष्टि और मुख्य सैन्य सब की सुख-सुविधा और अनुकूल ऋतु का विचार कर सम्राट् धीरे २ कभी द्रुतगति से वैशाली की ओर अग्रसर हुए।

कभी हाथियों द्वारा छिछली नदियों को पार किया। कभी नदी में 'स्तम्भ-संक्रम' करके, कभी सेतुबन्धन, कभी नाव, लकडी तथा बाँस के बेड़े बना कर, कभी तूम्बी, चर्मकाण्ड, दृति, गण्डिका और वेणिका आदि साधनों से मागध सैन्य ने नदियों को पार किया।

कठिन मार्गों, भारी दलदल, गहरे जल, गुफा, पर्वत आदि को पार करती हुई, पर्वतों पर चढ़ती उतरती, तंग पथरीले, पहाड़ी विषम मार्गों पर होती हुई, भूख, प्यास और थकान से खिन्न हो बीच २ में सुस्ताती, ज्वरसंक्रामक महामारी तथा दुर्भिक्ष की बाधाओं को सहन करती; बीमार, पैदल, हाथी, अश्वों के साथ मागध सैन्य आगे बढ़ती चली गई। धीरे २ सेना ने स्कन्धावार में प्रवेश कर वहां उपनिवेश किया। निरन्तर आने वाली मागध सैन्य का राजगृह और वैशाली के बीच राजमार्ग पर तांता लग गया।

: १३६ :

शुभ दृष्टि

"तो हमें कल ही उल्काचेल चल देना चाहिये"—सिंह ने कहा।"

"निश्चय, क्योंकि हमें सम्पूर्ण गंगातट का सैनिक दृष्टि से निरीक्षण करना है, फिर मिही के सब दुर्गों को एक बार देख डालना है। हम ग्यारहों नायक चलेंगे, तभी ठीक होगा मित्र सिंह!' —गान्धार काप्यक ने कहा।

"परन्तु मित्र काप्यक, मिही का एक ही तट हमारे अधीन है। दूसरे तट से हमारी नावों के प्रयोगों को शत्रु के गुप्तचर देख सकते हैं।"

"यह तो असम्भव नहीं है।"

"तब क्यों न मरकटह्रद सरोवर में रणतरी के प्रयोग किए जांय।"

"यह अधिक अच्छा होगा, वहीं पर हम रणतरियों का परीक्षण, सैनिकों का शिक्षण और नाविकों का संगठन कर डालेंगे और वहीं से आवश्यकता होने पर मही-तट पर उन्हें भेजना प्रारम्भ कर देंगे। परन्तु हमें अधिक से अधिक लोहशिल्पियों को एकत्र करना चाहिये।"

"जो हो, हमें सूर्योदय से प्रथम ही उल्काचेल चल देना चाहिये"

"तो मित्र काप्यक, तुम साथ के लिये थोड़े से चुने हुए गान्धार सेनानी ले लो। अच्छा है राह घाट वे देख लेंगे। यदि हम एक पहर रात्रि रहे चल दें तो मार्ग के शिविरों को देखते भालते हम दो दण्ड दिन चढ़े तक उल्काचेल पहुंच जायेंगे। वहां के घाटरक्षक अभीति को मैंने सन्देश भेज दिया है। वह हमारा स्वागत करने को तैयार रहेगा।"

काप्यक ने कहा—"फिर ऐसा ही हो!"

नदी-तट पर धीरे २ घूमते हुए सिंह और काप्यक गान्धार में ये

बातें हुईं और दूसरे दिन वे मध्यान्ह तक उल्काचेल जा
हुए पचास गान्धार अश्वारोही उनके साथ थे।

उपनायक अभीति ने आगे बढ़ कर सिंह और उपनायक
का सैनिक अभिवादन किया। तथा गान्धार सैनिकों का हार्दिक
करते हुए कहा—"मैं उल्काचेल में आपका और आपके ि
स्वागत करता हूं। मेरे उपनायक अशोक आप को यहां की सेना-
का सम्पूर्ण विवरण बतायेंगे। परन्तु मैं चाहता हूं कि मुख्य
आपको दिखा दूं। मैंने अपने और शत्रु के दुर्गों का एक
तैयार कर लिया है, वह यह है, इससे आप सब बातें जान
इसमें यह भी लिख दिया है कि हमारी कहां कितनी सेना है।"

"यह बड़े काम की वस्तु होगी नायक"—सिंह ने कहा।

अभीति-नायक बोले—"आपकी आज्ञानुसार दक्षिण सेना के बहु
से नायक, उपनायक, सेनानी भी उल्काचेल आ पहुंचे हैं। आप
भोजन करके थोड़ा विश्राम कर लीजिये फिर उनसे बातचीत करना
ठीक होगा।"

"ऐसा ही हो, नायक"—सिंह ने मानचित्र पर ध्यान करते हुए कहा।

फिर सब लोगों ने स्नान भोजन कर थोड़ा विश्राम किया। पहर
दिन रह गया था जब सिंह ने दक्षिण सैन्य के सेनानियों में से, एक एक
को बुला कर आदेश देने प्रारम्भ किये। सिंह ने उनके सैन्यबल के
सम्बन्ध में सारी बातें पूछीं और एक तालपत्र पर लिखते गए। सूर्यास्त
तक यह काम समाप्त हुआ।

स्वच्छ चांदनी रात थी। नायक अभीति ने कहा—"इस समय गंगा
तट के दिनने ही नव-निर्मित दुर्गों का परीक्षण किया जा सकता है।
यदि विश्राम की इच्छा न हो तो मैं नाव मगाऊं।"

सिंह ने कहा—"विश्राम की कोई बात नहीं है। नायक, तुम नाव
तैयार कराओ।"

नायक अभीति, सिंह और

में जा बैठे। तीर २ नाव चलने लगी। सामने गंगा के उस पार पाटलि-ग्राम में मगध शिविर पड़ा था। उसमें जलता हुआ आग का प्रकाश मीलों तक फैला दीख रहा था। नाव धीरे २ गंगा-मही-संगम पर दीघिवारा की ओर जा रही थी। नाविक सब सावधान और अपने कार्य में दक्ष थे। गंगा में व्यापारिक बड़ी छोटी नावें और माल से भरी नावें तैर रही थीं। किसी २ नाव में दीपक का क्षीण प्रकाश भी प्रकट हो रहा था। गंगा-किनारे के सब दुर्गों में पूर्ण निस्तब्धता थी। न प्रकाश था न शब्द। अभीति की इस सम्बन्ध में कड़ी आज्ञा थी। दीघिवारा तक कुल पांच दुर्ग वज्जियों के थे। सेनानायकों ने सभी का निरीक्षण किया। नाव को घाट तक लगते देखते ही प्रहरी पुकार कर संकेत करता, नाव पर से नायक संकेत करता, प्रहरी तत्काल दुर्गाध्यक्ष को सूचना देता और ये नाविक चुपचाप नाव से उतर कर दुर्ग का निरीक्षण कर आते तथा अध्यक्ष को आवश्यक आदेश दे आते। घाट से दुर्ग तक के मार्ग गुप्त और घूम-घुमौवल बनाये गये थे। अपरिचित व्यक्ति का वहां पहुंचना शक्य न था। सैनिक नावें इस प्रकार छिपा कर रखी थीं कि उस पार से तथा इस पार से भी उन्हें देख पाना शक्य न था। विशाल मरकट-ह्रद को एक छोटी-सी टेढ़ी नहर द्वारा नदी से मिला दिया गया था। आवश्यकता पड़ने पर सब नावें सैनिकों सहित क्षण भर में गंगा की बड़ी धारा में पहुंच सकती थीं। यद्यपि यह निरीक्षण बिना सूचना के हो रहा था परन्तु प्रत्येक प्रहरी सावधान एवं सजग था।

पहर रात गए सेनानियों की नौका दीघिवारा के दुर्ग में पहुंची। यह औरों से बड़ा था। यहां की व्यवस्था भी उत्तम थी। दोनों नवीन नायक सैनिकों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे।

पौ फट रही थी, जब ये सेनानी उल्काचेल पहुंचे। पीछे लौट कर सिंह ने कहा—'नायक अभीति, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं मित्र, तुमने

यथेष्ट व्यवस्था की है।"

नायक ने हंस कर सेनापति का अभिवादन किया। इसके बाद सब ने विश्राम किया। दिन भर जयराज के चर शत्रु-सेना का सम्वाद लाते रहे। उससे विदित हो गया कि बिम्बसार अभी सेनापति भद्रिक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस लिये मगध सम्राट् अभी युद्ध प्रारम्भ करने का निर्णय नहीं कर पाये हैं।

रात को फिर तीनों सेनानी गंगा के नीचे मिड़ी और गंगा के संगम पर स्थित दुर्गों को देखने चले। यह एक रात में समाप्त नहीं हो सकता था। वे दिन भर किसी दुर्ग में विश्राम करते और रात में देखी बातों के संस्मरण लिखते। संध्या होने पर फिर आगे चलते। तीसरे दिन वागमती संगम-तट पर के दुर्ग में पहुंचे भटों की तत्परता और सतर्कता पर सेनानियों ने सन्तोष किया। उन्हें आवश्यक आदेश दिए। और तक्षशिला की नई रणचातुरी सिखाने के लिये उन्हें उल्काचेल आने को कहा।

अभी मही नदी के दुर्गों को देखना शेष था। एक दिन उल्काचेल में तरुण सेनानियों ने विश्राम किया तथा आवश्यक आदेश वैशाली और भिन्न भिन्न केन्द्रों को भेजे।

दूसरे दिन चन्द्रोदय के साथ ही काप्यक और सिंह ने मिड़ो की ओर नाव छोड़ी। दीधिवारा के संगम से ऊपर धार तीव्र थी, इस लिये घूम कर नौका ले जाना पड़ा। मही के पूर्वी तट पर हरी घास का मैदान था।

जहां सहस्रों गायें चर रही थीं। बीच में आदमियों और पशुओं के लिये छोटी २ कुटियां बनी थीं। वे लिच्छिवी और अलिच्छिवी दोनों थे।

चार दिन में मही के दुर्गों का निरीक्षण हुआ। उन्हें नायक शान्तनु और उसके आठ उपनायकों को सौंप दिया गया। जिससे वे नाविकों को

नवीन कौशल सिखा सकें। यह करके दोनों मित्र फिर उल्काचेल चले आये। यहां से काप्यक तो कुछ नौ-सुधार के लिये वैशाली चले गये और सिंह ने सेनानियों को नौ-युद्ध के कुछ नवीन और गुप्त रहस्य सिखाए। आठ दिन में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

अब सिंह ने अपने सम्पूर्ण कार्य का विवरण महाबलाध्यक्ष सुमन के पास वैशाली लिख भेजा। बलाध्यक्ष पश्चिमी और पूर्वी सीमान्त पर नौ-युद्ध की नवीन पद्धति की परीक्षा की बात जान कर वे अतिसन्तुष्ट हुए।

अब सिंह ने अपना ध्यान दूसरी ओर किया। जयराज को उन्होंने लिखा कि चरों की संख्या बढ़ा दी जाय और सोन-तट और गंगा-तट पर शत्रु जो नई कार्यवाही कर रहा है, इसकी क्षण २ की सूचना हमें मिलती जाय। सिंह ने यत्नपूर्वक यह भी जान लिया कि राजगृह और उसके मार्ग की रक्षा का क्या प्रबन्ध किया गया है। जयराज ने अनेक चर परिव्राजक, निगंठ, आजीवक, भिक्षु आदि वेशों में; कुछ को व्यापारी और ज्योतिषी बनाकर शत्रु की ओर भेज दिया। उन्होंने बताया कि चण्डभद्रिक बड़ी द्रुत गति से राजधानी के दुर्गों की मरम्मत करा रहे हैं; तथा गंगा-तट से वहां तक उन्होंने उचित स्थानों पर नाकेबन्दियां कर रखी हैं। नालन्द, अम्बालिष्टिका की दो योजन भूमि में उसकी तैयारियां और भी अधिक थीं। अभिप्राय स्पष्ट था कि चतुर चाणक्य चण्डभद्रिक को भय था कि लिच्छवि कहीं राजगृह तक न दौड़ जाय। सिंह सेनापति उल्काचेल लौट आये।

चर सिंह के पास क्षण २ में सूचना ला रहे थे; और मगधराज की सम्पूर्ण गति-विधि का पता उन्हें लग रहा था। वे सूचनाओं के साथ २ अपनी योजनायें भी सेनापति और गणपति के पास भेज रहे थे।

: १४० :

मागध-मन्त्रणा

सेनापति भद्रिक और सम्राट् ने स्कन्धावार-राजगृह के म में युद्ध-मन्त्रणा की। मन्त्रणा में सम्राट्, महासेनापति भद्रिक, सेनापति उदायि, सेनापति सोमप्रभ और आमात्य सुनीथ उ थे। उनके अतिरिक्त अपनी २ सेना लेकर आए हुए सहायक रा... राजसेनापति भी उपस्थित थे। जिनमें वंग के श्रमणदत्त, का... वीरकृष्ण मित्र, अवन्ती के श्रीकान्त, भोज के समुद्रपाल, ... सामन्त भद्र, माहिष्मती के सुगुप्त, भृगुकच्छ के सुदर्शन और ...ति के सुवर्णबल ये आठ मित्र महासेनापति सम्मिलित थे।

युद्ध के सम्बन्ध में सब अङ्गों पर प्रकाश डाला गया। दूष्य ... शत्रु सेना, आटविक सेना का पृथक् २ विभाजन कर पृथक् २ ... पतियों को सौंप दिया गया। अपसार, प्रतिग्रह, पार्वत दुर्ग, नदी दु... और वन-दुर्गों के अधिकार पृथक् २ सेनानायकों को बांट दिये गये।

शून्यपाल और वास्तुपाल नियत किये गये। सत्रों की रक्षा समुचित प्रबन्ध किया गया।

सम्पूर्ण सेना का अधिनायकत्व महासेनापति आर्य भद्रिक ने ग्रहण किया। सेनापति सोमप्रभ हुये। आर्य उदायि को नौबलाध्यक्ष नियत किया गया। आमात्य सुनीथ शून्यपाल नियत हुए। आचार्य काश्यप कूट-युद्ध के नायक हुये। सम्पूर्ण सम्मिलित स्थल सैन्य का दायित्व सोमप्रभ को दिया गया—दक्षिण युद्ध-केन्द्र पर उनकी नियुक्ति हुई। आठों मित्र सेनानायक राजपुरुष उनकी अधीनता में रखे ... सत्रों का भार गोपालभट्ट को ...

मुक्त रखा गया। शत्रुपक्ष में सम्राट् को कोई न पहचान पावे इस के लिये अनेक गूढ़ पुरुष सम्राट् के वेश में नियत किये गये।

सूत और मागधगण सेना के उत्साह-वर्धन के लिये नियुक्त हुए। शल्य-चिकित्सक शस्त्र, यन्त्र, अगद, स्नेह और वस्त्रों तथा खाने पीने शुश्रूषा करने के सब साधनों से सम्पन्न परिचारिकाओं सहित यथास्थान नियत किया गया। धान्वन दुर्ग में युद्ध करने वाले योद्धाओं को, वन-दुर्ग में युद्ध करने वाले योद्धाओं को, जल तथा स्थल में युद्ध करने वाले योद्धाओं को, खाई खोद कर उनमें बैठ कर युद्ध करने वाले योद्धाओं को, आकाश में युद्ध करने वाले तथा दिन भर और रात्रि में युद्ध करने वाले योद्धाओं को यथावत् विभाजित कर उनके सेनानायकों को उन्हें सौंप युद्ध-योग्य प्रदेश ऋतु और अपेक्षित समय की सब व्यवस्थाओं पर विचार कर व्यवस्थित किया गया। रथयुद्ध, हस्तियुद्ध, अश्वयुद्ध तथा पदातियुद्ध एवं चतुरंगप्रकाश-युद्ध के स्थान के मानचित्रों पर सम्यग् रीति से विचार करके सामरिक दृष्टि से उनके नियोजन की व्यवस्था की गई। भूमिविचय, वनविचय, विषम, तोय, तीर्थ, वात और रश्मि के उपयुक्त स्थलों पर संवात स्थापित किए गये। शत्रु के वीवध, आसार, और अपने वीवध, आसार का प्रबन्ध किया गया। शत्रु की सेना को पकड़ने, शत्रु से पकड़े हुए अपने योद्धाओं को छुड़ाने, अपनी सेना के मार्ग पर शत्रुओं की सेना के चले जाने पर स्वयं शत्रुसेना के मार्ग का अनुसरण करने, शत्रु के कोश और सेनानायकों का अपहरण करने, पीछे तथा सम्मुख हो आक्रमण करने, भागते हुए सैनिकों का पीछा करने, तथा बिखरी हुई अपनी सेना को एकत्रित करने की सम्पूर्ण योजनाओं पर विचार किया गया।

ये सारे कार्य अश्वारोही सैन्य को सौंपे गये।

सेना के अग्रभाग और पश्चात्-भाग का रक्षण करने, नए तीर्थ और मार्ग बनाने, घने जंगलों के घमासान युद्ध में प्रमुख भाग लेने, शत्रु के वासस्थलों में आग लगाने और अपने स्कन्धावार-निवेश में लगी आग

को बुझाने, शत्रु की संगठित सैन्य को छिन्न-भिन्न करने, को पकड़ने, परकोट, द्वार, अटारी आदि गिराने, शत्रु के कोश को भागने का कार्य हाथियों के अधिपति को सौंपा गया।

अपनी सेना की रक्षा करने, आक्रमण के समय शत्रु-सैन्य रोकने, शत्रु के द्वारा पकड़े गये अपने योद्धाओं को छुड़ाने, बिखरी को एकत्रित करने,शत्रु की सेना को विचलित करने का कार्य रथ-रथी रथपतियों को सौंपा गया।

प्रत्येक सम विषम स्थानों, प्रत्येक अनुकूल प्रतिकूल ऋतु परिस्थितियों में घनघोर खड्ग युद्ध करने का काम पादातिक सैन्य दिया गया।

शिविर, मार्ग, सेतु, कूप, घाट आदि तैयार करने; उन्हें ठीक रखने; यन्त्र, शस्त्र, कवच आदि साधन सम्पन्न करने तथा आहत भटों को युद्ध-स्थल से ढोकर चिकित्सा-केन्द्रों तक पहुंचाने का काम विष्टि-सैन्य को दिया गया।

इस प्रकार युद्ध-संचालन की सारी व्यवस्था कर—मागध महा-सेनापति चण्ड भद्रिक ने सोमप्रभ का अभिनन्दन करते हुए सम्पूर्ण सेनापतियों के समक्ष उनके शौर्य कौशल युक्ति और स्थैर्य की भूरि २ प्रशंसा की और परिपूर्ण अनुशासन का बारंबार अनुरोध किया।

: १४१ :

प्रकाश-युद्ध

मिही के उस पार की मल्लों की भूमि पर वज्जी सैन्य का स्कन्धावार निवेश था। मिही-तट पर दुर्गों का तांता बंधा था तथा वहां एक अस्थायी पुल नावों का बांधा गया था जिसकी रक्षा गान्धार काप्यक के गान्धार भट यत्नपूर्वक कर रहे थे। मिही-तट के इन दुर्गों में वज्जियों की शस्य-भण्डार और रक्षित सैन्य बहुत मात्रा में थी। मिही की धारा अति तीव्र होने के कारण नीचे से ऊपर आकर इन दुर्गों पर आक्रमण करना सुकर न था। वज्जी-स्कन्धावार-निवेश और मगध-स्कन्धावार-निवेश के मध्य में पाटलि ग्राम था। पाटलि ग्राम की स्थापना दूरदर्शी मगध महामात्य वर्षकार ने वज्जियों से युद्ध करने के लिये की थी। अभी उसमें बहुत कम घर, हर्म्य और राजमार्ग बन पाए थे। बस्ती बहुत विरल थी। उत्तर काल में जहां बैठ कर गुप्त के वंश के महामहिम सम्राटों ने ससागर जम्बूद्वीप पर अबाध शासन-चक्र चलाया था, वह एक नगण्य साधारण ग्राम था। मागध राजपुरुष और कभी २ सैन्य की कोई टुकड़ी माप आधा माप पाटलिग्राम में आकर टिक जाती थी। फिर उनके लौट जाने पर लिच्छवि राजपुरुष लोगों को घर से निकाल कर बस रहते थे। उन्हें वहां से भगाने के लिये फिर मगध-सेना मंगानी पड़ती थी। ग्रामजेट्ठक एक बूढ़ा मागध सैनिक था, उसके अधीन जो दस बीस सैनिक थे—कुछ भी व्यवस्था नहीं कर सकते थे। इस निकल-घुस के कष्ट से पाटलि ग्राम के निवासी कृषक बड़े दुःखी थे। उन्हें पन्द्रह दिन लिच्छवियों के अधीन और पन्द्रह दिन मागधों के अधीन रहना पड़ता था। बहुधा दोनों ही राजपुरुष उनसे जोर-जुल्म करके

वलि उधार ले जाते थे। अपने कर और अपनी सम्पत्ति पर उनका अधिकार ही न था। न वे और न उनकी सम्पत्ति रक्षित थी। इसी पाटलिग्राम की आबादी बढ़ती नहीं थी। कोई भी इस द्वैध-शासित ग्राम में रहना स्वीकार नहीं करता था।

इस समय ग्राम का पूर्वी भाग लिच्छवि-सेनापति के अधीन और पश्चिमी भाग मागध सैन्य के। ग्रामवासी युद्ध के भय से भाग गये थे और घरों में दोनों पक्षों के सैनिक भरे थे। जिन्हें प्रतिक्षण आक्रमण से शंकित रहना पड़ता था।

मागध स्कन्धावार-निवेश से पांच सौ धनुष के अन्तर पर पाटलि ग्राम के दक्षिण समभूमि पर मागध सेनापति सोमप्रभ ने संग्राम-क्षेत्र स्थापित करके सम-व्यूह की रचना की। सम्पूर्ण व्यूह के पक्ष, कक्ष और उरस्य ये तीन अंग स्थापित किये गए। सेना के अग्रभाग के दोनों पार्श्व में 'पक्ष' स्थापित कर उसके दो भाग कर वाम माहिष्मती के सुगुप्त की ओर दक्षिण पक्ष प्रतिष्ठान के सुवर्ण-बल की अधीनता में स्थापित हुआ। पीछे के 'कक्ष' के भी दो भाग करके वाम कक्ष भोज समुद्रपाल और दक्षिण कक्ष आन्ध्र सामन्त भद्र की अधीनता में स्थापित किया गया। मध्य 'उरस्य' में स्वयं सेनापति सोमप्रभ स्थित हुए। उनके पार्श्वरक्षक वंग के वैश्रमणदत्त, अवन्ती के श्रीकान्त, और कलिंग के वीर कृष्णमित्र स्थित हुए।

पैदल सेना के प्रत्येक सैनिक को एक एक शम पर खड़ा किया गया। अश्वारोहियों को तीन-तीन शम के अन्तर पर, रथ और हाथियों को पांच २ शम के अंतर पर, धनुर्धारियों की सैन्य को एक धनुष के अंतर पर स्थापित किया गया। इस प्रकार पक्ष, कक्ष और उरस्य की पांचों सेनाओं का परस्पर का अंतर पांच-पांच धनुष रखा गया।

अश्वारोही के आगे रहकर उसकी सहायतार्थ युद्ध करने के लिए तीन भट, हाथी और रथ के आगे १५-१५ भट तथा पांच-पांच

अश्वारोही तथा घोड़े हाथियों के ९-९ पादगोप नियुक्त किए गए। इस प्रकार एक-एक रथ के आगे पांच-पांच घोड़े, एक २ घोड़े के आगे तीन तीन भट, कुल मिला कर पन्द्रह जन आगे चलने वाले और पांच सेवक पीछे रहे।

उरस्य स्थान में नौ रथों की ऐसी तीन त्रिको की स्थापना हुई। अभिप्राय यह कि तीन २ रथों की एक २ पंक्ति बना कर तीन पंक्तियों में नौ रथों को खड़ा किया गया। इसी प्रकार कक्ष और पक्ष में भी। ऐसे नौ उरस्य, अठारह कक्ष और अठारह पक्ष में मिल कर एक व्यूह में पैंतालीस रथ, पैंतालीस रथों के आगे दो सौ पच्चीस अश्वारोही और छै सौ पचहत्तर पैदल भट, परस्पर की सहायता से युद्ध करने को स्थापित हुये।

इस व्यूह की रचना तीन समान त्रिकों से की गई थी, इससे यह सम-व्यूह कहाया। परंतु इसकी व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि आवश्यकतानुसार इसमें दो रथों की वृद्धि इक्कीस रथ पर्यन्त की जा सकती थी।

बची हुई कुछ सेना का दो तिहाई भाग पक्ष, कक्ष तथा एक भाग उरस्य में आवाप, प्रत्यावाप, अन्वावाप, और अत्यावाप, करने की भी व्यवस्था तैयार रक्खी गई थी।

लिच्छवि सैन्य को तीन स्वतन्त्र व्यूहों में सेनापति सिंह ने विभक्त किया था। एक "पक्षभेदी" व्यूह स्थापित किया गया, इसमें सेना के सम्मुख दोनों ओर हाथियों को खड़ा किया गया और पिछले भाग में उत्कृष्ट अश्वारोहियों को, उरस्य में रथों को। इसका संचालन मल्लराज प्रमुख सौभद्र कर रहा था। दूसरी सैन्य को 'मध्यभेदी' व्यूह में स्थापित किया गया था, इसमें हाथी मध्य में, रथी पीछे और अश्वारोही अग्रभाग मे स्थापित थे। इसका संचालन लिच्छवि सेनानायक वज्रनाभि कर रहा था। तीसरी सेना को 'अन्तर्भेदी' व्यूह में बद्ध किया गया था

जिसमें हाथी पीछे, मध्य में अश्वारोही और अग्रभाग में रथों की । थी। रथों, अश्वों एवं हाथियों की रक्षा की व्यवस्था मागधों ही समान थी। इस सैन्य का संचालन गान्धार तरुण कपिश कर रहा ५

लिच्छवि सेनापति सिंह ने स्वयं हाथियों का एक 'शुद्ध व्यूह' उसे अपने अधीन रखा था। इसमें केवल सान्नाह्य हाथी ही थे। उ संख्या तीन सहस्र थी। ये सब युद्ध की शिक्षा पाये हुए धीर स्थिर थे। इनमें उन्मत्त और मदमस्त हाथियों को लोह-शृंखला बद्ध करके अग्रभाग के दोनों पक्षों में रखा गया था। इस शुद्ध-हस्ति व्यूह को लेकर सेनापति सिंह लिच्छवि सैन्य के उरस्य में स्थित थे।

बीस सहस्र कवचधारी अश्वों का एक शुद्ध-व्यूह ि ५ वे सेनापति महाबल की अध्यक्षता में कक्ष को दोनों पार्श्वों में सन्नद्ध किया गया था, तथा पादाति सैनिकों के एक शुद्ध-व्यूह को आगे दो भागों में और धनुर्धारियों के शुद्ध-व्यूह को कक्ष के दोनों पार्श्वों में समुचित सेनानायकों की अध्यक्षता में स्थापित किया हुआ था।

एक दण्ड दिन चढ़े तक दोनों ओर की सैन्य अपने २ व्यूहों में सन्नद्ध खड़ी हो गईं। उनके शस्त्र सूर्य की स्वर्णिम आभा में चमक रहे थे। दोनों सेनापतियों ने एक बार सारी सेना में घूम २ कर अपनी २ सेना का निरीक्षण किया। मागध सेनापति सोमप्रभ धूमकेतु पर आरूढ़ श्वेत-कौशेय परिधान में अपनी सेना से बाहर आ दश धनुष के अन्तर पर खड़ा हो गया। इसी समय मागध सैन्य के प्रधान सञ्चालक ने शंख फूंका। शंख-ध्वनि के साथ ही मागध सैन्य से जय-जयकार का महानाद उठा। इसी समय लिच्छवि सेनापति सिंह श्वेत अश्व पर आरूढ़ रंगीन परिधान पहने अपने सैन्य से बाहर आ पांच धनुष के अन्तर पर खड़ा हो गया। अब लिच्छवि सैन्य में भी शंखध्वनि एवं जय-जयकार का नाद उठा।

दोनों सेनानायकों ने सूर्य की रश्मियों में चमकते हुए नग्न खड्ग

उष्णीष से लगा कर एक दूसरे का अभिवादन किया।

इसी समय एक बाण मागध सैन्य से छूटकर लिच्छवि सेनापति सिंह के अश्व के निकट भूमि पर आ गिरा। यह देख दोनों ही सेनापति विद्युत् वेग से अपने २ अश्व दौड़ा कर अपनी सैन्य में जा घुसे। तुरन्त ही मागध सैन्य में आक्रमण की हलचल दीख पड़ी, यह देख सिंह ने अवरोध और प्रत्याक्रमण के आवश्यक आदेश सेनानायकों को दे, कुछ आवश्यक सूचनायें भूर्जपत्र पर लिख मिट्टी की मुहर कर द्रुतगामी अश्वारोही के हाथ वैशाली भेज दी।

इसी समय मागधी सेना के व्यूह-बहिर्गत दो सहस्र अश्वारोही खड्ग और शूल हाथ में लिए वेग से आगे बढ़े। सिंह ने लिच्छवि सेनापति महाबल को दो सहस्र कवच-धारी अश्वारोही लेकर वक्र गति से आगे बढ़ कर बिना ही शत्रु से मुठभेड़ किए घूम कर अपनी सैन्य के दक्षिण पार्श्व-स्थित मध्यभेदी व्यूह में घुस जाने का आदेश दिया। महाबल मन्द गति से आगे बढ़े, ज्योंही शत्रु पांच धनुष के अन्तर पर रह गए, महाबल ने दाहिनी ओर अश्व घुमाये और वेग से घोड़े फेंके। मागध सैन्य ने समझा कि शत्रु पराङ्मुख हो भाग चले। उन्होंने वेग से दौड़ कर भागते हुये लिच्छवि सैन्य पर धावा बोल दिया। यह देख कर सिंह ने मध्यभेदी व्यूह के सेनानायक वज्रनाभि को अपने अश्वारोही और रथी जनों को पार्श्व से शत्रु पर जनेवा काट करने का आदेश दिया। इससे शत्रु का पृष्ठ देश अरक्षित हो गया। तथा शत्रु सैन्य अपनी कठिनाई को समझ गई। इसी समय सिंह ने पक्षभेदी व्यूह को आगे बढ़ कर शत्रु सैन्य में घुस कर उसके व्यूह को छिन्न-भिन्न करने का आदेश दिया।

देखते ही देखते मागध सैन्य में अव्यवस्था फैलने लगी और उस की आक्रमण करने वाली सेना तीन ओर से घिर गई। यह देख सोम-प्रभ ने पक्ष-सेनापति सुगुप्त को स्थिर होकर रथियों और हाथियों से युद्ध

करने का आदेश दे, कच्छ-स्थित भोज, समुद्रपाल और आन्ध्र-सामन्त को वृत्ताकार घूम कर शत्रु के पक्ष भाग पर दुर्धर्ष आक्रमण का ' दिया। इस समय मागधी और लिच्छवि सेना आठ योजन विस्तार में फैल कर युद्ध करने लगी। अपने पक्ष-भाग पर दो ओर से आक्र होता देख सिंह ने हाथियों के शुद्ध-व्यूह को शत्रु के अग्रभाग में देने का आदेश दिया। मदमस्त, उन्मत्त हाथी चीखते चिंघाड़ते भारी लोह-शृंखलाओं को सूँड में लपेट कर चारों ओर घुमाते मागध के अग्रभाग को कुचल-कुचल कर छिन्न-भिन्न करने लगे। ऊपर से हाथी-सवार सैनिक बाण-वर्षा करते चले। यह देख सोमप्रभ ने आठ सहस्र सुरक्षित पादातिकों को छोटे खड्ग लेकर घुटनों के बल रेंग-रेंग कर हाथियों के पैरों और पेट पर करारे आघात करने का आदेश दिया। इसी कार्य में सुशिक्षित मागध पादाति हाथियों की मार से बच कर उन के पार्श्व में हो उनके पैरों और पेट में खड्ग से गम्भीर आघात करने और उछल २ कर उनकी सूँड काट २ कर फेंकने लगे। सूँड कटने से तथा पैरों और पेट में करारे घाव खा २ कर हाथी विकल हो महावत के अंकुश का अनुशासन न मान आगे-पीछे इधर-उधर अपनी और शत्रु की सेना को कुचलते हुए भाग चले। सिंह ने फिर आठ सहस्र कवच-धारी अश्वों को आगे बढ़ा कर उन्हें आदेश दिया कि वे शत्रु की सेना के चारों ओर घूम २ कर चोट पहुँचावें। सोमप्रभ ने यह देखा तो वह हाथियों को आगे कर तथा दोनों पार्श्वों में रथी स्थापित कर आगे पीछे अश्वारोही ले लिच्छवि सैन्य के मध्य भाग में सूई की भांति घुस कर उसके उरस्य तक जा पहुँचा। लिच्छवि-सैन्य की शृंखला भंग हो गई। तब मागध अश्वरोही सेना तेजी से अभिसृत, परिसृत, अतिसृत, अपसृत, गोमूत्रिका, मण्डल, प्रकीर्णिका, अनुवेश, भग्नरक्षा आदि विविध गतियों से शत्रु-सैन्य में घुस कर उसे मथने लगी। अधमरे अश्व-गज चिल्लाने लगे। घायल सैनिक चीत्

भट हुंकृति करके भिडने और खटाखट शस्त्र चलाने लगे। दोनों ही पक्षों का सतुलन ऐसा हुआ कि प्रत्येक क्षण दोनों ही जय की आशा करने लगे। अब सिंह ने परिस्थिति विकट देख उरस्थ में हाथियों के शुद्ध-व्यूह को स्थिर होकर युद्ध करने तथा रथियों के चारों ओर घूम कर शत्रुओं को दलित करने का आदेश दिया। पादाति भट जहां तहां जम कर बाण, शूल, शक्ति और धनुष से शस्त्र-वर्षा करने लगे।

सम्राट् युद्धस्थल से सौ धनुष के अंतर पर अपने प्रसिद्ध हाथी मलयागिर पर खडे युद्ध की गति-विधि देख रहे थे। क्षण २ पर सूचनायें उन्हें मिल रही थीं। वे शत्रु द्वारा छिन्न-भिन्न होती सेना को ढारस बँधा कर फिर इकट्ठी कर रहे थे।

अब अवसर देख कर लिच्छवि सेनापति सिंह ने दण्ड-व्यूह और प्रदर-व्यूह रच कक्ष भागों की ओर से शत्रु-सेना पर आक्रमण का आदेश दिया। सोमप्रभ ने देखा तो उसने तुरन्त दृढ़क-व्यूह रच पक्ष-स्थित सेना को मुडकर शत्रु-सैन्य पर वार करने का आदेश दिया। सिंह सन्नाह्य-अश्वों से सुरक्षित दस सहस्र अश्वों को असह्य-व्यूह में अवस्थित कर स्वयं दुर्धर्ष वेग से भाग सेना के बीच घुस गये।

जय-पराजय अभी अनिश्चित थी। सूर्य इस समय अपरान्ह में ढल चले थे। दोनों ओर की सैन्य रक्तपिपासु हो निर्णायक युद्ध करने में लगी थीं। धीरे २ युद्ध की विभीषिका बढ़ने लगी। घायल भट मृतक पुरुषों और पशुओं की ओट में होकर बाण-वर्षा करने लगे। मरे हुये हाथी, घोडो, सैनिकों तथा टूटे-फूटे रथों से युद्धस्थल का सारा मैदान भर गया। एक दण्ड दिन रहे दोनों ओर से युद्ध बन्द करने के सकेत किये गये। हाथी, घोड़े, सैनिक धीरे २ अपने २ आवास को लौटने लगे। सूर्यास्त स कुछ प्रथम ही युद्ध-विभीषिका शान्त हो गई, परन्तु इस एक ही दिन के युद्ध में दोनों पक्षों की अपार हानि हो गई। यह महा-भीषण युद्ध जब सूर्यास्त होने पर बन्द हुआ तो आहत, थकित, श्रमित योद्धा अपने २ स्थानों पर उदास और निराश भाव से लौट आये।

: १४२ :

लघु विमर्श

सेनापति सिंह ने युद्धस्थल से लौट कर तुरन्त सम्पूर्ण स्क का निरीक्षण किया। फिर घायलों और मृतकों की अविलम्ब ०' ५९' कर घायलों को जल्द-से-जल्द सेवा-केन्द्रों में भिजवाने का प्रबन्ध किया। युद्ध-बन्दियों तथा शत्रु के घायलों को अनुक्रम से शिविरों में भिजवाने के आदेश दिए। इसके बाद उन्होंने भूर्जपत्र पर युद्ध-विवरण के साथ आगे की योजनाएं भी सेनानायक सुमन के पास भिजवा दीं। फिर उन्होंने सब सेनानायकों को एकत्र कर भावी कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया। शत्रु की गतिविधि का अनुमान कर नए २ आदेश दिए। घायल और मृत सैनिकों, नायकों, उपनायकों के स्थान पर नवीनों की नियुक्ति की। स्कन्धावार की सुरक्षा की व्यवस्था और भी दृढ़ की। इसके बाद वे गहन चिन्तामग्न होकर युद्धक्षेत्र के मानचित्र को देखकर कोई योजना बनाने लगे।

सब कार्यों से निपटकर उन्होंने स्नान, भोजन और थोड़ा विश्राम किया। इस बीच जल-सेना-नायक काप्यक गान्धार ने आकर सूचना दी।

दोनों वीर सेनापति इस प्रकार परामर्श करने लगे।

सिंह ने कहा—"मित्र काप्यक, मागध सेनापति सोमप्रभ उत्तम सेनानी है।"

"क्यों नहीं, वह भी तो आचार्य बहुलाश्व का अन्तेवासी है" काप्यक ने हँसकर कहा।

सिंह ने कहा—"यद्यपि आज शत्रु की बहुत भारी हानि हुई है परन्तु हमारी क्षति भी ऐसी नहीं जिसकी उपे- -"

"क्या शासानुशास का दर्पदलन करके सिंह आज मागधों से हतोत्साह हुए हैं ?

"नहीं मित्र, परन्तु मैं वस्तुस्थिति कहता हूँ। अब सम्भवतः कल पाटलिग्राम तीर्थ से गंगा पार कर वैशाली पर आक्रमण करेंगे। निरर्थक प्रकाश युद्ध करके नर-संहार करावेंगे।"

"तो मित्र, पाटलिग्राम तीर्थ से गंगा पार करना इतना आसान नहीं है।"

"तेरे रहते ? यह मैं जानता हूं मित्र, वैशाली की लाज तेरे हाथ है।"

"चिन्ता नहीं मित्र सिंह, वचन देता हूँ मागध गंगा के उस ओर का तट न छू सकेंगे।"

"आश्वस्त हुआ मित्र, क्या तुझे कुछ चाहिए ?"

"नहीं मित्र, मैं चाहता हूँ तू विश्राम कर।"

"तो मित्र एक बात ध्यान में रखना। मागध कदापि दिन में गंगा पार न करेंगे।"

"तब तो और अच्छा है, हमें अपनी योजना सफल करने का सुअवसर मिल जायगा।"

"तो मित्र, अब मैं विश्राम करूंगा।"

"निश्चिन्त रहो सेनापति !"

दोनों विदा हुए।

———

: १४३ :

व्यस्त रात्रि

वह रात और दूसरा दिन शान्ति से सिंह का व्यतीत हुआ दोनों ओर के सैनिक अपने २ मृत सैनिकों, घायलों वन्दियों की व्यवस्था में रत रहे। सूर्यास्त के समय सिंह को सूचना मिली—पाटलि-ग्राम के गंगा-तट पर हाथियों की बड़ी भीड़ एकत्रित है। मगध-सेना संभवतः आज ही रात में इस पार उतरना चाहती है। सिंह ने तुरन्त कर्त्तव्य स्थिर किया। एक भूर्जपत्र पर मिट्टी की मोहर लगा, सिंही-संगम पर अवस्थित काप्यक के पास भेज दिया। दूसरा पत्र उसी प्रकार सेनापति और गण-पति के पास भेज दिया। जिनमें सूचना थी कि युद्ध आज रात ही को आरम्भ हो रहा है। गान्धार काप्यक ने आदेश पाते ही पाटलि-ग्राम के सामने वाले घाट पर आकर अपनी योजना ठीक की। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि थी। गहरा अन्धकार छाया था। हिलते हुए गंगाजल में कांपते हुए तारे टिमटिमा रहे थे। उस ओर मगध शिविर में दूर कहीं कहीं आग जल रही थी। इधर के तट पर काप्यक ने धनुर्धारियों की एक सुदृढ़ पादाति-सेना को गंगा-तीर के गहन वन में छिपा दिया। उनमें से बहुत तो अपने धनुषवाण ले वृक्षों पर चढ़ गए। बहुत से तटवर्ती ऊँचे २ ढहों पर चढ़ गये। बहुत से पेड़ों की आड़ में छिपकर चुपचाप बैठ गए। इनका नेतृत्व उपनायक प्रियवर्मन कर रहा था।

भटों की दूसरी टुकड़ी बड़े २ खड्ग और शूल लिए हुए गंगा-तट पर फैले हुए बालू के मैदान में घाट के नीचे की ओर सिंही-संगम तक चुपचाप पृथ्वी पर लेट गयी और संकेत प्रतीक्षा करने लगी। इनका ने

धनुष, शूल और खड्गधारी तीसरी सेना को रणतरियों में सजाकर कश्यप ने अपने नेतृत्व में ले लिया। प्रत्येक तरी में पचास योद्धा थे। ये रणतरी मरकट-ह्रद से गंगा-तीर तक आड़ में अवस्थित चुपचाप आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी।

सब ओर सघन अन्धकार और नितान्त सन्नाटा छाया हुआ था। किसी जीवित प्राणी के अस्तित्व का यहां पता ही नहीं लगता था।

अभी रात एक पहर गई थी। काश्यप ने धीवरों के दल के पास जाकर एक २ को ध्यान से देखा। उनमें से एक तरुण को संकेत से पास बुलाया। पास आने पर कहा—

"तुम्हारा क्या नाम है मित्र ?"

"शुक, भन्ते सेनापति।"

"तुम में कितना साहस है, मित्र ?"

"बहुत है सेनापति !"

"सच ?" काश्यप ने हँसकर कहा। तरुण की धवल दन्तपंक्ति भी अन्धकार में चमक उठी। कपिल ने उसके उसी रात के जैसे गहन कृष्ण कन्धों को छूकर कहा—

"शुक, एक गुरुतर कार्य कर सकोगे ?"

"निश्चय सेनापति !"

"पर प्राण-संकट आया तो ?"

"कार्य पूरा होने पर आवे तो हानि नहीं, भन्ते !"

"पर पहिले ही आया तो ?"

"ऐसा हो ही नहीं सकता, सेनापति !"

"तुम बड़े वीर हो प्रिय, पर काम बहुत भारी है।"

"आप कहिए तो ?"

"उस पार धार चीरकर जा सकोगे ?"

"इसमें कौन कठिनाई है, वहां जाकर क्या करना होगा, भन्ते ?"

"जल में छिपे रहना होगा। ठीक पाटलि-ग्राम के घाट के नीचे।"

"मुझे छिपने के सौ हथकण्डे याद हैं, भन्ते!"

"पर वहां शत्रु की अनगिनत नाव हैं, सब पर चौकन्ने मागध धनुर्धारी भट हैं।"

"पर शुक को कौन देख पा सकता है, सेनापति? मैं जल ही जल में डुबकी लगाता जाऊँगा फिर किसी नाव की पैंदी में चिपक जाऊँगा। बड़ी मौज होगी, भन्ते!"

"परन्तु इतना ही नहीं शुक, तुम्हें और भी कुछ करना होगा।"

"और क्या सेनापति!"

"ज्यों ही तुम देखो कि शत्रु की नावें भटों से भरी इस पार आने को हैं तुम्हें हमें संकेत करना होगा।"

शुक ने दो उंगलियां मुंह में लगाकर एक तीव्र शब्द किया और कहा—"इसी तरह शब्द करूंगा, भन्ते! वे समझेंगे कोई पानी का पक्षी बोल रहा है।"

कास्यप ने हँसकर कहा—"ऐसा ही करो शुक!"

फिर उन्होंने अंधकार को भेदकर अपनी दृष्टि उस पार पाटलि-ग्राम के पार्श्व में पड़े मगध-स्कन्धावार की ओर दौड़ाई। फिर उन्होंने कहा—"तो शुक, अब देर न करो। तुम्हें क्या चाहिए?"

"कुछ नहीं। यह मेरे पास है।" उसने एक विकराल छुरा अपनी फेंट से निकालकर दिखाया और छप से पानी में पैठ गया।

कुछ देर तक कास्यप उस साहसी वीर की ओर आशा-भरी दृष्टि से देखते रहे। इसके पीछे उन्होंने चुपचाप गहन वन में प्रवेश किया। एक झाड़ी में थोड़ा स्थान था, उसे स्वच्छ करके दो सैनिक वहां बैठे थे, कास्यप के संकेत पर उन्होंने प्रकाश किया। कास्यप ने कुछ पंक्तियां भूर्जपत्र पर लिखकर मिट्टी की मुहर कर सिंह के पास उल्काचेल भेज

दी। फिर उन्होंने उपनायकों से परामर्श किया, उन्हें आदेश दिए और फिर सब.........

काश्यप तन्मय हो संकेत की प्रतीक्षा करने लगे।

अकस्मात् दूर से वही क्षीण शब्द सुनाई पड़ा। कुछ ठहरकर फिर वही शब्द हुआ। प्रियवर्मन ने अपने भटों को संकेत किया, सब ने सावधान हो अपने २ धनुष पर तीर चढ़ा लिये। वे गंगा-तीर पर घने अन्धकार में आंख गड़ा २ कर देखने लगे। नीरवता ऐसी थी कि प्रत्येक की सांस सुनाई दे रही थी। काश्यप की रणतरियों में भी हलचल हो रही थी। पर यहां भी सब कुछ निःश्वास। काश्यप गंगा तीर के एक सघन वृक्ष की छाया में एक तरी में खड़े चारों ओर चौकन्ने हो देख रहे थे।

जल में शब्द सुनाई दिया—छप छप। घाट से कुछ नीचे की धार बहुत उथली थी। उसी ओर से वह शब्द आ रहा था। शब्द निकट आने लगा। काली २ छाया बराबर जल में आगे बढ़ रही थी। प्रिय वर्मन ने संकेत किया, बाणों की एक प्रबल बाढ़ धनुष से निकली।

गंगा की मध्य धार में तैरती नौकाओं में से चीत्कार सुनाई दी। पतवार के शब्द पीछे की ओर लौटते सुनाई देने लगे। काश्यप ने प्रिय वर्मन को एक सन्देश भेजा। क्षण भर में फिर सन्नाटा छा गया। काश्यप सोचने लगे कि शत्रु क्या अब इस रात चेष्टा न करेगा? परन्तु इसी समय उन्हें शुक का शब्द फिर सुनाई दिया। काश्यप ने प्रिय-दर्शन के पास सन्देश भेजा—

"शत्रु अधिक तैयारी से आ रहा है, सावधान रहो।"

गंगा की धार में अनगिनत नावें तैरती दिखाई दीं। चप्पलें चलने के शब्द स्पष्ट दीख पड़ने लगे। सैंकड़ों नावें तीर की भांति धँसी चली आ रही थीं। प्रियवर्मन् की सेना अन्धाधुन्ध बाण वर्षा रही थी। परन्तु शत्रु वेग से बढ़ा ही आ रहा था। उसकी नावें इस किनारे पर आ

लगीं। कपिल ने तट पर एकत्रित पत्तों और लकड़ियों में आग लगा दी। उसके प्रकाश में सबने देखा—शत्रु के अनगिनत भट इधर तट पर आ रहे हैं, और भी चले आ रहे हैं। प्रियवर्मन् के धानुष्क बाण-वर्षा कर रहे थे। प्रकाश की सहायता से उनके बाणों से विद्ध हो हो कर शत्रु जल में गिर रहे थे। शत्रु की जो सेना थल पर उतरने लगी, पुष्पमित्र की टुकड़ी उस पर टूट पड़ी। तट पर गहरी मार काट मच गई। इसी समय ही सैकड़ों रथतरी गंगा में इधर उधर फैल गईं। उनमें लौहलोह-शृंगों से टकरा कर मागधी नावों में छिद्र हो गए। वे डूबने लगीं।

शूलों और खड्गों से युद्ध तुमुल हो गया। दोनों ओर के वीर चीत्कार करते हुए युद्ध करने लगे। काप्यक ने देखा—एक सुदृढ़ नौका पर एक व्यक्ति खड़ा आदेश दे रहा है। काप्यक ने साहस कर अपनी तरणी उस ओर बढ़ाई। वह तट के समीप ही था। काप्यक ने देखा—वह कवच से सुसज्जित है। बाण और खड्ग की चोट उस पर काम न देगी। काप्यक धीरे से अपनी नाव से जल में कूद पड़े और छिपकली की भाँति उछल कर शत्रु की नाव पर जा कवच-धारी के सिर पर गदा का एक भरपूर प्रहार किया। चोट से वह भहरा कर जल में आ गिरा। काप्यक भी गदा फेंक, खड्ग ले जल में कूद पड़े। इसी समय मगध की अनगिनत नावों ने दोनों को घेर लिया। काप्यक उस मूर्छित पुरुष को बाएं हाथ में उठाए दाहिने हाथ से दोनों ओर खड्ग चला रहे थे। परन्तु उसका कवच सहित भारी बोझा उनसे सम्हल नहीं रहा था। उधर उन पर चारों ओर से प्रहार हो रहे थे। इसी समय एक बर्छा उनकी जंघा में घुस गया। कवचधारी-व्यक्ति उनके हाथ से छूट गया। उन्हें मूर्छा ने घेर लिया। पर मूर्छित होते २ उन्होंने अपने निकट एक सुपरिचित मुख देखा, वह शुक था। उसका भारी दांव रक्त से भरा था और वह प्रबल प्रयास से काप्यक और कवचधारी को तट की ओर ला रहा था।

: १४४ :

अभिसार

वैशाली के राजपथ जन-शून्य थे। दो दण्ड रात जा चुकी थी। युद्ध के आतङ्क ने नगर के उल्लास को मूर्छित कर दिया था। कहीं २ प्रहरी खड़े उस अन्धकार-रात्रि में भयानक भूत से प्रतीत हो रहे थे। दो मनुष्य-मूर्तियां अन्धकार को भेदन करतीं, हर्म्यों की छाया में वैशाली के गुप्त-द्वार के निकट आ पहुंचीं। एक ने द्वार पर आघात किया। भीतर से प्रश्न हुआ—'संकेत ?'

मनुष्य-मूर्ति ने मृदुस्वर में कहा—'अभिनय" हल्की चीत्कार करके द्वार खुल गया। दोनों मूर्तियां भीतर घुस कर राजपथ छोड़ अंधेरी गलियों में अट्टालिकाओं की परछाईं में छिपती छिपती आगे बढ़ने लगीं। प्रत्येक मोड़ पर एक काली छाया आड़ से निकल कर आगे बढ़ती और दोनों मूर्तियां निःशब्द उसका अनुसरण करतीं।

सप्तभूमि-प्रासाद के सिंह द्वार पर आकर दोनों मूर्तियां रुक गईं। संकेत के साथ ही द्वार खुल गया और आगन्तुकों को भीतर ले द्वार फिर उसी प्रकार बन्द हो गया।

प्रासाद में सन्नाटा था। न रंग-बिरंगे प्रकाश, न फव्वारे, न दास-दासियों की-दण्डधरों की भाग दौड़। दोनों व्यक्ति चुपचाप प्रतीहार के साथ पीछे पीछे चले गए। सातवें अलिन्द को पार करने पर देखा-एक और काली मूर्ति एक खम्भे के सहारे खड़ी है। उसने आगे बढ़कर कहा—"इधर से भन्ते"

प्रतीहार वहीं रुक गया। नवीनमूर्ति स्त्री थी। वह सर्वाङ्ग काले कपड़े से आच्छादित थी। दोनों आगन्तुक कई प्राङ्गण, अलिन्द और

कक्षों को पार करते हुए कुछ सीढ़ियां उतर, एक छोटे-से द्वार पर पहुंचे जो चाँदी का था। इस पर अतिभव्य जाली का काम हो रहा था। इस जाली में छन २ कर रंगीन प्रका वाहर पड रहा था।

द्वार खोलते ही देखा—एक बहुत विशाल कक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण था। यद्यपि यह उतना बड़ा न था जहां नागरिक जनों का सत्कार होता था, परन्तु उत्कर्ष की दृष्टि से इस कक्ष के सम्मुख उसकी गणना नहीं हो सकती थी। यह सम्पूर्ण भवन श्वेत और काले पत्थरों से बना था। और सर्वत्र ही सुनहरी पच्चीकारी का काम हो रहा था। उसमें बडे २ स्फटिक के अष्टपहलू अमूल्य खम्भे लगे थे जिनमें मनुष्य का हू-बहू प्रतिबिम्ब सहस्रों की संख्या में दीखता था। विशाल भावपूर्ण चित्र भीतों पर अंकित थे। सहस्र दीप-गुच्छों में सुगन्धित तेल जल रहा था। धरती पर एक महामूल्यवान् रंगीन रत्न-कम्बल बिछा था, जिस पर पैर पडते ही हाथ भर धँस जाता था। ठीक बीचों-बीच एक विचित्र आकृति की सोलह पहलू ठोस सोने की चौकी पड़ी थी, जिस पर मोर-पख के खम्भों पर मोतियों की झालर लगा एक चँदोवा तना हुआ था। तथा पीछे कौशेय के स्वर्ण-खचित पर्दे लटक रहे थे। जिनमें ताजे पुष्पों की वीथिकाएं बडी ही कारीगरी से गुँथ कर लगाई गई थी। निकट ही एक छोटी-सी रत्न-जटित तिपाई पर मद्य-पात्र और पन्ने का एक बडा-सा पात्र धरा था।

हठात् सामने का पर्दा हटा, और उसमें से वह रूप-राशि प्रकट हुई, जिसके बिना यह अलिन्द सूना हो रहा था। उसे देखते ही दोनों आगंतुकों में से एक तो धीरे २ पीछे हट कर कक्ष से बाहर हो गया। दूसरा व्यक्ति स्तम्भित-सा वहीं खड़ा रह गया। अम्बपाली आगे बढ़ी। वह बहुत महीन श्वेत कार्पास पहिने थी। वह इतनी महीन थी कि उसके आर-पार साफ दीख पडता था। उसमें से छन कर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रंग कमर

तक ही था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी, इसलिए उसकी कमर के ऊपर के सब अंग-प्रत्यंग स्पष्ट दीख पड़ते थे।

न जाने विधाता ने उसे किस क्षण में गढा था। कोई चित्रकार न तो उसका चित्र ही अंकित कर सकता था, न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था।

इस भुवन-मोहिनी की वह छटा आगन्तुक के हृदय को छेद कर पार हो गई। उसके घनश्याम-कुञ्चित कुन्तल-केश उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कन्धों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुँथा हुआ चन्द्रभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आँखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्बफल जैसे अधर-ओष्ठ और अनारदाने के समान उज्ज्वल दाँत, गौर और गोल चिबुक बिना ही शृङ्गार के अनुराग और आनन्द बखेर रहा था।

मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी, और इसलिए उसका उन्मत्त कर देने वाला मुख स्पष्ट देखा जा सकता था। वह अपनी पतली कमर में एक ढीला-सा बहुमूल्य रंगीन शाल लपेटे हुए थी। उसकी हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अंगूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी, तथा गोरी २ कलाइयों में नीलम की पहुँची पड़ी हुई थी।

उस मकड़ी के जाले के समान महीन उज्ज्वल परिधान के नीचे सुनहरे तारों की बुनावट का एक अद्भुत घाघरा था। जो उस प्रकाश में शत सहस्र बिजलियों की भांति चमक रहा था। पैरों में छोटी २ लाल रंग की उपानत थी जो सुनहरी फीते से कसी थी।

उस समय कक्ष में गुलाबी रंग का प्रकाश हो रहा था। उस प्रकाश में अम्बपाली का इस प्रकार मानो आवरण भेदन कर इस रूप-रंग में प्रकट होना आगन्तुक व्यक्ति को मूर्तिमती मदिरा का अवतरण-सा प्रतीत

हुआ। रूप-सौन्दर्य, सौरभ और आनन्द के अतिरेक से वह भाव-विमोहित-सा स्तब्ध निस्पन्द खड़ा रहा।

अम्बपाली आगे बढ़ीं, उनके पीछे सोलह दासियां एक ही रूप रंग की मानो उसी की प्रतिमाएँ हो अर्घ्य पाद्य लिये आई थीं।

अम्बपाली ने आगन्तुक के निकट पहुँच नीचे झुक नतजानु हो, आगन्तुक का अभिवादन किया, उसके चरणों में मस्तक झुकाया। दासियां भी पृथ्वी पर झुक गईं।

आगन्तुक महाप्रतापी मगध-सम्राट् बिम्बसार थे। उन्होंने हाथ बढ़ा कर अम्बपाली को ऊपर उठाया। अम्बपाली ने कहा—'देव, पीठ पर विराजें। सम्राट् ने ऊपर का परिच्छद उतार फेंका। वे रत्नपीठ पर विराजमान हुए।

अम्बपाली ने नीचे धरती पर बैठ कर सम्राट् का अर्घ्य पाद्य गन्ध पुष्प आदि से सत्कार किया। फिर इसके बाद उसने अपनी मदभरी आँखें सम्राट् पर डाल कर कहा—"देव, इतना दुःसाहस, इतना असाध्य साधन ?"

"प्रिये, स्थिर न रह सका।"

"मैं जानती थी देव !"

"ओह, तो तुम बिम्बसार के मनोदौर्बल्य से अभिज्ञात हो ?"

"मैं प्रतीक्षा कर रही थी।"

"मैंने सोचा, अब नहीं तो फिर भी नहीं, कौन जाने यह युद्ध का दानव बिम्बसार को भक्षण ही कर ले, मन की मन ही में रह जाय।"

"शान्तं पापम् !"

"किन्तु प्रिये, तुम्हारा प्रबन्ध धन्य है !"

"देव, कोटि २ प्राणों के मूल्य से अधिक मेरे लिये आपका जीवन धन था। किन्तु शत्रुपुरी में आपका यों आना अच्छा नहीं हुआ।"

"वाह, कैसा आनन्दवर्धक है; प्रिये प्राणसखे, आज ही, इस क्षण बिम्बसार के प्राणों में यौवन दर्शन हुआ है, इस आनन्द के लिये तो कोई भी पुरुष सौ बार प्राण दे सकता है।"

"मैं कृतार्थ हुई देव", इतना कह अम्बपाली ने सुवासित मद्य का पात्र भर कर सम्राट् के आगे किया। सम्राट् ने पात्र ले अम्बपाली का हाथ पकड़ उसे खींच कर बगल में बैठा लिया और कहा—"इसे मधुमय कर दो प्रिये" और उन्होंने वह पात्र अम्बपाली के अछूते होठों से लगा दिया। इसके बाद वे गटागट उसे पी गये।

संकेत पाते ही दासियों ने क्षण में गायन वाद्य का सरंजाम जुटा दिया। कक्ष सुवासित मदिरा की सुगन्ध और सुरंग में सुरभित सुरंजित हो संगीत-लहरी में डूब गया और उस गम्भीर रात्रि में जब वैशाली में युद्ध की महती विभीषिका रक्त की नदी बहा रही थी, मगध के प्रतापी सम्राट् सुरा सौन्दर्य के दाव पर अपने साम्राज्य को लगा रहे थे।

: १४५ :

प्राणाकर्षण

उसी गम्भीर रात्रि में अर्ध रात्रि व्यतीत होने पर किसी ने भद्र-नन्दिनी के द्वार पर डंके की चोट की। प्रहरी शंकित भाव से आगन्तुक को देखने लगे। आगन्तुक देवजुष्ट सेट्ठिपुत्र भद्रगुप्त था। वह मोहक नागर वेश धारण किये वाड्वाश्व की वल्गु थामे मुस्करा रहा था। उसने सुवर्ण से भरी हुई दो थैलियाँ प्रहरी पर फेंक कर कहा—एक तेरे लिये और दूसरी तेरी स्वामिनी के लिये। आगत का वेश, सौन्दर्य, अश्व और उसकी स्वर्ण राशि देख प्रहरी प्रतीहार द्वारी जो वहां थे सभी आ जुटे और कर्तव्य-विमूढ़ की भाँति एक दूसरे को देखने लगे। सेट्ठि-पुत्र ने कहा—"क्या कुछ आपत्ति है भणे"

"केवल यही भन्ते, कि स्वामिनी आजकल किसी नागरिक का स्वागत नहीं करतीं।"

"इसका कारण क्या है मित्र ?"

"युद्ध की विभीषिका तो आप देख ही रहे हैं, राजाज्ञा है।"

"परन्तु मैं किसी की चिन्ता नहीं करता, तू मेरी आज्ञा से मुझे अपनी स्वामिनी के निकट ले चल।"

"किन्तु भन्ते······"

"क्या मैंने तुझे शुल्क और उत्कोच दोनों ही नहीं दे दिये हैं ?"

"दिये हैं भन्ते, यह आपका सुवर्ण है।"

"तब मेरे पास एक और वस्तु है, देखो" यह कह कर उसने खड्ग कमर से निकाला।

खड्ग देख और उससे अधिक नागरिक की दृढ़ मुद्रा देख कर प्रहरी प्रतीहार भय से थर २ कांपने लगे। उनके प्रधान ने कहा—"भन्ते, हमारा अपराध नहीं है, हम स्वामिनी के अधीन हैं।"

"मैं तेरी स्वामिनी का स्वामी हूं रे !" सेट्ठिपुत्र ने कहा उन्हें खड्ग की नोक से पीछे धकेलता हुआ ऊपर चढ गया।

इस पर एक प्रतीहार ने दौड कर मार्ग बताते हुए कहा—" भन्ते, इधर से"

नग्न खड्ग लिए एक तरुण सुन्दर नागरिक को आते देख दा. भय-शंकित हो पीछे हट गई।

नागर हँसता हुआ कुण्डनी के सम्मुख जा खड़ा हुआ। किंचित् कोप से कहा—

"आपको राजनियम की भी चिन्ता नहीं है भन्ते ?"

"नहीं सुन्दरी, मुझे केवल अपनी ही चिन्ता रहती है।"

"किन्तु मैं आपका स्वागत नहीं कर सकती।"

"ओह प्रिये, मैं इस थोथे शिष्टाचार की परवा नहीं करता, ै तुम।"

"किन्तु मैं बैठ नहीं सकती।"

"तब नृत्य करो।"

"आप भद्र हैं किन्तु आपका व्यवहार अभद्र है।"

"यह तो प्रिये, मैं तुमसे कह सकता हूं।"

"किस प्रकार ?"

"मैंने तुम्हारी शुल्क दे दी, आज रात तुम मेरी वशवर्तिना हो।"

"मैं जिस भांति चाहूं तुम्हारे विलास का आनन्द प्राप्त कर सकता हूं"

"सो आप खड्ग की नोक चमका कर विलास सान्निध्य प्राप्त करेंगे ?"

नागर हँस पड़ा। उसने खड्ग एक ओर फेंक कर कहा—

"ऐसी बात है तो यह लो प्रिये, परन्तु मेरा विचार था कि खड्ग से तुम आतंकित होने वाली नहीं हो।"

कुण्डनी समझ गई कि आगन्तुक कोई असाधारण पुरुष है। उसने

कहा—"भन्ते, यदि आप बलात्कार ही किया चाहते हैं तो आपकी इच्छा।"

"बलात्कार क्यों प्रिये, जितना अधिकार है उतना ही बस"

"तो भद्र, क्या आप पान करेंगे ?"

"मैं सब कुछ करूंगा प्रिये। आज की रात्रि महाकाल-रात्रि है। तुम्हारे जैसी विलासिनी के लिये एकाकी रहने योग्य नहीं। फिर आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब मैं तुम्हारे सान्निध्य में और भी प्रसन्न हुआ चाहता हूं।"

कुण्डनी विमूढ की भांति आगन्तुक का मुँह ताकने लगी। फिर उसने मन का भाव छिपा कर हँस कर कहा—"आप तो अद्भुत व्यक्ति प्रतीत होते हैं।"

"क्या सचमुच ?"

"नहीं तो क्या झूठ !" उसने दासी को पान-पात्र लाने का संकेत किया। फिर नागर से कहा—"तो आप बैठिये भन्ते !"

सेट्ठिपुत्र सोपधान आराम से बैठ गया। उसने हाथ खींच कर कुण्डनी को निकट बैठाते हुए कहा—

"तुम तो भुवन-मोहिनी हो सुन्दरी !"

"ऐसा ?" कुण्डनी ने व्यंग से हँस दिया और पानपात्र बढ़ाया।

"इसे उच्छिष्ट करदो प्रिये ?"

कुण्डनी ने शंकित नेत्रों से नागर को देखा फिर कुछ रूखे स्वर में कहा—"नहीं, भन्ते ऐसा मेरा नियम नहीं है।"

"ओह, विलास में नियम अनियम कैसा प्रिये, जिसमें मुझे आनन्द लाभ हो वही करो प्रिये ?"

"तो आप आज्ञा देते हैं ?"

"नहीं प्रिये, विनति करता हूं।"

नागर खिल-खिलाकर हँस पड़ा। उस हास्य से अप्रतिहत हो

हृदयंगिना कुण्डनी आगन्तुक को ताकने लगी। वह सोच रही ?
'क्या यह मूढ़ अकारण ही आज मरा चाहता है।'

नागर ने तभी मद्यपात्र कुण्डनी के होठों से लगा दिया। कुण्
गटागट सम्पूर्ण मद्य पीकर हँसने लगी। नागर ने कहा—"मेरे लिये .
बूँद भी नहीं छोड़ा प्रिये !"

"उस पात्र में यथेष्ट है तुम पियो भद्र !"

"उस पात्र में क्यों ? तुम्हारे अधरामृत स्पर्श से सुवासित
इसी पात्र में पीऊँगा, दो मुझे।"

"यह पात्र तो नहीं मिलेगा।"

"वाह, यह भी कोई बात है ?"

"यही बात है भन्ते, कुण्डनी ने वह पात्र एक ओर करते हुए
कहा।"

"समझ गया, तुम मुझ पर सदय नहीं हो प्रिये, मुझे आल्हादित
किया नहीं चाहतीं।"

"उनके लिये तो मैं बाध्य हूं भन्ते।"

"तो दो हला, वही पात्र भरकर उसे फिर से उच्छिष्ट करके, उसे
अपने अधरामृत की सम्पदा से सम्पन्न करके।"

"भन्ते, आप समझते नहीं हैं"

"अर्थात् मैं मूढ़ हूं"

"यदि मैं यही कहूं ?"

''तो साथ ही वह पात्र भी भर कर दो तो क्षमा कर दूंगा"

"नहीं दूंगी तब ?"

"तो क्षमा नहीं करूंगा"

"क्या करोगे भन्ते ?''

"अधरामृत पान करूंगा।"

कुण्डनी सिर से पैर तक काँप गई। पर संयत होकर बोली—"बहुत हुआ भन्ते, शिष्टनागर की भांति आचार कीजिए।"

"तो वह पात्र दो प्रिये!"

"कुण्डनी ने क्रुद्ध हो पात्र भर दिया।"

"अब इसे उच्छिष्ट भी करो!"

"कुण्डनी ने होठों से छू दिया और धड़कते हृदय से परिणाम देखने लगी। नागर ने हँसते हँसते पात्र गटक लिया। खाली पात्र कुण्डनी को देते हुए कहा—"बहुत उत्तम सुवासित मद्य है और दो प्रिये!"

कुण्डनी का मुँह भय से सफेद हो गया। पृथ्वी पर ऐसा कौन जन है जो उस विष-कन्या के होठों से छुए मद्य को पीकर जीवित रह सके। परन्तु इस पुरुष पर तो कोई प्रभाव ही नहीं हुआ। उसने कांपते हाथों से पात्र भरा, एक घूंट पिया और नागर की ओर बढ़ा दिया; नागर ने हँसते २ पीकर खाली पात्र फिर कुण्डनी की ओर बढ़ा दिया। और एक हाथ उसके कण्ठ में डाल दिया। उसे हटा कर कुण्डनी भयभीत हो खड़ी हो गई। वह सोच रही थी—'कौन है यह मृत्युञ्जय!'

नागर ने कहा—"रुष्ट क्यों हो गई प्रिये!"

"तुम कौन हो भन्ते?"

"तुम्हारा तृषित प्रेमी हूं प्रिये, निकट आओ और मुझे तृप्त हो कर आज मद्य पिलाओ। उसने अपने हाथों से पात्र भर कर कुण्डनी की ओर बढाते हुए कहा—"सम्पन्न करो प्रिये!" कुण्डनी आधा मद्य पी गई और विह्वल भाव से आगन्तुक की गोद में लुढक गई। उसकी सुप्त लुप्त वासना जाग्रत हो गई। उसने देखा इस मृत्युञ्जय पुरुष पर उसका प्रभाव नहीं है। न जाने कहां से आज की कालरात्रि में उसके विदग्ध भाग्य और असाधारण जीवन को, जिसके विलास में केवल मृत्यु विभीषिका ही रहती रही है, यह गूढ़ पुरुष आ पहुंचा है। उसने अन्धाधुन्ध मद्य ढाल ढाल कर स्वयं पीनी और उस पुरुष को पिलानी प्रारम्भ की।

अन्ततः अवश हो आत्म-समर्पण के भाव से वह अर्धनिमीलित से उससे एक चुम्बन की प्रार्थना-सी करती हुई उसकी गोद में .. गई। यह दृष्टि उन दृष्टियों से भिन्न थी जो अब तक मृत्यु ‿ देते समय वह अपने आखेटों पर डालती थी। मदिरा के आवेश में ७स उत्फुल्ल अधर फड़क रहे थे। उन्हीं फड़कते और जलते हुए अधरों मदिरा से उन्मत्त नागर ने अपने असंयत होठ रख दिये। परन्तु ५ चुम्बन न था प्राणाकर्षण था। एक विचित्र प्रभाव से अवश होकर कुण्डनी के होठ आप ही आप खुल गये, उसके श्वास का वेग बढ़ता ही गया। शरीर और अङ्ग निढाल हो गये, देखते ही देखते कुण्डनी के चेहरे पर से जीवन के चिन्ह लोप होने लगे। शरीर में रक्त का कोई लक्षण न रह गया और वह कुछ ही क्षणों में मृत होकर उस मृत्युञ्जय पुरुष-सत्त्व की गोद में ढुलक गई।

तब उसके मृत शरीर को भूमि पर एक ओर फेंक कर तृप्त होकर भोजन किये हुए पुरुष के समान आनन्द और स्फूर्ति से व्याप्त वह पुरुष निश्चिन्त चरण रखता हुआ उस तथाकथित नागपत्नी—वेश्या भद्रनन्दिनी के आवास से बाहर आ एक मुट्ठी सुवर्ण प्रहरियों दौवारिकों तथा दण्डधरों के ऊपर फेंक वाड्वाश्व पर चढ़ अन्धकार में लोप हो गया।

: १४६ :

सांग्रामिक

मागध सैन्य अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो उस रात के अभियान से लौटी। सम्राट् और सेनापति आर्य उदायि उसके साथ नहीं थे। यह अत्यन्त भयानक बात थी। वे दोनों शत्रु के बन्दी हुए या युद्ध में मारे गये इसका कोई सूत्र नहीं प्राप्त हुआ। केवल एक सैनिक ने सेनापति उदायि को बन्दी होते देखा था। परन्तु सम्राट् के सम्बन्ध के कोई भी कुछ नहीं बता सका। सोमप्रभ ने सुना तो हतबुद्धि हो गए। उन्होंने जल्दी २ एक लेख लिखकर आर्य भद्रिक के पास दक्षिण युद्ध-केन्द्र पर भेज दिया और स्वयं दौड़े हुए तटस्थ केन्द्र पर आ पहुँचे। सेना की दुर्दशा देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गए। सब विवरण सुनकर उन्होंने तत्काल ही अपना कर्तव्य स्थिर किया। प्रथम उन्होंने यह कठोर आज्ञा प्रचारित की कि सम्राट् का लोप होने का समाचार स्कन्धावार में न फैलने पावे। सेनापति भद्रिक के बन्दी होने का समाचार भी गुप्त रखा गया। आहतों की व्यवस्था और सेना का पुनर्संगठन करने की जल्दी २ जो व्यवस्था हो सकती थी उन्होंने फुर्ती से कर डाली। इसी समय आर्य भद्रिक भी आ पहुंचे। सोम ने कहा—"आर्य सेनापति, बड़े ही दुर्भाग्य की बात है"

"क्या सम्राट् हत हुए ?"

"ऐसी कोई सूचना नहीं है"

"और उदायि ?"

"उन्हें बन्दी होते देखा गया है।"

"सम्राट् के साथ कौन था ?"

"आर्य गोपाल थे, वे भी नहीं लौटे हैं ।"

"उन्हें जीवित या मृत किसी ने देखा है ?"

"नहीं ।"

"यह संदिग्ध है भद्र, सम्राट् के अन्वेषण के लिये अभी भेजने होंगे ।"

"वह सब सम्भव व्यवस्था मैंने कर दी है, पर आपके संदेह से सहमत हूं भन्ते सेनापति, कैसे सम्राट् और आर्य गोपाल दोनों ही ए बार ही लोप हो गए ।"

"किसी भी सैनिक ने उन्हें देखा ?"

"किसी ने भी नहीं ।"

"तो उन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया ?"

इतना कहकर आर्य भद्रिक गहन चिन्ता में पड़ गये । सोमप्रभ महासेनापति का मुंह ताकने लगे । उन्होंने कहा—"क्या कोई गूढ़ रहस्य है भन्ते सेनापति ?"

"यदि है तो अतिभयानक भद्र, नौसेना की कैसी हालत है ?"

"वह अब युद्ध करने के योग्य नहीं रही, नौका सब छिन्न-भिन्न हो चुकीं । नौकाओं पर किसी योजना से प्रहार हुआ है ।"

"किन्तु सोमभद्र, तुमने कैसे इस अभियान में सहमति दी ?"

"सम्राट् ने नहीं माना भन्ते सेनापति, उन्होंने बहुत हठ की ।"

"तो उन्हें जाने क्यों दिया ?"

"इसके लिये वे अड़ गये । उन्होंने इस अभियान की योजना स्वयं बनाई थी । नेतृत्व भी स्वयं किया था । आर्य उदाथि को सहमत होना पड़ा और मुझे भी स्वीकृति देनी पड़ी । परन्तु ऐसी दुर्घटना की तो सम्भावना न थी ।"

"यदि सम्राट् हत हुए ?"

"तो भन्ते सेनापति अतिदुर्भाग्य का विषय होगा ।"

"भद्र सोम, यदि सम्राट् हत हुए तो जम्बूद्वीप की अपार क्षति होगी। पूर्व का साम्राज्य भंग हो जायगा।"

"पर यदि बन्दी हुए ?"

"पर किसी ने देखा तो नहीं।"

"इसी में एक गूढ संकेत मुझे मिलता है भद्र, हमें गुरुतर कार्य करना होगा।"

"मैं प्राणान्त उद्योग करूंगा भन्ते सेनापति !"

"आश्वस्त हुआ भद्र, अब हमें मागध सैन्य दो स्वतन्त्र भागों में विभक्त करनी होगी, एक भाग को तुम लेकर वैशाली को निर्दयता-पूर्वक रौंद डालो। दूसरे भाग को मैं लेकर लिच्छवि महासैन्य पर घोर संकट उपस्थित करूंगा। उसका वैशाली से सम्बन्ध-विच्छेद करना होगा। मैं एक भी लिच्छवि भट को जीवित नहीं लौटने दूंगा।"

"और मैं एक भी हर्म्य, एक भी प्रासाद एक भी अट्टालिका वैशाली में नहीं रहने दूंगा, मैं सब को भस्म का ढेर बनाकर वैशाली को खेत बनाकर उस पर गधों से हल जुतवाऊंगा।"

"तभी सत्य प्रतिकार होगा भद्र, सम्राट् मृत हों या बन्दी। जम्बूद्वीप का पूर्वी द्वार भंग नहीं हो सकता, जब तक यह ब्राह्मण खड्गहस्त जीवित है। मगध-साम्राज्य अजेय अखण्ड है।"

महासेनापति भद्रिक का अंग-प्रत्यंग क्रोध से काँप उठा, उनके नेत्रों से एक तीव्र ज्वाला-सी निकलने लगी। उन्होंने उसी समय सब सेनापति नायक उपनायकों को बुलाकर एक अत्यन्त गोपनीय युद्ध-मन्त्रणा की।

सम्राट् का लोप होना यत्न से गुप्त रखा गया। सेनापति उदायि आहत हुए हैं यह प्रचारित किया गया।

: १४७ :

द्विशासन

पाटलिग्राम के पूर्वीय भाग पर मागध सैन्य का अधिकार और पश्चिमीय भाग पर लिच्छवियों का। दोनो ओर से रह रह बाण-वर्षा हो रही थी। ग्राम के बहुत-से घर आग से जल और गये थे। ग्रामवासी बहुत-से भाग गये थे। जो रह गये थे—वे अपने घरों के खण्डहरों में छिपे थे। गली-कूचों में मृत नागरिकों और सैनिक की लोथें सड़ रही थीं। कूड़ा-कर्कट और सड़ी अधजली लोथों को सूअर, गृद्ध और दूसरे वन्य पशुओं ने खोद २ कर बखेर दिया था। दुर्गन्ध से नाक नहीं दी जाती थी। ग्राम में कोई जीवित व्यक्ति नहीं दीख रहा था।

अभी एक आक्रमण होकर चुका था। मागधों ने वज्जी सैन्य को मार भगाया था। एक मागध सेना-नायक ने अश्वारूढ़ हो एक सैनिक टुकड़ी के साथ ग्राम के मध्य भाग में खड़े हो ऊंचे स्वर से ढोल पीट २ कर घोषणा की—"इस पाटलि ग्राम पर मगध सम्राट् का अधिकार है जो कोई लिच्छवि गण को बलि देगा उसे सूली होगी। जो कोई लिच्छवि जन को आश्रय देगा उसका शिरश्छेद होगा। ग्रामवासियो! अपने २ घरों से निकल आओ। तुम्हें मगध-सम्राट् अभय-दान करते हैं।" घोषणा सुनकर एक दो कुत्ते भूंस उठे। परन्तु कोई नर-नारी नहीं आये। नायक ने फिर ढोल पीट कर घोषणा की। तब एक वृद्ध ने फूटे हुए खण्डहर की ओर से सिर निकाल कर देखा। वह कांपता कांपता बाहर आया। आकर हाथ जोड़ कर बोला—"भन्ते सेनापति, मैं मागध प्रतिजन हूं, मुझे अभय दो, मैं सम्राट् को बलि दूंगा।"

"तो भणे, तुझे अभय, किन्तु ग्राम में और कौन है ?"

"जीवित मनुष्य कोई नहीं ।"

"सब मृतक हैं ?"

"सब"

"शेष कहां गए ?"

"भाग गये ।"

"तुम क्यों नहीं भागे ?"

"भाग नहीं सकता, भन्ते सेनापति, वृद्ध हूं, जर्जर हूं, शक्तिहीन हूं ।"

"तो भणे, तू मागध प्रतिजन है न ?"

"हां सेनापति !"

"तो तुझे अभय, मगध-सम्राट् को बलि देगा ?"

"दूंगा सेनापति !"

इसी समय बाणों की वर्षा करती हुई लिच्छवि सैन्य की एक टुकड़ी ने इस मागध टुकड़ी पर आक्रमण किया। उनका ढोल छीन लिया। कुछ सैनिक मारे गये। कुछ भाग गये। बूढ़ा फिर भागकर घर के छप्पर के नीचे छिप गया ।

लिच्छवि नायक ने ढोल पीट कर घोषणा की—"इस पाटलिग्राम पर लिच्छविगण का अधिकार है, जो कोई मागध-जन को आश्रय देगा उसे सूली होगी। पाटलि-ग्रामवासियो ! सुनो, बाहर आओ। प्रतिज्ञा करो—कि तुम वज्जी गण को बलि दोगे, तुम्हें अभय।"

वृद्ध ने फिर सिर निकाल कर देखा। कांपते २ बाहर आया। आकर उसने सेनापति नायक को अभिवादन किया।

नायक ने पूछा—"ग्राम के और जन कहां हैं ?"

"जीवित सब भाग गए। मृत यत्र तत्र पड़े हैं। कुछ को वन्य पशु खा गये।"

"तुम नहीं भागे ?"

"भाग नहीं सका भन्ते, अशक्त हूं, रोगी हूं।"

"क्या ग्राम में अन्य पुरुष नहीं हैं ?"

"जीवित नहीं भन्ते !"

"तो सुनो, तुम अब से वज्जीगण शासन के अधीन हो।"

"अच्छा भन्ते !"

"वज्जीगण को बलि देना होगा !"

"दूंगा भन्ते !"

"मागधों को आश्रय देने से सूली होगी !"

"समझ गया भन्ते !"

"तो तुझे अभय"

नायक अपनी सेना लेकर सड़ती हुई लोथों के बीच में होकर गया। वृद्ध फिर घर के खण्डहर में जा छिपा।

: १४८ :

रथ-मुशल-संग्राम

सोम ने साम्ब को बुलाकर कहा—"साम्ब, तू अभी मधुवन जा और महाराज विदूडभ से कह कि चापाल-चैत्य, सप्ताम्र-चैत्य, कपिनैह-चैत्य में प्रच्छिन्न सैन्य को लेकर चारों ओर आग लगाते हुए, सम्पूर्ण दुर्गों और सत्रों को सुरक्षित करते हुये दक्षिण वाम पार्श्व से वैशाली की ओर बढ़ें। मार्ग में जो पुरुष, जो घर, जो खेत, जनपद मिले, नष्ट करते जायं। तथा ज्यों ही इधर दक्षिण पार्श्व से वैशाली कोट पर आक्रमण हो वे सुरक्षित पचास सहस्र मागध भट और पचास सहस्र अपनी कौशल सैन्य लेकर दुर्धर्ष वेग से वैशाली को रौंद डालें। उनसे कहना—कल हम वैशाली की उन्मुक्त अभिषेक पुष्करिणी में एक ही काल में अपने २ खड्ग धोवेंगे। जा सूचना देकर सूर्यास्त से पूर्व ही तू आकर, मैं जहां जिस दशा में होऊँ, संदेश दे।"

साम्ब गाम्भीर्य-मूर्ति हो चला गया। सोम ने अब अपना प्रच्छिन्न महास्त्र रथ-मुशल उद्घाटित किया। अस्त्र का बारीकी से निरीक्षण किया। उसकी यन्त्रकला को यथावस्थित किया। तदनन्तर सामने हाथी पक्ष-स्थान में, अश्व उरस्य में, और रथ कक्ष में तथा पादाति प्रतिग्रह में करके 'अतिप्रतिहत' व्यूह की रचना की। इस व्यूह में बारह सहस्र हाथी, ६० सहस्र अश्वारोही, आठ सहस्र रथी और ढाई लाख पादातियों ने योग दिया। रथ-मुशल महास्त्र को व्यूह के उरस्य में स्थापित गोपित कर सोमप्रभ ने सम्पूर्ण सेना की परेड की और जो जहां है, वहीं चार मुहूर्त विश्राम करने का आदेश दिया।

इसके बाद पाटलिग्राम तीर्थ पर आकर उन्होंने तीर्थ का निरीक्षण

किया। पदिकों, सेनापतियों और नायकों को पृथक् २ आदेश संकेत-शब्दों, पताका-संकेतों द्वारा व्यूह में अवस्थित सेना को पड़ने पर विभक्त करने, बिखरी सेना को एकत्र करने, चलती सेना रोकने, खड़ी सेना को चलाने, आक्रमण करती सेना को लौटाने यथावसर आक्रमण करने में, जिन २ संकेत प्रकारों की ५ ५८ समझी, सबको सुव्याख्यात किया। इसके अनन्तर कुछ आव" लेख लिख कर उन्होंने आर्य भद्रिक के पास भेज दिये और विश्राम किया।

तीन दण्ड रात्रि व्यतीत होने पर सोम ने वैशाली अभियान किया संकेत पाकर कोशलराज विदर्भ ने दूसरी ओर से चन्द्राकार सैन्य ले कर वैशाली को घेर लिया। प्रभात होने से प्रथम ही घनघोर युद्ध होने लगा। इस मोर्चे पर काप्यक गान्धार और उनके भटों ने विकट पराक्रम प्रकट किया। परन्तु सोमप्रभ लिच्छवि और गान्धारों का व्यूह तोड़ गंगा पार कर आये। रथ-मुशल महास्त्र ने अपना संहार कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह एक लोह-निर्मित विराट्काय बिना योद्धा और बिना सारथी का रथ था। इस पर किसी भी शस्त्र का कोई प्रभाव नहीं होता था। यह रथ लिच्छवि-सैन्य में घुस कर रथ हाथी अश्व पादाति घर-हर्म्य सभी को महाविध्वंस करने लगा। जो कोई इस लोह-यन्त्र की चपेट में आ जाता उसी की चटनी हो जाती। भारतीय युद्ध में सर्वप्रथम इस महास्त्र का प्रयोग किया गया था जिसका निर्माण आचार्य काश्यप ने अपनी अद्भुत प्रतिभा से किया था। इसका रहस्य अतिगोपनीय था। मरे हुए हाथियों, घोड़ों और सैनिकों के अम्बार लग गये। ढहे हुए घरों की धूल गर्द से आकाश पट गया। यह लोह-यन्त्र केले के पत्ते की भांति घरों, प्राचीरों की भित्तियों को चीरता हुआ पार निकल जाता था। इस महाविध्वंसक विनाशक महास्त्र के भय से प्रकम्पित विमूढ़ लिच्छवि भट सेनापति सब कोई निरुपाय रह गये। शत

सहस्र भट भी मिल कर इस निद्वन्द महास्त्र की गति नहीं रोक सके, इस लोहास्त्र का सम्बल प्राप्त कर अजेय मागधी सेना विशाल लिच्छवि सैन्य को चीरती हुई चलती चली गई। अब उसकी मार वैशाली की प्राचीरों पर होने लगी। सहस्रों भट धनुषों पर अग्नि-बाण चढ़ा २ कर नगर पर फेंकने लगे। महास्त्र ने झील तालाब और नदी के बांधों को तोड डाला, सारे हीं नगर में जलप्रलय मच गई। आग और जल के बीच वैशाली महाजनपद ध्वंस होने लगा। लिच्छवि भट प्राणों का मोह छोड युद्ध करते २ कट २ कर मरने लगे। सोमप्रभ निर्दय, निर्भय दैत्य की भांति महानरसंहार करता हुआ आगे बढ़ने लगा। मागध सैन्य ने अब बहुत मात्रा में योगाग्नि और योगधूम का प्रयोग किया। औपनिषद परघात प्रयोग भी होने लगे। मदनयोग, दूषीविष, अन्धाहक के आक्षेप से सहस्रों हाथी, घोड़े और सैनिक उन्मत्त, बधिर और अन्धे हो गये।

चार दण्ड दिन रहते सोमप्रभ वैशाली के कोट-द्वार पर जा टकराये। इसी समय कौशलराज विदूढव में अपनी सुरक्षित चमू लेकर वैशाली की परिखि पार कर वैशाली के अन्तःकोट पर आ धमके। उनके सहस्रो भट सीढ़ियां और कमन्द लगा कर प्राचीरों, दुर्गों और कंगूरों पर चढ़ गये।

वैशाली का पतन सन्निकट देख, महासेनापति सुमन ने स्त्रियों, बालकों तथा राजपुत्रों को सुरक्षित ठौर पर भेज दिया। इस समय सम्पूर्ण वैशाली धाँय-धाँय जल रहा था, और उसके कोट-द्वार के विशाल फाटकों पर निरन्तर प्रहार हो रहे थे। सेनापति सोमप्रभ हाथ में ऊंचा खड्ग लिये मागधी जनों के उत्साह की वृद्धि कर रहे थे। शत्रु मित्र सभी को यह दीख गया था कि वैशाली का किसी भी क्षण पतन सुनिश्चित है।

: १४६ :

कैंकर्य

इसी समय रक्तप्लुत खड्ग हाथ में लिये हुए गोपाल भट्ट सोमप्रभ के निकट आकर कहा—

"भन्ते सेनापति, सम्राट् का एक आदेश है।"

सम्राट् का समाचार सुनकर सोमप्रभ वेग से चिल्ला उठे 'सम्राट् की जय'। उन्होंने कूद कर गोपाल भट्ट के निकट अ कहा—

"सम्राट् जीवित हैं?"

"हैं भन्ते सेनापति!"

"कहां?"

"देवी अम्बपाली के आवास में।"

सोमप्रभ के हृदय की जैसे गति रुक गई। उसने थूक निगल कर सूखते कंठ से कहा—

"क्या कहा? कहां?"

"देवी अम्बपाली के आवास में, भन्ते सेनापति!"

"क्या सम्राट् वन्दी नहीं हुए?"

"नहीं भन्ते, वे स्वेच्छा से देवी अम्बपाली के आवास में गये हैं।"

"आप कहते हैं आर्य, स्वेच्छा से?"

"हां भन्ते सेनापति!"

सोम ने दांतों से होंठ काटे, फिर स्थिर मुद्रा से कहा—

"सम्राट् का क्या संदेश है भन्ते?"

"सम्राट् का आदेश है, कि देवी अम्बपाली के आवास की रक्षा की जाय। आवास पर लिच्छवि सैन्य ने आक्रमण किया है।"

"किस लिये आर्य ?

"सम्राट् को बन्दी करने के लिए।"

सोमप्रभ ने अवज्ञा से मुस्करा कर कहा—"इसी से भन्ते!"

फिर उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया। बगल से तूर्य लेकर एक ऊंचे स्थल पर चढ़ कर वेग से तूर्य फूंका। तूर्य की वह ध्वनि दूर २ तक फैल गई। इसके बाद उन्होंने अपना श्वेत उष्णीप खड्ग की नोक में लगा कर हवा में ऊंचा किया। इसके बाद फिर तीन बार तूर्य फूंका। इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। मागध सैन्य में जो जहां था वहीं स्तब्ध खड़ा रह गया। शत्रु मित्र आश्चर्य-चकित रह गए। युद्ध बन्द हो गया। सोमप्रभ ने तत्काल सैन्य को पीछे लौटने का आदेश दिया। कराहते हुए घायलों और जलते हुए हर्म्यों के बीच मागध सैन्य चुपचाप लौट चली। सब से आगे अश्व पर सवार मागध सेनापति सोमप्रभ खड्ग की नोक पर अपने उष्णीप की धवल ध्वजा फहराता अवनत वदन जा रहा था।

मागध स्कंधावार पर श्वेत पताका चढ़ा दी गई। वैशाली को सांस लेने का अवसर मिला।

: १५० :

महाशिलाकण्टक विनाशयन्त्र

जिस समय मागध सेनापति ने दुर्धर्ष वेग से वैशाली पर रथ-मु अभियान किया था उसी समय दक्षिण मोर्चे पर लिच्छवि सेनापि मागध महासेनाधिपति आर्य भद्रिक को तीन ओर से घेर लिया थ लिच्छवियों के पास भी एक अद्भुत महास्त्र था—इसका नाम महाशि कण्टक था। इस यन्त्र में कंकड़-पत्थर, घास-फूस, काठ-कूड़ा, जो कु तुच्छ से तुच्छ साधन मिले उन्हीं को वह बड़े वेग से शत्रु पर फेंकता और वह फेंका हुआ पदार्थ महाशिला की भांति शत्रु पर आघा करता था।

मागध-महासेनापति आर्य भद्रिक ने अपने व्यूह में हाथियों पक्ष में और अश्वारोहियों को कक्ष में रख उरस्थ में रथियों की स्थ पना करके कठिन पारिपतन्तक व्यूह की रचना की थी।

ज्योंही पूर्वीय सीमा-भूमि में सोमप्रभ ने युद्ध छेड़ा त्योंही लिच्छवि सेनापति सिंह ने महाशिलाकंटक विनाशयन्त्र को लेकर मकर-व्यूह रच मागध सैन्य पर आक्रमण किया। महाशिलाकंटक विनाशयन्त्र की प्रलयङ्कर-सी मार के सम्मुख मागध सैन्य का शीघ्र ही व्यूह भंग हो गया। महासेनापति सुरक्षित सैन्य को ले व्यूह के पक्ष में स्थित सैन्य संचालन कर रहे थे। विनाशयन्त्र से उनके पक्षस्थ हाथी जब पटापट मरने लगे और मद विकल अपनी ही सैन्य को रौंदते हुए पीछे भाग चले तब आर्य भद्रिक के लिये सैन्य को व्यवस्था में रखना दुस्सह हो गया। अन्ततः उन्होंने धनुर्धर रथियों को चौमुखा युद्ध करने का आदेश दिया

और स्वयं रक्षित सैन्य को ले पचास धनुष अन्तर पर पीछे हट भागी हुई अव्यवस्थित सेना का पुनर्संगठन करने लगे। साथ ही आसन्न संकट की सम्भावना से उन्होंने सहायक सैन्य भेजने के लिए सोमप्रभ को संदेश भेज दिया। परन्तु लिच्छवि सेनापति सिंह ने चारों ओर से मागध सैन्य पर ऐसा अवरोध डाला कि मध्याह्न होते २ आर्य भद्रिक का अपने स्कन्धावार और प्रधान सैन्य से सम्पूर्णरीत्या सम्बन्ध-विच्छिन्न हो गया और वे चारों ओर से लिच्छवि-कोल और कासियों की सेना से घिर गए।

अब उन्होंने आक्रमण को रोकने तथा अपनी व्यवस्था बनाए रखने के लिये—और हटना ठीक समझा। परन्तु इसका प्रभाव उल्टा पड़ा। मागध-सैन्य हतोत्साह हो गई। इसी समय सिंह प्रबल वेग से अपने और गान्धारों के चुने हुए सम्मिलित चालीस सहस्र कवचधारी अश्वारोही ले तथा अगल-बगल रथियों को साथ लिए सुई की भांति मागध सैन्य को चीरते हुए उसके बीच में घुस गए और सेना का सारा संगठन नष्ट कर फिर पक्ष भाग में आ अवस्थित हुए।

इस समय सूर्य अपराह्न की पीली तिरछी किरणें उन पर फेंक रहा था, उस गिरते हुए सूर्य की पीली धूप इस महान् सेनानायक के चांदी के समान चमकते हुए श्मश्रुओं में से गहरी चिन्ता और भीति की रेखाएं व्यक्त कर रही थी।

सेनापति को क्षण २ सोमप्रभ से सहायता पाने की आशा थी। सेनापति के निकट ही सोम के स्थापित—धान्वन, वन, पार्वत दुर्गों में कोशलपति के पचास सहस्र भट छिपे हुए थे। परन्तु उनमें से एक भी आर्य भद्रिक की सहायतार्थ नहीं आया। जब एक पहर दिन शेष रह गया तो आर्य भद्रिक सर्वथा निराश होगये। इसी समय उन्हें सेनापति सोमप्रभ के युद्ध बन्द कर देने का समाचार मिला। आर्य भद्रिक

मर्मान्तक वेदना से तड़प उठे, और वे पांच सौ धनुष पीछे ० खण्ड-युद्ध करने लगे।

सेनापति सिंह ने समझा—अब जय निश्चित है। वे अपने को निरन्तर अन्त तक युद्ध जारी रखने का आदेश दे स्कन्धावार को आए। अभी दो दण्ड दिन शेष था।

: १५१ :

छत्र-भङ्ग

सम्राट् बिम्बसार अलस भाव से शैया पर पड़े थे। उनके शरीर पर एक कौशेय और हलका उत्तरीय था। उनके केशगुच्छ पीछे बँधे थे। अधिक आसव पीने तथा रात्रि-जागरण के कारण उनके बड़े २ नेत्र गुलाबी आभा धारण किये अध-खुले नूतन कमल की शोभा धारण कर रहे थे। द्वार पर बहुत से मनुष्यों का कोलाहल हो रहा था परन्तु सम्राट् को उसकी चिन्ता न थी, वे सोच रहे थे देवी अम्बपाली का देव-दुर्लभ सान्निध्य सुख। जिसके सम्मुख राज-वैभव, साम्राज्य और अपने जीवन को भी वे भूल गये थे।

परन्तु द्वार पर कोलाहल के साथ शस्त्रों की झनझनाहट तथा अश्वों और हाथियों की चीत्कार भी अधिकाधिक बढ़ती गई। सुरा स्वप्न की कल्पना में यह कटु कोलाहल सम्राट् को विघ्न रूप प्रतीत हुआ। उन्होंने हाथ बढ़ाकर निकट आसन्दी पर रखी स्फटिक काष्यक की ओर हाथ बढ़ाया, दूसरे हाथ में पन्ने का हरित पात्र ले उसमें समूचा पात्र उडेल दिया परन्तु उसमें एक बूंद भी मद्य नहीं था। पात्र को एक ओर विरक्ति से फेंककर उन्होंने एक बार पूरी आंख उघाड कर कक्ष में देखा—वहां कोई भी व्यक्ति न था। सम्राट् ने हाथ बढ़ा कर चांदी के घन्टे पर जोर से आघात किया। परन्तु उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मदलेखा के स्थान पर स्वयं देवी अम्बपाली दौड़ी चली आ रही हैं। उनके मुंह पर रक्त की एक बूंद भी नहीं है और उनकी आंखें भय से फट रही हैं, तथा वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं।

"हुआ क्या, देवी अम्बपाली?" सम्राट् ने संयत होने की चेष्टा करते हुए पूछा।

"आवास पर आक्रमण हो रहा है, देव !"

"किस लिये ?"

"आपको पकड़ने के लिये।"

"क्या मैंने लिच्छवि सेनापति गणपति और राजप्रमुख जनों बन्दी करने की आज्ञा नहीं दी थी ?"

"दी थी देव !"

"तो वे बन्दी नहीं हुए ?"

"नहीं देव, वे आपको बन्दी किया चाहते हैं।"

"हुं, कह कर सम्राट् बिम्बसार उठ बैठे। उनका गौर शरीर एक बार कम्पित हुआ। होठ सम्पुटित हुए। उन्होंने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से अम्बपाली की ओर देख कर हँसते हुए कहा—"फिर इतना अधैर्य क्यों, प्रिये ! जब तक यह मागध सम्राट् का खड्ग है" उन्होंने अपने निकट रक्खे हुए अपने खड्ग की ओर देख कर कहा।

"देव, मुझे कुछ अप्रिय सन्देश सम्राट् को निवेदन करना है।"

"अप्रिय संदेश ? युद्धकाल में यह असंभाव्य नहीं। तुम क्या कहना चाहती हो देवी अम्बपाली ?"

"देव, सेनापति उदायि मारे गये।"

"उदायि मारे गये ? सम्राट् ने चीत्कार कर कहा।"

"और आर्य भद्रिक निरुपाय निरवलम्ब हैं, वे घिर गए हैं और किसी भी क्षण आत्म-समर्पण कर सकते हैं।"

"अरे, तब तो आयुष्मान् सोमप्रभ और मेरे हाथियों ही पर आशा की जा सकती है।"

"भद्र सोमप्रभ ने युद्ध बन्द कर दिया देव !"

"युद्ध बन्द कर दिया ? किस की आज्ञा से ?"

"अपनी ही आज्ञा से देव !"—अम्बपाली ने मरते हुए प्राणी के से टूटते स्वर में कहा।

सम्राट् का सम्पूर्ण अंग थर-थर कांपने लगा। मस्तक का सम्पूर्ण रक्त नेत्रों में उतर आया। उन्होंने खूंटी पर लटकता अपना मणि-खचित विकराल खड्ग फुर्ती से उठा लिया और उच्च स्वर से कहा—

"यह मागध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का लागरस्नात पूत खड्ग है। मैं इसी की शपथ खाकर कहता हूं कि अभी उस अधम वंचक का शिरश्छेद करूंगा।" उन्होंने वेग से तीन बार विजय घण्ट पर प्रहार किया।

सिंहनाद ने नतमस्तक कक्ष में प्रवेश किया। सम्राट् ने अकम्पित कण्ठ से कहा—"सिंहनाद, मुझे गुप्त-मार्ग दिखा, मैं अभी मागध स्कन्धावार में जाऊंगा। देवी अम्बपाली, भय न करो, मैं अभी एक मुहूर्त में उस कृतघ्न विद्रोही को मारकर तुम्हारे महालय का उद्धार करता हूं।"

सिंहनाद ने साहस करके कहा—"किन्तु देव ..."

"एक शब्द भी नहीं, भणे, मार्ग दिखा।"

अम्बपाली पीपल के पत्ते की भांति काँपने लगीं। उन्होंने अर्थपूर्ण दृष्टि से एक ओर को देखा। सिंहनाद ने गुप्त गर्भद्वार का उद्घाटन करके कहा—"इधर से देव!"

सम्राट् उसी उत्तरीय को अङ्ग पर भली भांति लपेट, उसी प्रकार काक-पक्ष को मुकुटहीन खुले मस्तक पर हवा में लहराते हुए गर्भ-मार्ग में घुस गए, पीछे २ सिंहनाद ने भी सम्राट् का अनुसरण किया। जाते २ उसने देवी अम्बपाली से होठों ही में कहा—

"देवी, आज इस समय सम्राट् या सोमप्रभ दोनों में से एक की मृत्यु अनिवार्य है। अब आप ही केवल इसे रोकने में समर्थ हैं। समय रहते साहस कीजिए।" वह गर्भमार्ग में उतर गया।

अपने पीछे पैरों की आहट पाकर सम्राट् ने कहा—"कौन है?"

"सिंहनाद, देव!"

"तब ठीक है, तेरे पास शस्त्र है?"

"हैं, महाराज !"

"इस मार्ग से परिचित है ?"

"हां महाराज !"

"तब आगे चल ।"

"जैसी आज्ञा, देव !"

सिंहनाद चुपचाप आगे २ और सम्राट् उसके पीछे चल दिये चलने पर सिंहनाद ने कहा—"बस महाराज !"

"अब ?"

"गंगा है, मैं पहिले देख लूं नाव है या नहीं, हमें उस पार होगा ।"

"इस पार भी तो हमारी सेना है ।"

"सब लौट गई देव ! थोड़े हाथी हैं वे भी लौट रहे हैं ।"

सम्राट् ने कसकर होठ दबाए ।

सिंहनाद अंधेरे में लोप हो गया । घड़ी भर बाद गढ़े में से ठ सिर निकाल कर कहा—

"इधर महाराज !"

सम्राट् भी चुपचाप गढ़े में कूद पड़े । एक सघन किनारे पर छो। नाव बँधी थी, दोनों उस पर बैठ गए । सिंहनाद ने नाव खेना किया ।

मागध-स्कन्धावार में बड़ी अव्यवस्था थी । सैनिक स्थान २ पर अनियम और अक्रम से खड़े भीड कर रहे थे । आग जल रही थी; घाट पर हाथियों, अश्वों और शकटों की भारी भीड़ भरी थी ।

सम्राट् विकराल नग्न खड्ग हाथ में लिये, नंगे बदन, नंगे सिर बढ़े चले गए । पीछे २ सिंहनाद पागल की भांति जा रहा था । क्षण भर में क्या होगा, नहीं कहा जा सकता था ।

भीड़-भाड़ और अव्यवस्था में बहुतों ने सम्राट् की ओर देखा भी

नहीं। जिन्होंने देखा उनमें से बहुतों ने उन्हें पहिचाना नहीं। जिसने पहिचाना वह सहमकर पीछे हट गया। सम्राट् भारी २ डग भरते सेनापति सोमप्रभ के मण्डप के सम्मुख जा खड़े हुए।

द्वार पर दो शूलधारी पहरी खड़े थे। उनके कवच अस्तंगत सूर्य की पीली धूप में चमक रहे थे। सिंहनाद ने धीरे से आकर उनके कान में कुछ कहा। वे सहमते हुए पीछे हट गए। आगे सम्राट् और पीछे सिंहनाद ने मण्डप में प्रवेश किया।

मण्डप में नायक, उपनायक, सेनापति सब विषण्ण वदन, मुंह लटकाये खड़े थे। सेनापति सोमप्रभ एकाग्र हो कुछ लेख लिख रहे थे। हठात् सम्राट् को नंगे सिर, नंगे शरीर, विकराल-खड्ग हाथ में लिए आते देख सभी खड़े हो गए। सम्राट् ने कठोर स्वर से पुकारा—

"सोम"

सोम ने देखा। उसने पास पड़ा हुआ खड्ग उठा लिया और वह सीधा तनकर खड़ा हो गया। उसने सम्राट् का अभिवादन नहीं किया।

सम्राट् ने कहा--

"तूने युद्ध बन्द कर दिया?"

"हां!"

"किसकी आज्ञा से?"

"अपनी ही आज्ञा से।"

"किस अधिकार से?"

"सेनापति के अधिकार से।"

"मेरी आज्ञा क्यों नहीं ली गई?"

"कुछ आवश्यकता नहीं समझी गई।"

"युद्ध किस कारण बन्द किया गया?"

"इस कारण कि युद्ध का उद्देश्य दूषित था।"

"कौन-सा उद्देश्य?"

"एक स्त्रैण कापुरुष कर्तव्यच्युत सम्राट् ने अपनी पदमर्या- दायित्व का उल्लंघन कर एक सार्वजनिक स्त्री को पट्टराजमहिषी के उद्देश्य से युद्ध छेड़ा था।"

"और तेरा कर्तव्य क्या था रे, भाकुटिक ?"

"मैंने तक्षशिला के विश्वविश्रुत विद्या-केन्द्र में राजनीति रणनीति की शिक्षा पाई है। मेरा यह निश्चित मत है कि साम्राज्य रक्षा ही के लिये साम्राज्य की सेना का उपयोग होना चाहिए। . की अभिलाषा और भोगलिप्सा की पूर्ति के लिये नहीं।"

"क्या सम्राट् की मर्यादा तुझे विदित है ?"

"यथावत् ! और साम्राज्य की निष्ठा भी !"

"वह क्या मुझसे भी अधिक है ?"

"निस्सन्देह !"

"तो मैं घोषणा करता हूँ—देवी अम्बपाली को मैं पट्टराज-महि- के पद पर अभिषिक्त करके राजगृह के राजमहालय में ले जाऊंगा। इस लिये यदि एक २ लिच्छवि के रक्त से भी वज्जी-भूमि को आरक्त कर- होगा तो मैं करूंगा। वैशाली को भूमिसात् करना होगा तो मैं करूँगा। मैं अविलम्ब युद्ध प्रारम्भ करने की आज्ञा देता हूं।"

"मैं अमान्य करता हूँ। इस कार्य के लिये रक्त की एक बूंद भी नहीं गिराई जायगी और देवी अम्बपाली मगध के राजमहालय में पट्टराजमहिषी के पद पर अभिषिक्त होकर नहीं जा सकती।"

"जाय तो ?"

"तो, या तो सम्राट् नहीं या मैं नहीं।"

सम्राट् ने हुंकार भरी। और खड्ग ऊँचा किया। सोम ने कहा—"भन्ते ! नायक, उपनायक, सेनापति सब सुनें—यह कामुक, स्त्रैण और कर्तव्यच्युत सम्राट् और एक कर्मनिष्ठ साम्राज्य के सेवक के बीच का युद्ध है। सब कोई तटस्थ होकर यह युद्ध देखें।"

सम्राट् ने कहा—"यह एक जारज, अज्ञातकुलशील, कृतघ्न सेवक के असह्य विद्रोह का दण्ड है रे, आ।"

दूसरे ही क्षण दोनों महान् योद्धा हिंसक युद्ध में रत हो गए। खड्ग परस्पर टकरा कर घात प्रतिघात करने लगे। क्षण २ पर दोनों के प्राण-नाश की आशंका होने लगी। दोनों ही घातक प्रहार कर रहे थे तथा दोनों ही अप्रतिम योद्धा थे। युद्ध का वेग बढ़ता ही गया।

अवसर ताककर सम्राट् ने एक भरपूर हाथ सोमप्रभ के सिर को ताककर चलाया। परन्तु सोम फुर्ती से घूम गए। इससे खड्ग उनके कन्धों को छूता हुआ हवा में घूम गया। इसी क्षण सोम ने महावेग से खड्ग का एक जनेवा हाथ सम्राट् पर मारा। सम्राट् ने उसे उछलकर खड्ग पर लिया। आघात पड़ते ही खड्ग मूल से दो टूक होकर भूमि पर जा गिरा और उस आक्रमण के वेग को न सम्हाल सकने से सम्राट् फिसल कर गिर पड़े। गिरे हुए सम्राट् के वक्ष पर अपना चरण रख सोमप्रभ ने उनके कण्ठ पर खड्ग रखकर कहा—

"श्रेणिक बिम्बसार, अब इस असिधार से तुम्हारे कण्ठ पर तुम्हारा मृत्युपत्र लिखने का क्षण आ गया। वीर की भांति मृत्यु का वरण करो। तुम भयभीत तो नहीं ?"

सम्राट् ने वीर-दर्प से कहा—"नहीं"

इसी समय एक चीत्कार सुनाई दी। सोम ने पीछे फिरकर देखा—देवी अम्बपाली धूल और कीचड़ में भरी, अस्तव्यस्त वस्त्र, बिखरे बाल, दोनों हाथ फैलाए चली आ रही थीं। उन्होंने वहीं से चिल्लाकर कहा—"सोम, प्रियदर्शी सोम, सम्राट् को प्राणदान दो, मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि मैं मगधराज-महालय में नहीं जाऊंगी, न मगध की पट्टराजमहिषी का पदधारण करूंगी।"

सोम ने अपना चरण सम्राट् के वक्ष पर से नहीं हटाया। न उनके कण्ठ से खड्ग। उन्होंने मुँह मोड़कर अम्बपाली को देखा। अम्बपाली

लेटकर सोमप्रभ के चरणों में लोट गई। उसकी अश्रुधारा से सोम के पैर भीग गये। वह कह रही थी—"इनका प्राण मत लो सोम, मैं इन्हें प्यार करती हूँ। परन्तु मैं कभी भी राजगृह नहीं जाऊँगी। मैं कभी इनका दर्शन नहीं करूंगी। स्मरण भी नहीं करूंगी। मैं हतभाग्या अपने हृदय को विदीर्ण कर डालूँगी। इनका प्राण छोड़ दो। छोड़ दो प्रियदर्शन सोम, इन्हें छोड़ दो। ये निरीह, शून्य और प्रेम के देवता हैं। ये महान् सम्राट् हैं। इन्हें प्राणदान दो। मेरे प्राण ले लो—*प्रियदर्शन सोम, ये प्राण तो तुम्हारे ही बचाए हुए हैं, ये तुम्हारे हैं इन्हें ले लो, ले लो।*"

अम्बपाली इस प्रकार विलाप करती हुई सोम के चरणों में भूमि पर पड़ी मूर्छित हो गई।

सोम ने सम्राट् के कण्ठ से खड्ग हटा लिया। वक्षःस्थल से चरण भी हटा लिया। उन्होंने गम्भीर भाव से आज्ञा दी। सम्राट् को बन्दी करो। मैं उन्हें प्राणदान देता हूं परन्तु उन्हें युद्धापराधी घोषित करता हूँ। कर्तव्य न पालन करने के अभियोग पर सैनिक न्यायालय में उनका विचार होगा और देवी अम्बपाली को यत्न से लिच्छवि सेनापति के अधिकार में पहुँचा दो।

इतना कहकर सोमप्रभ मण्डप से बाहर चले आए। उस समय सूर्यास्त हो चुका था और चारों दिशाओं में अन्धकार फैल गया था।

: १५२ :

आत्म-समर्पण

सिंह दक्षिण-युद्धक्षेत्र की कमान गान्धार काप्यक को सौंपकर उल्काचेल केन्द्र में लौट आए। यहां आकर उन्होंने अनेक लेख लिखे, बहुत से आदेश प्रचारित किए। इसके बाद उन्होंने उल्काचेल के उपनायक अभीति को बुलाकर कहा—

"सूर्यास्त में अब केवल एक घड़ी शेष है, काप्यक का कुछ न कुछ सन्देश मिलना चाहिए। मुझे आश्चर्य है विलम्ब क्यों हो रहा है। (कुछ पंक्तियां लिखकर) इन्हें प्रियवर्मन् के पास पश्चिमी रणस्थल पर तुरन्त भेज दो मित्र, और तनिक पुष्पमित्र से पूछो कि पाटलि-ग्राम को क्या रसद की नावें भेज दी गई हैं? हां, शुक से कहना, थोड़ा शूकर मार्दव और मधुगोलक ले आवे, पर मांस गर्म हो प्रातः बिल्कुल ठण्डा था।"

"और कुछ, सेनापति?"

"वह मानचित्र मुझे दो (तनिक कुछ सोचकर) निश्चय कुछ घटिकाओं ही की बात है। काप्यक अभी २ ही कार्य समाप्त कर लेगा। परन्तु आर्य भद्रिक महान् सेनापति हैं। फिर भी अब यहां से उनका निस्तार नहीं है"—यह कहकर सेनापति सिंह ने मानचित्र पर उंगली से एक स्थान पर संकेत किया।

"तो सेनापति यहीं पर समाप्ति है?"

"यदि आर्य भद्रिक आत्मसमर्पण कर दें।"

शुक ने आकर मधुगोलक और शूकर मार्दव रख दिया। उसने कहा—"भन्ते, प्रातः चूक हो गई।"

"अच्छा, अच्छा, चूक रसोईघर ही तक रखा कर शुक, समझा !"

"जी हां !"

नायक ने कहा—"पाटलि ग्राम को नावें भेजी जा चुकी हैं, सेनापति !"

"ठीक है मित्र, (एक लेख देकर) ये सब मागधों के लूटे हुये और अपहृत शास्त्रास्त्र हैं न, इन्हें अभी उल्काचेल ही में रहने दो मित्र।"

एक सैनिक ने सूचना दी—"महासेनापति सुमन आये हैं।"

सिंह ने उठ कर उनका स्वागत किया। और कहा—

"इस समय भन्ते सेनापति, आपके आगमन का तो मुझे गुमान भी न था।"

"आयुष्मान्, तेरे उत्तेजक संदेश को पाकर स्थिर न रह सका, बैठ आयुष्मान्, किंतु ये नया चमत्कार हो गया। पराजय जय में परिणत हो गई।"

"ऐसा ही हुआ भन्ते सेनापति, मनुष्य की भांति जातियों के, राष्ट्रों के, राज्यों के भी भाग्य होते हैं।"

दोनों बैठ गए।

महासेनापति ने कहा—"सुना तूने सिंह, सोमप्रभ ने सम्राट् को बन्दी कर लिया है, और देवी अम्बपाली को आयुष्मान् सोमप्रभ के सैनिक मुझे सौंप गए है।"

"देवी अम्बपाली क्या मागधों की बन्दी हो गई थीं ?"

"नहीं आयुष्मान्, वे सम्राट् की प्राण-भिक्षा मांगने मागध स्कन्धावार में गई थीं।"

"क्या देवी अम्बपली ने कुछ कहा ?"

"नहीं सिंह वे तो तभी से मूर्छित हैं—मैंने उन्हें आचार्य अग्निवेश के सेवा-शिविर में भेज दिया है। वे उनकी शुश्रूषा कर रहे हैं।"

"उनके जीवन-नाश की तो सम्भावना नहीं है भन्ते ?"

"ऐसा तो नहीं प्रतीत होता, परन्तु सिंह, तूने आयुष्मान् सोमप्रभ की निष्ठा और महत्ता देखी ?"

"देखी भन्ते, सेनापति सोमप्रभ अभिवन्दनीय—अभिनन्दनीय हैं।"

"अरे आयुष्मान्, यह सब कुछ अकल्पित अद्भुत कृत्य हो गया है, इतिहास के पृष्ठों पर यह अमर रहेगा।"

"काप्यक ने दो घड़ी पूर्व सन्देश भेजा था कि महासेनापति आर्य भद्रिक सब ओर से घिर गए हैं। केवल एक दुर्ग पर उन्हें कुछ आशा थी, परन्तु सेनापति सोमप्रभ के सम्पूर्ण मागध सैन्य को युद्ध से विरत विघटित कर देने से वे निरुपाय हो गये। फिर भी उन्होंने सोम॰ प्रभ का अनुशासन नहीं माना। कल रात भर और आज अभी तक भी खण्ड-युद्ध करते ही जा रहे हैं।"

"अब तो समाप्त ही समझो आयुष्मान् !"

"मैं काप्यक के दूसरे सन्देश की प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"सम्भव है, और रात भर युद्ध रहे, पर भद्रिक को अधिक आशा नहीं करनी चाहिए।"

इसी समय चर ने एक पत्र देकर कहा—"भन्ते सेनापति, काप्यक का यह पत्र है।"

सिंह ने मुहर तोड कर पत्र पढ़ा। फिर शांत स्वर में कहा—"भंते सेनापति, आर्य भद्रिक ने आत्मसमपर्ण कर दिया है। वे आ रहे हैं।"

"भद्रिक बडे तेजस्वी सेनापति हैं आयुष्मान्, हमें उनके प्रति उदार और ससम्मान होना चाहिये।"

"निश्चय, यह अस्थायी सन्धि के नियम हैं, अब इससे अधिक हम कुछ नहीं कर सकते।"

सेनापति सुमन ने नियम पढ़े और लेख लौटाते हुए कहा—"ठीक है आयुष्मान्, तू स्वयं बुद्धिमान् है।"

"परंतु क्या आप आर्य भद्रिक का स्वागत करेंगे भन्ते सेनापति !"

"नहीं, नहीं, यह तेरा अधिकार है आयुष्मान्, मैं ... उदार और व्यवहार-कुशल है। और भी कहीं युद्ध हो रहा है

"नहीं भन्ते सेनापति !"

"ठीक है, मैं अब चला, आयुष्मान् !"

"क्या इसी समय, भन्ते सेनापति ?"

"हां, आयुष्मान् !"

सेनापति सुमन अश्व पर आरूढ़ होकर चल दिए।

एक बड़ी नाव घाट पर आकर लगी। कुछ व्यक्ति उसमें ... कर स्कंधावार में आये। नायक ने भीतर आकर कहा—"का... भद्रिक को ला रहे हैं भन्ते सेनापति !"

"आर्य भद्रिक को ससम्मान ले आओ भद्र, मगध विजय ... बहुत बड़ा कार्य सम्पूर्ण हुआ।"—सिंह ने खड़े होकर कहा।

आगे २ भद्रिक चण्ड और पीछे काप्यक गान्धार ने ... मण्डप में प्रवेश किया।

सिंह ने आगे बढ़ कर खड्ग उष्णीष से लगाकर उच्च स्वर से "महामहिम मागध-महासेनापति आर्य भद्रिक का ... सेनापति सिंह ससम्भ्रम अभिवादन निवेदन करता है।"

भद्रिक शांत भाव से आदर खड़े हो गए। कष्ट और ... रेखायें उनके मुख-मण्डल पर थीं—परंतु नेत्रों में वीरत्व और अभय चमक थी। उन्होंने स्थिरकण्ठ से कहा—"आयुष्मान् सिंह ! मैं ... मगध-विजय पर साधुवाद देता हूं, तथा तुम्हारी शालीनता की ... करता हूं।"

"अनुगृहीत हुआ। आर्य ने आज मुझे गर्वित होने का अ... दिया है।"

"परंतु भद्र, मैंने बल भर ऐसा नहीं किया। मैं पराजित होकर ... हुआ हूँ। अब मैं जानना चाहता हूं कि ......"

"अस्थायी संधि के नियम ? वे यह हैं। आर्य,मैं समझता हूं आपको आपत्ति न होगी"—सिंह ने तालपत्र का लेख सेनापति के सम्मुख उपस्थित किया।

उस पर एक दृष्टि डाल कर सेनापति ने कहा—'तुम उदार हो आयुष्मान्, किंतु मैं क्या एक अनुरोध कर सकता हूँ ?"

"मै शक्ति भर उसे पूर्ण करूंगा आर्य !"

"महामात्य वर्षकार की अब हमें अत्यंत आवश्यकता है। बिना उनके परामर्श के संधि वार्ता सम्पन्न न हो सकेगी।"

"ठीक है आर्य !"

"और एक बात है।"

"क्या आर्य ?"

"मगध सेना के बन्दी सैनिकों को उनके शस्त्र और अश्वों सहित लौट जाने दिया जाय।"

"ऐसा ही होगा, आर्य !"

"धन्यवाद आयुष्मान्, मुझे तुम्हारे नियम स्वीकार हैं। यह मेरा खड्ग है।"—उन्होंने खड्ग कमर से खोल कर सिंह के सम्मुख किया।

"नहीं, नहीं, वह उपयुक्त स्थान पर है आर्य, मैं विनति करता हूँ उसे वहीं रहने दीजिए।"

भद्रिक ने खड्ग कमर में बाँध, हाथ उठाकर सिंह को आशीर्वाद दिया और दो कदम पीछे हट कर चले गये ; पीछे २ काप्यक गांधार भी नग्न खड्ग हाथ में लिए। सिंह ने जल्दी से उसी समय कुछ आदेश तालपत्र पर लिखे और दूत को दे वैशाली भेज दिए।

: १५३ :

हृग्स्पर्श

पाटलिग्राम पहुँच कर सेनापति सिंह ने वहां का निरी
बस्ती के अधिकांश घर सूने पडे थे। बहुत से आग से जल
थे। बडी २ अट्टालिकाओं के ध्वंस ही रह गए थे।...
कर्कट और गंदगी से भरे थे। खेत उजाड़ और सूखे पड़े
कूल पर जहां घाट था, वहां बडा भारी गढा हो गया था,
से भरा था। उसमें बहुत-से हाथी पूरे धँस गए थे, बहुत
बहुत निरुपाय अपनी सूँड हिला रहे थे। मागधों ने अपने
कुछ भी प्रबंध नहीं किया था। मागध स्कन्धावार सर्वथा
गया था। मागधों से छीने हुए शस्त्रास्त्रों तथा सामग्री से
अंधाधुंध उल्काचेल की ओर जा रही थीं। काप्यक गान्धार ने
में बहुत व्यवस्था कर ली थी। सिंह के पहुंचने पर उसने
"अम्बपाली से कोई वस्तु नहीं छीनी गई है, न नागरिकों को
असुविधा हुई है।"

सिंह ने आहतों से भरे युद्ध-क्षेत्र का निरीक्षण किया। धूप
गर्मी से उनके घाव सड़ गए थे और उनकी बड़ी दुर्दशा हो
थी। उन्होंने काप्यक गांधार से कहा—"मित्र, घायल मागधों की
हमें सेवा करनी चाहिए।" उन्होंने तुरंत ताड़-पत्र पर एक आ
आचार्य अग्निवेश के नाम वेग से चलने वाली नाव पर उल्का चे
भेज दिया। उसमें कुछ वैद्य और औपचारिक तथा शुश्रूषा-स
की मांग की गई थी। चर को भेजकर सिंह ने

खाली घरों को स्वच्छ करके आहत भटों को वहां ले आओ। तब तक आचार्य अग्निवेश अपना सेवादल भेज देंगे।

लिच्छवि सेनापति के करुण व्यवहार और अभयदान से आशान्वित हो बहुत से ग्रामवासी जो वन में जा छिपे थे पीछे लौट आए। उनमें से जो उपस्थित हो सके उन ग्राम-जेट्ठकों को बुलाकर सिंह ने एक घोषणा द्वारा उन्हें अभय किया और मागध-आहतों की सेवा में सहयोग मांगा। जेट्ठकों ने प्रसन्नता से सहयोग दिया।

सब व्यवस्था कर सिंह ने काप्यक गांधार को उल्काचेल का भार सौंप कर कहा—"मित्र, वहां झुण्ड के झुण्ड बंदी आ रहे हैं, उन्हें छोटी २ टुकड़ियो में बांट कर देश के भीतरी भागो में भेजते जाओ और अपनी सैन्य को व्यवस्थित रूप में पीछे हटाओ, तथा यहाँ की सब सूचनायें अब तुम्हीं देखो। मैं सन्धि-उद्घाटिका में जाऊँगा, मेरा अश्व मंगा दो।"

इतना कह कर सिंह ने बैठ कर कुछ आदेश लिखे, और उन्हें काप्यक को दिया। फिर उसे आलिङ्गन कर वैशाली के राज-पथ पर अश्व छोड़ दिया।

———

: १५४ :

विराम-सन्धि

आज वैशाली के संथागार में फिर उत्तेजना फैली थी। मागध सैन्य चमत्कारिक रूप से पराजित हुई थी। लिच्छवि यद्यपि मुँह उदास थे और हृदय उत्साह रहित, तथा वह उमंग उनमें न था फिर भी आज की इस कार्यवाही में एक प्रकार की का यथेष्ट आभास था। छत्तीसों संघ-राज्यों के राजप्रमुख सम्पूर्ण राजप्रतिनिधि इस विराम-सन्धि-उद्वाहिका में योग दे गणपति सुनन्द और लिच्छवि-महाबलाधिकृत सुमन अतिरिक्त प्रमुख सेनानायक भी सब उपस्थित थे।

जब सेनापति सिंह ने संथागार में प्रवेश किया तब चारों ओर हर्षनाद उठ खड़ा हुआ। महाबलाधिकृत सुमन ने सिंह का अभिनन्दन करते हुए उद्वाहिका का प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—

"भन्ते गण, आज हमें सौभाग्य ने विजय दी है। अब शत्रु सन्धि चाहता है, आज का विचारणीय विषय यह है कि किन नियमों पर सन्धि की जाय।"

मल्लकील राजप्रमुख ने उदग्र होकर कहा—"सन्धि नहीं भन्ते, सेनापति, हम मगध-साम्राज्य को समाप्त किया चाहते है। वह सदैव का हमारे गण-सङ्घों के मार्ग का शूल है। हमारा प्रस्ताव है कि सुअवसर से लाभ उठाया जाय और पाठा मगध, अङ्ग दक्षिण, अङ्ग उत्तर सबको वज्जी-संघ-शासन में मिला लिया जाय। अथवा वहां हमें एक स्वतन्त्र-गणशासन स्थापित कर देना चाहिए।"

"किन्तु आयुष्मान्, मगध और अङ्ग में

हैं। न वहां केवल मल्ल कोलिय और कासी हैं. उन पर उसी प्रकार हम शासन कर सकते हैं जैसे वज्जी में अलिच्छवियों पर करते हैं।"

गणपति सुमन्त ने कहा—

"भन्ते गण सुनें, आयुष्मान्, मगध में एक स्वतन्त्र गणतन्त्र स्थापित किया चाहता है। गण-शासन का मूल-मन्त्र गण-स्वातन्त्र है, यह शासन नहीं, व्यवस्था है। जिसका दायित्व प्रत्येक सदस्य पर है। वास्तविक अर्थों में गणतन्त्र में राजा भी नहीं है, प्रजा भी नहीं है। गण का सम्पूर्ण स्वामी गण है, और गणपरिषद् उसका प्रतिनिधि। हमारे अष्टकुल के वज्जीगण में दास भी हैं, अलिच्छवि भी हैं, आगन्तुक भी हैं। यद्यपि इन सबके लिए हमारा शासन उदार है, फिर भी इन अलिच्छवि जनों के पास हमारे शासन निर्णय पर प्रभाव डालने का कोई साधन नहीं है। वे केवल अनुशासित हैं। यह हमारे वज्जी गणतन्त्र में एक दोष है, जिसे हम दूर नहीं कर सकते, न उन्हें लिच्छवि ही बना सकते हैं। उनमें कोसलाधिपति सेट्ठि हैं, जिनका वाणिज्य सुदूर यव-द्वीप, स्वर्ण-द्वीप और पश्चिम में ताम्रपर्णा, मिश्र और तुर्क तक फैला है। हमारे गण की यह राज्य-लक्ष्मी हैं, इसी प्रकार कर्मान्त, शिल्पी और ग्राम-जेट्ठक हैं। क्या हम उनके बिना रह सकते हैं। यह सब अलिच्छवि हैं और ये सभी वज्जीगणतन्त्र में अनुशासित हैं। बहुधा हमें इन अलिच्छवियों द्वारा असुविधाएं उठानी पड़ती हैं। अब यदि हम अङ्ग और मगध साम्राज्य को वज्जी-शासन में मिलाते हैं तो हमारी ये कठिनाइयां असाधारण हो जावेंगी और हमारी गणप्रणाली असफल हो जायगी।

"यदि आप वहां किसी अलिच्छवि को वहां का शासक बना कर भेजेंगे तो वह प्रजा के लिए और प्रजा उसके लिए पराई होगी। यदि कोई अलिच्छवि वहां का शासक बन जायगा तो फिर दूसरा मगध-साम्राज्य तैयार समझना होगा। वह जब प्रभुता और साधन-सम्पन्न

हो जायगा तो हम उसे सहज ही हटा नहीं सकेंगे।"

"परन्तु भन्ते, हम इन आए दिन के आक्रमणों को भी सकते ?"—एक मल्लराज पुरुष ने कहा।

"भन्ते राजप्रमुख, इससे भी गम्भीर बात और है। य। भी मगध-सम्राट् जीत जायगा तो वे निस्संदेह हमारे । ।१।७५ कर देंगे और हमारी गण ही की अलिच्छवि प्रजा उसका अधिकार मांगेगी। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि दोनों अधि होंगे और गण-स्थान पर साम्राज्य स्थापित हो जायगा।"

"यही सत्य है भन्ते सेनापति, अर्थात् हमारी विजय से ७। हानि नहीं है, और उनकी एक ही विजय हमें समाप्त कर सकती है

"यही तथ्य है, भन्ते, राजप्रमुख !"

"तब तो फिर इस पाप की जड़ को उन्मूलित करना ही श्यक है।"

"किन्तु कैसे ? हमें कम से कम एक लिच्छवि बिम्बसार अंग ८ का अधिपति बनाना होगा। जो इस श्रेणिक बिम्बसार से अधिक . कर होगा। उससे गण लड़ भी तो न सकेगा।"

"क्यों न अंग मगध को उनकी स्वतन्त्रता फिर दे ८ जाय।"

"यह कठिन नहीं है। पर प्रजा इसे स्वीकार कैसे करेगी ? उसका दायित्व किस पर होगा ? क्या आप समझते हैं—मागधगण और अंग-गण स्थापित होना सहज है ?"

"क्या हानि है, पश्चिम में भी तो बहुत गण हैं। क्यों न हम प्राची में गण-संख्या बढ़ावें। इससे कभी २ युद्ध भले ही हो पर उससे गणनाश का भय नहीं रहेगा।"

"परन्तु आयुष्मान्, यह सम्भव नहीं है

को स्वतन्त्रता नहीं दे सकते। अंगराज और मगधराज की स्थापना तो सहज है पर अंग-गण और मगध-गण की नहीं।''

''क्यों नहीं भन्ते गणपति ?''

''इसलिए आयुष्मान्, कि इसके लिए एक-रक्त, एक श्रेणी चाहिए। जहां एकता का भाव हो। मगध में अब ऐसा नहीं है। यद्यपि पहिले मागध एक-रक्त थे। परन्तु अब वह इतने दिन साम्राज्यवादी रह कर राष्ट्र बन गया है। अब मागध एक जाति नहीं रही। अब तो वहां के ब्राह्मण, क्षत्रिय, आर्य भी अपने को मागध कहते है। मागध का अर्थ अब है मगध-साम्राज्य का विषय, मगध में ब्राह्मण क्षत्रिय ही नहीं, मागध शिल्पी, मागध चाण्डाल भी हैं। ये सब असमवर्ग हैं। इनकी अपनी श्रेणियां हैं। ये कभी भी एक नहीं हो सकते। वह श्रेणियों की खिचडी है, वहां गण-तन्त्र नहीं चल सकेगा।''

''ऐसा है, तब तो नहीं ही चल सकता।''

अब सिंह सेनापति ने कहा—

''भन्ते राजप्रमुख गण, मैं इस बात पर विचार करता हूं कि मनुष्य-शरीर की भांति राजवंश का भी काल है, राजवंशों का तारुण्य अधिक भयानक होता है। वृद्धावस्था उतनी नहीं। तीन चार ही पीढ़ियों में राजवंश का तारुण्य जाता रहता है। फिर उसका वार्धक्य आता है। तब कोई नया राजवंश तारुण्य लेकर आता है। भन्ते, शिशुनाग-राजवंश का भी यह वार्धक्य है। यदि इसे हम समाप्त कर देते हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि कोई तरुण राजवंश अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य लेकर हमारे सामने आवेगा। भन्तेगण, हमें भेडिये की मांद छोड कर सिंह की माँद में नहीं धँसना चाहिए। फिर, और भी एक बात है भन्ते, मगध-राज्य को परास्त करना और उसे उन्मूलन करना एक सहज बात नहीं है। फिर भी हम परास्त कर चुके। हमारी प्रतिष्ठा बच गई, परन्तु इसमें हमारी सम्पूर्ण सामर्थ्य व्यय हो गई है, इस युद्ध में दस दिनों में हमारे गण ने

ग्यारह लाख प्राणों की आहुति दी है। धन, जन और स... की पूर्ति हमारा गण आधी शताब्दी तक भी कर सकेगा नहीं कहा जा सकता।

"हमारी सेनाएँ राजगृह के आधे दूर तक के राजमार्ग पर फैली हुई हैं। हमने मागध सेना का सम्पूर्ण आयोजन लिया है, परन्तु भन्तेगण, गंगा-तट से आगे मागधों के अजेय मोर्चे और सैनिक दुर्ग हैं। राजधानी राजगृह भी अ... हैं। नालन्द अम्बलट्ठिका की दो योजन की भूमि पर शत्रु... सारी सैनिक तैयारी अभी भी अक्षुण्ण है। इन सब को विज... लिए हमें और ग्यारह लाख प्राणों की आहुति देनी होगी। ... इसके लिए तैयार हैं? फिर और एक बात है।"

"वह क्या?"

"हमें राजगृह का दुर्गम दुर्ग भी जय करना होगा। बिना किए मगध का पतन नहीं हो सकता। परन्तु भन्तेगण, आप भली जानते हैं, राजगृह का दुर्ग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में दुर्भेद्य है। उसके ... महत्व को मैं जानता हूं। यह उसका मान-चित्र उपस्थित है। गंगातट की राजगृह की भूमि जय करने में हमें महीनों लगेंगे तो ... गृह को जय करने में वर्षों लगेंगे। यह अभूतपूर्व नैसर्गिक दुर्ग वैभ... विपुल, पाण्डव आदि दुर्गम पर्वत शृंखलाओं से आवेष्टित और सुर... है, इन पहाड़ों के ऊपर बहुत मोटी शिलाओं के आधार विशाल प... की चुनी हुई प्राचीर इस छोर से उस छोर तक मीलों दूर तक फैल... हुई है। केवल दक्षिण ओर एक सँकरी घाटी है जिसमें होकर दुर्ग ... जाया जा सकता है। इन प्राचीरों में सुरक्षित बैठकर एक २ धनुधर सौ सौ लिच्छवियों को अनायास ही मार सकता है। इस गिरि-दुर्ग में सुमागध सरोवर है, जिसके कारण दुर्ग घेरने पर भी वर्षों तक ... जल की कमी बिम्बसार को नहीं रहेगी। ...

दैत्याकार प्राचीरों को भंग करने का कोई साधन हमारे पास नहीं है।

"भन्ते, इस परिस्थिति में हम यदि आगे युद्ध में बढ़ते हैं तो हमारी अपार जन-हानि होगी। इतने जन अब हमारे अष्टकुल में नहीं हैं। न हमारे छत्तीसों गणराज्यों में है। यदि तीन पीढ़ियों तक अष्टकुल-गण राज्य की प्रत्येक स्त्री बीस बीस पुत्र उत्पन्न करे तो हो सकता है। सो भन्तेगण, यदि हमने राजगृह जय करने का साहस किया तो सफलता तो संदिग्ध है पर अपार धन-जन की हानि निश्चित है।"

गणपति सुमन्त ने कहा—"भन्ते गण, आपने आयुष्मान् सिंह का अभिप्राय सुना, हम अपनी स्थिति सुदृढ़ रखना पहिले चाहेंगे। इसलिए अब प्रश्न यह है कि शत्रु से संधि की जाय या नहीं।"

"ऐसी दशा में संधि सर्वोत्तम है, विशेषकर जब कि शत्रु अपने हाथ में है, तथा सन्धि के नियम भी हमारे ही रहेंगे।" सबने एक मत होकर कहा।

"तो संधि में तीन बातों पर विचार करना है। एक यह कि--शत्रु का सैनिक-बल इतना दुर्बल कर दिया जाय कि वह चिरकाल तक हमारे विरुद्ध शस्त्र न उठा सके।"

"सदा के लिए क्यों नहीं?"—एक राजप्रमुख ने कहा।

"यह देवताओं के लिए भी शक्य नहीं है,आयुष्मान्, दूसरे-शत्रु यथेष्ट युद्ध-क्षति दें। तीसरे सुदूर पूर्वी तट हमारे वाणिज्य के लिए उन्मुक्त रहें।"

छन्द लेने पर प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

सन्धि की सब शर्तों पर विचार करने, हस्ताक्षर करने तथा शत्रु से आवश्यक मामले तय करने का अधिकार सिंह को दिया गया।

यथासमय सन्धि हो गई। वज्जी-भूमि में इसके लिए सर्वत्र गण नक्षत्र मनाया गया। वैशाली के खण्डहर ध्वजाओं से सजाए गये। भग्नद्वारों पर जलपूरित मंगल-कलश रखे गये। रात को टूटी और सूनी अटारियों में दीपमालिका हुई।

वैशाली के इस विदग्ध समारोह में भाग नहीं लिया उनका प्रासाद सजाया नहीं गया, उस पर तोरण-पताकाएँ गईं; और दीपमालिका नहीं की गई। अपितु सप्तभूमि सिंह-द्वार और समस्त प्रवेश-द्वार बन्द कर दिये गये। सम.. दीप बुझा दिए गये। उस आनन्द और विजयोत्सव में राग-र देवी अम्बपाली और उसका विश्व-विश्रुत-प्रासाद जैसे चिरनिद्र गया युग युग के लिए।

—— – —

: १५५ :

अश्रु-सम्पदा

मध्य रात्रि थी। एक भी तारा आकाश मण्डल में नहीं दीख रहा था। काले बादलों ने उस अंधेरी रात को और भी अन्धेरी बना दिया था। बीच २ में कभी २ बूंदा-बूंदी भी हो जाती थी। हवा बन्द थी। वातावरण में एक उदासी, बेचैनी और उमस भरी हुई थी। दूर तक फैले हुए युद्ध-क्षेत्र में सहस्रों चिताएँ जल रही थीं। उनमें युद्ध में निहत सैनिकों के शव जल रहे थे। चरबी के जलने से चर-चर शब्द हो रहे थे। कोई २ चिता फट पड़ती थीं। उनकी लाल लाल अग्निशिखा पर नीली पीली लौ एक वीभत्स भावना मन में उदय कर रही थी। सैनिक मृत शव ढो ढो कर एक महाचिता में डाल रहे थे। बड़े २ वीर योद्धा, जो अपनी हुंकृति से भूतल को कम्पित करते थे, छिन्नमस्तक छिन्न-बाहु भूमि पर धूलि-धूसरित पड़े थे। राजा और रंक में यहां अन्तर न था। अनेक छत्रधारियों के स्वर्ण-मुकुट इधर उधर लुढ़क रहे थे। कोई कोई घायल योद्धा मृत्यु-विभीषिका से त्रस्त हो रुदन कर बैठता था। कोई चीत्कार करके पानी और सहायता मांग रहा था। वायु में चिरांध भरी थी। जलती हुई चिताओं की कांपती हुई लाल आभा में मृतकों को ढोते हुए सैनिक उस काली कालरात्रि में काले काले प्रेत-से भासित हो रहे थे। सम्पूर्ण दृश्य ऐसा था जिसे देख कर बड़े २ वीरों का धैर्य च्युत हो सकता था।

मागध सेनापति सोमप्रभ शक महाशाल्मलि वृक्ष के नीचे तने से ढासना लगाए ध्यान-मुद्रा से यह महाविनाश देख रहे थे। गहन चिन्ता से उनके माथे पर रेखायें पड़ गई थीं। उनके बाल रूखे, धूलि भरे

चिता के कांपते पीले प्रकाश में आंख उठा कर उस शोक-सन्ताप-दग्धा स्त्री के मुख की ओर देखा जिस पर वेदनाओं के इतिहास की गहरी अनगिनत रेखाएं खुदी हुई थीं। सोम का मस्तक झुकने लगा। और एक क्षण बाद ही वह उस मूर्ति के चरणों में भूमि पर लोट गये।

आगन्तुका ने धीरे से बैठ कर सोम का सिर उठा कर अपनी गोद में रखा। बहुत देर तक सोमप्रभ उस गोद में फफक फफक कर अबोध शिशु की भांति रोते रहे और वह महिमामयी महिला भी अपने आंसुओं से सोमप्रभ के धूल-धूसरित सिर को सिंचन करती रहीं। बहुत देर बाद सोमप्रभ ने सिर उठा कर कहा—"मां, इस समय यहां पर क्यों आईं?"

"मेरे पुत्र, तुझ निस्संग के साथ रुदन करते बहुत दिन व्यतीत हुए, जब जीवन के प्रभात ही में शोक और दुर्भाग्य की कालिमा ने मुझे ग्रसा था तब रोई थी, सब आंसू खर्च कर दिए थे। फिर इन चालीस वर्षों में एक बार भी रो नहीं पाई भद्र, बहुत २ यत्न किये, एक आंसू भी नहीं निकला। सो आज चालीस वर्ष बाद पुत्र, तुझे छाती से लगा कर इस महाश्मशान में रोने की साध लेकर ही आई हूं। लोकपाल दिग्पाल देखें अब, यह एक मां अपने एकमात्र पुत्र को चालीस वर्षों से महाकृपण की भांति संचित अपने विदग्ध आंसुओं की निधि से सम्पन्न करने आप्यायित करने, पुत्र पर आंसुओं से भीगे हुए सुख-सौभाग्य की वर्षा करने आई है।"

सोम बहुत देर तक उनकी गोद में सिर झुकाए पड़े रहे। फिर उन्होंने सिर उठा कर कहा—

"चलो मां, पुष्करिणी के उस पार अपनी कुटिया में मुझ परित्यक्त को ले चलो, मुझे अपनी शरण में ले लो मां!"

"मेरे पुत्र, अभी एक गुरुतर कार्य और करना है, पहिले वह हो जाय पीछे और कुछ।"

"वह क्या मां ?"

"तेरे पिता की मुक्ति !"

"मेरे पिता की मुक्ति ? कहां हैं वे मां ?"

"बन्दी हैं !"

"किसने उन्हें बंदी किया है ? मैं अभी उसका शिरच्छेद
उन्होंने अत्यन्त हिंस्र भाव से खड्ग उठाया।"

"तेरे ही पुत्र, जा उन्हें मुक्त कर।"

सोम आश्चर्य से आंखें फाड़ फाड़ कर आर्या मातङ्गी को
भय, आशंका और उद्वेग से उनके प्राण निकलने लगे, बड़ी
से उनके मुंह से टूटे फूटे शब्द निकले—

"क्या, क्या, सम्राट्.......... !"

"हां, पुत्र, अब अधिक मेरी लाज को मत उघाड़ !"

सोम चीत्कार करके मूर्छित हो गए।

बहुत देर तक आर्या मातङ्गी मूर्छित पुत्र को गोद में लिये पड़ी
उन्होंने पुत्र को होश में लाने का कुछ भी यत्न नहीं किया। एक
जड़ता ने उन्हें घेर लिया। धीरे २ उनका मुँह सफेद होने लगा।
पथराने लगे, अंग कांपने लगे।

सोम की मूर्छा भंग हुई। उसने आर्या मातंगी की मुद्रा दे
चिल्ला कर कहा—

"मां, मां, मां, आश्वासन दो, मैं अभी अपने को सम्हा
करूंगा !"

आर्या ने नेत्र खोले, उनके सूखे रक्तहीन होंठ हिले। सोम ने का
निकट लाकर सुना। आर्या कह रही थीं—"अम्बपाली तेरी भगिनी
है, किंतु उसके पिता ब्राह्मण वर्षकार..... ....।"

आर्या के ओष्ठ, हृदय, जीवन सब निस्पन्द हुआ।

: १५६ :

पिता और पुत्र

उस अर्ध-निशा में सेनापति को एकाकी बन्दीगृह के द्वार पर आया देख प्रहरी घबरा गए।

सोम ने पूछा—"क्या बन्दी सो रहा है ?"

"नहीं जाग रहा है।"

"ठीक है। अब यहां तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। द्वार खोल दो।"

प्रहरी ने द्वार खोल दिया। सोम ने भीतर जाकर देखा—सम्राट् धीर-गति से उस क्षुद्र कक्ष में टहल रहे थे।

सोम को देख कर वे क्षण भर को रुक गए। फिर बोले—

"आ आयुष्मान्, क्या वध करने आया है? वध कर, मैं प्रस्तुत हूं। परन्तु एक वचन दे, खड्ग छूकर। यदि देवी अम्बपाली को पुत्र-लाभ हो तो वही मगध सम्राट् होगा। मैंने देवी को यह वचन उसके शुल्क में दिया था, वह वचन मगध सम्राट् का वचन था।"

सोम ने भराये कण्ठ से कहा—"वचन देता हूं।"

"खड्ग छूकर ?"

"खड्ग छूकर।"

"आश्वस्त हुआ, परन्तु आयुष्मान् तू युवा है, सशक्त है, खड्ग चलाने में सिद्धहस्त है।"

सोम ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप खड़े रहे।

सम्राट् कहते गए—"मैं समझता हूं एक ही हाथ से मेरा शिरच्छेद हो जायगा। अधिक कष्ट नहीं होगा, समझता है न आयुष्मान्? अब मैं कायर हो गया हूं, कष्ट नहीं सह सकता, यह अवस्था का दोष है भद्र, पहिले मैं ऐसा नहीं था। अब तू वध कर।"

सम्राट् स्थिर मुद्रा से भूमि पर बैठ गये।

सोम के मुँह से एक शब्द नहीं निकला—वह धीरे चरणों में भूमि पर लोट गये। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा

"पिता, क्षमा कीजिए!"

"यह मैंने क्या सुना, आयुष्मान्?"

किंतु सोम ने और एक शब्द भी नहीं कहा। वे उसी भां पर पड़े रहे। सम्राट् ने उठा कर और स्वयं उठ कर सोम को लगा कर कहा—

"क्या कहा, फिर तो कह भद्र! अरे, इस नीरस, निर्मम, सम्राट् के जीवन को एक क्षण भर के लिए तो आप्यायित कह भद्र, वही शब्द।"

सोम ने सम्राट् के अंक में बालक की भांति सिर देकर कहा

"पिता!"

सम्राट् ने असंयत हो उन्मत्त की भांति कहा—"अहा, हा, सुधा-वर्षण किया भद्र, किंतु क्या यह सत्य है? स्वप्न नहीं है, मैं पुत्र का पिता हूं?"

"हां, देव, आप इस दग्ध-भाग्य सोम के पिता हैं।"

"किसने कहा भद्र, क्या मृत्यु के भय से मेरा मस्तिष्क विकृत नहीं हो गया है। तूने कहा न 'पिता'?"

"हां देव!"

"तो फिर कह।"

"पिता!"

"और कह।"

"पिता!"

"और कह।"

"पिता!"

"अरे बार बार कह, बार बार कह ।" सम्राट् ने सोम को अंग में भर गाढ़ालिङ्गन किया ।

सोम ने कहा—"पूज्य पिता, यह आपका पुत्र सोमप्रभ आपको अभिवादन करता है ।"

"सौ वर्ष जी भद्र, सहस्र वर्ष"—सम्राट् ज़ार २ आँसू बहाने लगे ।

सोम ने कहा—"पिता, अभी एक गुरुतर कार्य करना है ।"

"कौन-सा पुत्र ?"

"माता मातङ्गी आर्या का सत्कार ।"

"क्या आर्या मातङ्गी आई हैं ?"

"आई थीं, किंतु चली गईं ? पिता !"

"चली गई ? मैं एक बार देख भी न सका ।"

"देख लीजिये पिता, अभी अवशेष हैं ।"

"अरे, तो ··· "

"अभी कुछ क्षण पूर्व मुझे अपनी अश्रु-सम्पदा से सम्पन्न कर, और दो संदेश देकर वह गत हुईं ।"

"अश्रु-सम्पदा से तुझे सम्पन्न करके ?"

"हाँ, देव !"

"तो पिता पुत्र के सौभाग्य पर ईर्षा करेगा, किंतु संदेश, तूने कहा था दो संदेश ?"

"एक निवेदन कर चुका ।"

"उसका मूल्य मगध का साम्राज्य ··· ···अस्तु दूसरा कह···· ··"

"देवी अम्बपाली मेरी भगिनी हैं ।"

सम्राट् चीत्कार कर उठे ।

सोम ने कहा—"मुझे कुछ निवेदन करना है देव !"

"अब नहीं, अब नहीं, सोम भद्र, तू मुझे वध कर, शीघ्रता कर ।"

"देव !"

"आज्ञा देता हूं रे, यह सम्राट् की आज्ञा है, अंतिम आज्ञा"

"एक गुह्य है पिता, देवी अम्बपाली आर्य आमात्य की पुत्री हैं।"

सम्राट् ने उन्मत्त की भांति उछल कर सोम को हृदय से लगा लिया। संयत होने पर सोम ने कहा—

"पिता, चलिये अब, माता का शरीर अरक्षित है।"

"कहां पुत्र ?"

"निकट ही।"

दोनों बाहर आए। महा-श्मशान में अब भी चिताएँ जल रही थीं। दोनों ने आर्या मातङ्गी को उठा कर गंगा में स्नान कराया। फिर सम्राट् ने अपना उत्तरीय अंग से उतार कर देवी के अंग पर लपेट दिया। सोम सूखी लकड़ी बीन लाये और उस पर आर्या मातङ्गी की महामहिमा-मयी देह-यष्टि रख कर एक चिता की अग्नि से मगध के सम्राट् ने आर्या की चिता में दाह दिया। जिसके साक्षी थे सद्यःपरिचित मात्र पिता पुत्र; और वर्षोन्मुख मेघपुञ्ज।

पिता पुत्र दोनों उसी वृक्ष के नीचे बैठ आर्या मातङ्गी की जलती चिता को देखते रहे। चिता जल चुकने पर सोम ने खड्ग सम्राट् के चरणों में रख कर उनकी प्रदक्षिणा की, फिर अभिवादन करके कहा—"विदा, पूज्य पिता !"

"यह क्या पुत्र, जाने का अब मेरा काल है, मगध का साम्राज्य तेरा है।"

सोमप्रभ ने कहा—"इसी खड्ग की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, मगध का भावी सम्राट् देवी अम्बपाली का गर्भजात पुत्र होगा।"

सोम ने एक बार भूमि में गिर कर फिर सम्राट् को अभिवादन किया और जलती हुई चिताओं में होते हुए उसी अभेद्य अंधकार में लोप हो गए।

उपसंहार

१

एक वर्ष बीत गया। युद्ध जय होने पर भी इस युद्ध के फलस्वरूप वैशाली का सारा वैभव छिन्न-भिन्न हो गया था। इस युद्ध में दस दिन के भीतर ६६ लाख नर-संहार हुआ था, और नौ लिच्छवि, नौ मल्ल, १८ कासी कोल के गणराज्य एक प्रकार से ध्वस्त हो गये थे। वैशालीमें दूर तक अधजली अट्टालिकायें, ढहे हुए प्रासादों के ढूह, टूटे फूटे राज-मार्ग दीख पड रहे थे। बहुत जन वैशाली छोड कर भाग गए थे। युवक-योद्धा सामान्तपुत्र विरले ही दीख पडते थे। बहुतों का युद्ध में निधन हुआ था। बहुत अंधे, लगडे, लूले, अपाहिज होकर दुःख और क्षोभ से भरे हुए वैशाली के अनरायण की अशोभा-वृद्धि करते थे। देश-देशांतरों के व्यापारी अब हट्ट में नहीं दीख पड रहे थे। बड़े २ सेट्ठिपुत्र थकित, चिंतित और निठल्ले पडे रहते थे। शिल्पी, कर्मकर भूखे, असम्पन्न, दुर्बल और रोगाक्रान्त हो गये थे। युद्ध के बाद ही जो भूखमरी और महा-मारी नगर और उपनगर में फैली थी उससे आबाल वृद्ध पटापट मर रहे थे। सूर्योदय से सूर्योदय तक निरंतर उन हर्म्यों में से—जिन में कभी संगीत की लहरें उठा करती थीं—आक्रोश, क्रन्दन,चीत्कार, कलह के कर्ण-कटु शब्द सुनाई देते ही रहते थे। नगर-सुधार की ओर किसी का ध्यान न था। संथागार में अब नियमित सन्निपात नहीं होते थे, होते थे तो विद्रोह और गृह-कलह तथा मत-पार्थक्य ही की बातें सुनाई पडती थीं। प्रमुख राजपुरुषों ने राज-संन्यास ले लिया था। नये, अनुभवहीन, और हीन-चरित्र लोगों के हाथ में सत्ता डोलायमान हो रही थी। प्रत्येक स्त्री-पुरुष असन्तुष्ट, असुखी और रोषावेशित रहता था। लोग फटे हाल

फिरते तथा बात बात में कुत्ते की भांति लड़ पड़ते थे। मंगल-पुष्करिणी सूख गई थी, और नीलपद्म-प्रासाद भूमिसात् हो चुका था। लोग खुल्लमखुल्ला राजपुरुषों पर आक्षेप करते, अकारण ही एक दूसरे पर आक्षेप करते और हत्या तक कर बैठते थे। अपराधों की बाढ़ आ गई थी। बहुत कुल-कुमारियाँ और कुल-वधू वेश्या बन कर हट्ट में आ बैठी थीं। उन्हें इसमें लज्जा नहीं थी। वे प्रसंग आने पर अम्बपाली का व्यंगमय भाषा में उदाहरण देकर कहतीं—हम इन पुरुष-पशुओं पर उसी की भांति शासन करेंगी। इनके धन-रत्नों का हरण करेंगी। यह लोक-सम्मत संस्कृत जीवन है, इसमें गर्हित क्या है? अकरणीय क्या है? नगर के बाहर एक योजन जाने पर भी नागर का जीवन, धन अरक्षित था। दस्युओं की भरमार हो गई थी, खेत सब सूखे पड़े थे। ग्राम, जनपद सर्वत्र 'हा अन्न, हा अन्न' का क्रन्दन सुनाई पड़ रहा था। भूख की ज्वाला से जर्जर काले-काले कंकाल ग्राम २ घूमते दीख पड़ते थे। किसी में किसी के प्रति सहानुभूति, प्रेम और कर्तव्य की भावना का अंश भी नहीं रह गया था। ये सब युद्ध के अवश्यम्भावी परिणाम थे।

अम्बपाली का द्वार सदैव बन्द रहता था। लोग सप्तभूमि-प्रासाद को देख २ कर क्रोध और आवेश में आकर अपशब्द बकते, तथा अम्बपाली को कोसते थे। सप्तभूमि-प्रासाद के गवाक्षों और अलिन्दों से दूर तक शोभा बखेरने वाला रंग-बिरंगा प्रकाश अब नहीं दीख पड़ रहा था। वहाँ सिंह पौर पर अब ताजे फूलों की मालायें नहीं सजाई जाती थीं—न अब वहाँ पहले जैसी हलचल थी, युद्ध में जो भाग भंग हो गया था, अम्बपाली ने उसको मरम्मत कराने की परवाह नहीं की थी—जगह २ भीतों, अलिन्दों, खम्भों और शिखरों में दरारें पड़ गई थीं उन दरारों में जंगली घास-फूँस, गुल्म उग आये थे। बीच के तोरणों में मकड़ियों ने जाले पूर दिये थे और कबूतरों, चिमगादड़ों ने उसमें घर बना लिये थे।

अम्बपाली के बहुत मित्र युद्ध में निहत हुये थे। जो बच रहे थे—वे अम्बपाली के इस परिवर्तन पर आश्चर्य करते थे। दूर २ तक यह बात फैल गयी थी कि देवी अम्बपाली का आवास अब मनुष्य-मात्र के लिए बन्द हो गया है। अम्बपाली के सहस्रावधि वेतन-भोगी दास-दासी, सेवक, कम्मकर, सैनिक और अनुचरों में अब कोई दृष्टिगोचर नहीं होता था। जो इने-गिने पारश्वंद रह गए थे, उनमें केवल दो व्यक्ति ही थे जो अम्बपाली को देख सकते और बात कर सकते थे। एक वृद्ध दण्डधर लल्ल और दूसरी दासी मदलेखा। इनमें केवल वृद्ध दण्ड-धर को ही बाहर भीतर सर्वत्र आने जाने की स्वाधीनता थी। ये ही दोनों यह रहस्य भी जानते थे कि अम्बपाली को सम्राट् बिम्बसार का गर्भ है।

यथासमय पुत्र-प्रसव हुआ। यह रहस्य भी केवल इन्हीं दो व्यक्तियों पर प्रकट हुआ। वह शिशु अतियत्न से, अतिगोपनीय रीति पर, अति सुरक्षा में उसी दण्डधर के द्वारा यथासमय मागध-सम्राट् के पास राजगृह पहुँचा दिया गया।

२

मागध सम्राट् बिम्बसार अर्द्ध-विक्षिप्त की भांति राज-प्रासाद में रहते थे। राज-काज ब्राह्मण वर्षकार ही के हाथ था। सम्राट् प्रायः महीनों प्रासाद से बाहर नहीं आते, दरबार नहीं करते, किसी राजकाज में ध्यान नहीं देते। वे बहुधा रात २ भर नंगे सिर, नंगे बदन नंगा खड्ग हाथ में लिए प्रासाद के सूने खण्डों में अकेले ही बड़बड़ाते घूमा करते। राज-सेवक यह सह गए थे, कोई भी बिना आज्ञा सम्राट् के सम्मुख आने का साहस न कर सकता था।

एक दिन, जब सम्राट् एकाकी शून्य हृदय, शून्य मस्तिष्क, शून्य जीवन, शून्य प्रासाद में, शून्य रात्रि में उन्मत्त की भांति अपने ही से कुछ

कहते हुए से उन्निद्र, नग्न खड्ग हाथ में लिए भटक रहे थे, तभी हठात् वृद्ध दण्डधर लल्ल ने उनके सम्मुख जाकर अभिवादन किया।

सम्राट् ने हाथ का खड्ग ऊँचा कर उच्च स्वर से कहा—"तू चोर है, कह क्यों आया।"

दण्डधर ने एक मुद्रा सम्राट् के हाथ में दी। और गोद में श्वेत कौशेय में लिपटे शिशु का मुँह उघाड़ दोनों हाथ आगे फैला दिए। सम्राट् ने देवी अम्बपाली की मुद्रा पहचान मन्दस्मित हो शिशु की उज्ज्वल आँखों को देख कर कहा—

"यह क्या है भणे!"

"मगध के भावी सम्राट्। देव, मेरी स्वामिनी देवी अम्बपाली ने बद्धांजलि निवेदन किया है कि उनकी तुच्छ भेंट-स्वरूप मगध के भावी सम्राट् आपके चरणों में समर्पित है।

सम्राट् ने शिशु को सिंहासन पर डालकर वृद्ध दण्डधर से उत्फुल्ल-नयन हो कहा—

"मगध के भावी सम्राट् का झटपट अभिवादन कर।"

दण्डधर ने कोष से खड्ग निकाल मस्तक पर लगा तीन बार मगध के भावी सम्राट् की जय-घोष की और खड्ग सम्राट् के चरणों में रख दिया।

सम्राट् ने उच्च स्वर से खड्ग हवा में ऊँचा कर तीन बार मगध के भावी सम्राट् का जयघोष किया और घण्ट पर आघात किया। देखते ही देखते प्रासाद के प्रहरी, रक्षक, कंचुकी, दण्डधर, दास-दासी दौड़ पड़े। सम्राट् ने चिल्ला २ कर उन्मत्त की भांति कहा—

"अभिवादन करो, आयोजन करो, गण-नक्षत्र मनाओ। मगध के भावी सम्राट् का जयजयकार करो।"

देखते ही देखते मागध प्रासाद हलचल का केन्द्र हो गया। विविध वाद्य बज उठे। सम्राट् ने अपना रत्नजटित खड्ग वृद्ध दण्डधर की कमर में बांधते हुए कहा—"भणे, अपनी स्वामिनी को मेरी यह भेंट देना।"

यह कह एक वस्तु वृद्ध के हाथ में चुपचाप दे दी। वह वस्तु क्या थी यह ज्ञात होने का कोई उपाय नहीं।

३

१० वर्ष बीत गए। युवक वृद्ध हो गए, वृद्ध मर गए, बालक युवा हो गए। अम्बपाली अब अतीत का विषय हो गई। पुराण-पुरुष युक्ति प्रत्युक्ति द्वारा युद्ध और अम्बपाली की बहुत-सी कथाएं कहने सुनने लगे। उनमें बहुत-सी अतिरञ्जित, बहुत-सी प्रकल्पित और बहुत-सी सत्य थीं। उन्हें सुन २ कर वैशाली के नवोदित तरुणों को कौतूहल होता। वे जब सप्तभूमि प्रासाद के निकट होकर जाते तो उसके बन्द शून्य और अरक्षित अशोभनीय द्वार को उत्सुकता और कौतूहल से देखते। इन्हीं दीवारों के भीतर इन्हीं अवरुद्ध गवाक्षों के उस ओर वह जनविश्रुत अम्बपाली रह रही है किन्तु उसका दर्शन अब देव, दैत्य, मानव, किन्नर, यक्ष, रक्ष सभी को दुर्लभ है। इस रहस्य की विविध किंवदन्तियां घर २ नित्य होने लगीं।

श्रमण बुद्ध बहुत दिन बाद वैशाली में आए। आकर अम्बपाली की बाड़ी में ठहरे। अम्बपाली ने सुना। हठात् सप्तभूमि प्रासाद में जीवन के चिन्ह देखे जाने लगे। दास-दासी कम्मकर कर्मिक दण्डधर भाग दौड़ करने लगे। दश वर्ष से अवरुद्ध सप्तभूमि प्रासाद का सिंहद्वार एक हलकी चीत्कार करके खुल गया। और देखते २ सारी वैशाली में यह समाचार विद्युत् वेग से फैल गया। अम्बपाली भगवद्बुद्ध के दर्शनार्थ बाड़ी में जा रही हैं। दस वर्ष बाद आज वह सर्वसाधारण के समक्ष एक बार फिर बाहर आई हैं। लोग झुण्ड के झुण्ड प्रासाद के सिंह-पौर को घेरकर तथा राजमार्ग पर डट गए। आज के तरुणों ने कहा—आज उस अद्भुत देवी का दर्शन करेंगे। नवोढा वधुओं ने कहा—देखेंगे देवी का रूप कैसा है। कल के तरुणों ने कहा—देखेंगे अब वह कैसी हो गई है। हाथी, घोड़े, शिविका

और सैनिक सज्जित हो होकर आने लगे। अम्बपाली एक पर आरूढ़ निराभरण, एक श्वेत कौशेय उत्तरीय से ... नतमुखी बैठी थी। उसका मुख पीत, दुर्बल, किन्तु तेजपूर्ण कोलाहल, भीड़-भाड़, पौर-जानपद की लाजा, पुष्पवर्षा किसी ने ध्यान-भंग नहीं किया। एक बार भी उसने आंख उठाकर किसी नहीं देखा। श्वेत मर्मर की अचल देव-प्रतिमा की भांति शुभ्र शोभा की मूर्त्त प्रतिकृति-सी वह निश्चल-निस्पन्द नीरव हाथी नयन किए बैठी थी। दासियों का पैदल झुण्ड उसके पीछे था।

उनके पीछे अश्वारोही दल था और उनके बाद हाथियों पर माल्य-भोज्य उपानय तथा पूज्य-पूजन सामग्री थी। सबके पीछे वाहन, कर्मचारी, नागर, पौर, जानपद। राजपथ, वीथी, हट्ट में दर्शक उत्सुकता और कौतूहल से उसे देख रहे थे।

बाड़ी के निकट जा उसने सवारी रोकने की आज्ञा दी। वह प्यादे वहां पहुँची जहां एक द्रुम की शीतल छांह में अर्हन्त श्रमण प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे। पीछे सौ दासियों के हाथ में गन्ध-माल्य, ... और पूज्य-पूजन साधन थे।

तथागत अब अस्सी को पार कर गए थे। उनके गौर, उन्नत, ... गात की शोभा गाम्भीर्य की चरम रेखाओं से विभूषित हो कोटि जनपद को उनके चरणों में अवनत होने का आवाहन कर रही थी। उनके सब केश श्वेत हो गए थे। किन्तु वे एक बलिष्ठ महापुरुष दीख पड़ते थे। वे पद्मासन लगाए शान्त मुद्रा में वृक्ष की शीतल छाया में आसीन थे। सहस्रावधि भिक्षु, नागर उनके चारों ओर बैठे थे। मुंडित और काषायधारी भिक्षुओं की पंक्ति दूर तक बैठी उनके श्रीमुख से निकले प्रत्येक शब्द को हृदयपटल पर लिख रहे थे।

आनन्द ने कहा—

"भगवन्! अम्बपाली देवी आई हैं।"

तथागत ने किञ्चित् हास्य-मुद्रा से अम्बपाली को देखा। अम्बपाली ने सम्मुख आ, अभिवादन किया। गंध-माल्य निवेदन कर पूज्यपूजन किया। फिर संयत भाव से एक ओर हटकर बैठ गई। बैठकर उसने करबद्ध प्रार्थना की—

"भन्ते भगवन्, भिक्षु-संघ सहित कल को मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया। तब देवी अम्बपाली भगवान् की स्वीकृति को जान आसन से उठ भगवान् की प्रदक्षिणा कर अभिवादन कर चल दी। इसी समय रथों, वाहनों, हाथियों अश्वों का महानाद, बहुत मनुष्यों का कोलाहल सुन अर्हन्त बुद्ध ने कहा—"आयुष्मान् आनन्द, यह कैसा कोलाहल है?"

आनन्द ने कहा—'भगवन्, यह लिच्छवियों के अष्टराजकुल परिजन सहित भगवान् की शरण आ रहे हैं।"

भगवान् ने कहा—"आनन्द, तथागत अब अंतिम बार वैशाली को देख रहा है। अब वैशाली वैसी नहीं रही। जब ये लिच्छवि सजधज कर तथागत के निकट आते थे, तब तथागत कहता था—भिक्षुओ, तुमने देवताओं को अपनी नगरी से बाहर आते कभी नहीं देखा है परन्तु इन वैशाली के लिच्छवियों को देखो जो समृद्धि और ठाट-बाट में उन देवताओं के ही समान है। वे सोने के छत्र, स्वर्णमण्डित पालकी, स्वर्ण-जटित रथ और हाथियों सहित आबाल वृद्ध सब विविध आभूषण पहने और विविध रंग से रंजित वस्त्र धारण किये सुन्दर वाहनों पर तथागत के पास आया करते थे। देख आनन्द, अतिसमृद्ध, सुरक्षित, सुभिक्ष रमणीय, जनपूर्ण-सम्पन्न गृह और हर्म्यों से अलङ्कृत, पुष्पवाटिकाओं और उद्यानों से प्रफुल्लित देवताओं की नगरी से स्पर्धा करने वाली वैशाली आज कैसी श्रीविहीन हो गई है।"

इसी बीच अष्टकुल के लिच्छवि राज-परिजन ने निकट आ अपने २

नाम कह भगवत् को अभिवादन किया और एक ओर
बैठ गए। उन्हें भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा संदर्शि
समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया।

तथागत के धार्मिकोपदेश द्वारा संप्रहर्षित हो लिच्छवि
बद्धाञ्जलि हो कहा—"भन्ते भगवन्, कल का हमारा
सहित ग्रहण करें।

भगवान् ने मन्दस्मित करके कहा—"वह तो मैं
स्वीकार कर चुका।"

तब लिच्छवियों ने उंगलियां फोड़ीं—"अरे, अम्बपाली ने
लिया, अम्बपाली ने हमें वंचित कर दिया?"

तब लिच्छवि गण भगवान् के भाषण को अभिनन्दित कर
को अभिवादन कर परिक्रमा कर, अनुमोदित कर, आसन से उठ
कुछ श्वेत वस्त्र धारण किये थे, कुछ लाल और कुछ आभूषण

अम्बपाली रथ में बैठकर लौटी। उसने बड़े २ तरुण
लिच्छवियों के धुरों से धुरा, चक्कों से चक्का, जुए से जुआ टकराया,
घोड़ों के बराबर अपने घोड़े दौड़ाए

लिच्छवि राजपुरुषों ने देखकर क्रुद्ध होकर कहा—"जे अम्बपा
क्यो दुहर लिच्छवियों के धुरों से धुरा टकराती है?"

"आर्यपुत्रो, मैंने भिक्षुसंघ के सहित भगवान् को भोज के लि
निमन्त्रित किया है।"

"जे अम्बपाली, शत सहस्र स्वर्ण ले इस भात को दे दे।"

"आर्यपुत्रो, यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस
भात को नहीं दूँगी।"

तब उन लिच्छवियों ने अंगुलियां फोड़ीं और अपने हाथ
पटककर कहा—

"अरे, हमें अम्बपाली ने जीत लिया; अरे
वंचित कर दिया।"

अम्बपाली ने अपना रथ आगे बढ़ाया और उसके सहस्र घण्टनाद के अतिरिक्त उसके पहियों से उड़ी हुई धूल का एक बादल पीछे रह गया।

४

तब अर्हन्त भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले बारह सौ भिक्षुसंघ सहित देवी अम्बपाली के आवास की ओर चले। अम्बपाली ने सैकड़ों कारीगर मजदूर लगाकर रातों-रात सप्तभूमि प्रासाद का शृङ्गार किया। तोरणों पर ध्वजा-पताकाएं अपनी रंगीन छटा दिखाने लगीं। गवाक्षों के रंगीन स्फटिक सूर्य की किरणों में प्रतिबिम्बित से होने लगे। सिंह-द्वार का नवीन संस्कार हुआ और उसे नवीन पुष्पों से सज्जित किया गया। तथागत अपने अनुगत भिक्षुसंघ के सहित पात्रचीवर हाथ में लिये भूमि पर दृष्टि लगाए वैशाली के राजमार्ग पर बढ़े चले जा रहे थे। उस समय वैशाली के प्राण ही राजमार्ग पर आ जूझे थे। अन्तरायण के सेट्ठि निगम जेट्ठक अपनी २ हट्टों से उठ उठकर माग की भूमि को भगवत् के चरण रखने से प्रथम अपने उत्तरीय से झाड़ने लगे। बहुत-से भीड़ में आगे निकल राजपथ पर अपने बहुमूल्य शाल-कौजेव और कौशेय बिछाने लगे। तथागत महान् वीतराग सत्त्व, महाप्राण अर्हन्त पौर जानपद जन की प्रचण्ड जयघोष से तनिक भी विचलित न होकर स्थिर पद पर पद रखते सप्तभूमि प्रासाद की ओर बढ़े जा रहे थे। उनकी अधोदृष्टि जैसे पाताल तक घुस गई थी। पौर वधू झरोखों से लाजा पुष्प तथागत पर फेंक रही थीं।

सप्तभूमि प्रासाद की सीढ़ियों को अवदात धुस्सों से ढांप दिया गया था; द्वार-कोष्टक पर स्वयं देवी अम्बपाली शुभ्र शुक्र नक्षत्र की भांति भगवत् के स्वागतार्थ खड़ी थी। उसने दूर से भगवत् को आते देखा, देखते

ही अगवानी कर भगवान् की वन्दना कर, आगे २ हो गई। वहां जाकर भगवान् श्रमण पौर की निचली ५ हो गए। अम्बपाली ने कहा—'भन्ते भगवान्, भगवान् सुगत, धुस्सों पर चलें। यह चिरकाल तक मेरे हित लिये होगा।

परन्तु भगवत् बुद्ध इतना कहने पर भी सीढी के नीचे रहे। सीढी पर पैर नहीं रखा। अम्बपाली ने दूसरी बार, फिर भी कहा। तब भगवान ने आयुष्मान् आनन्द की ओर देखा। कहा—"देवी अम्बपाली, धुस्सों को समेट लो, भगवान् चै नहीं चढ़ेंगे। तथागत आगे आने वाली जनता का विचार कर

तब अम्बपाली ने धुस्सों को समेट लिया; और प्रासाद खण्ड में भोजन के लिये आसन बिछवाया। भगवान् बुद्धसंघ बिछे आसन पर बैठे। तब अम्बपाली ने बुद्ध सहित भिक्षुसंघ क हाथ से उत्तम खादनीय पदार्थों से तर्पित किया, संतुष्ट किया। के भोजन कर पात्र से हाथ खींच लेने पर देवी अम्बपाली एक आसन लेकर एक ओर बैठ गई।

एक ओर बैठी अम्बपाली को भगवान् ने धार्मिक कथा से समुत्तेजित किया। अम्बपाली तब करबद्ध सामने आकर खड़ी हुई।

भगवत् ने कहा—"अम्बपाली, अब और तेरी क्या इच्छा है?"

"भन्ते, भगवन्, एक भिक्षा चाहिए।"

"वह क्या अम्बपाली?"

"आज्ञा हो भन्ते, कोई भिक्षु अपना उत्तरीय मुझे प्रदान करें।"

भगवत् ने आनन्द की ओर देखा। आनन्द ने अपना उत्तरीय उतार कर अम्बपाली को भेंट दे दिया। क्षण भर के लिये अम्बपाली भी— —

परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी उत्तरीय मे

कंचुक और

अब उसके अङ्ग पर आनन्द के दिये हुए उत्तरीय को छोड़ और कुछ न था। न वस्त्र, न आभूषण, न शृङ्गार। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधार बह रही थी। वह आकर भगवत् के सामने पृथ्वी पर लोट गई। भगवत् ने शुभहस्त से उसे स्पर्श करके कहा—"उठो, उठो, कल्याणी, कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"भन्ते भगवन्, इस अधम अपवित्र नारी की विडंबना कैसे बखान की जायगी। यह महानारी शरीर कलङ्कित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ संकल्प से मै वंचित रही। भगवन्, यह समस्त सम्पदा कलुषित तपश्चर्या का संचय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्यहृदया रह कर अब तक जीवित रही हू, यह कैसे कहूं ? मेरे जीवन में दो ज्वलन्त दिन आए। प्रथम दिन के फलस्वरूप मैं आज मगध के भावी सम्राट् की राजमाता हूं। परन्तु भगवन्, आज के महान् पुण्य-योग के फलस्वरूप अब मैं इससे उच्चपद प्राप्त करने की धृष्ट अभिलाष रखती हू। भन्ते भगवन् प्रसन्न हों, जब भगवत् की चरण रज से यह आवास एक बार पवित्र हुआ तब यहां अब विलास और पाप कैसा ? उसकी सामग्री ही यहां क्यों ? उसकी स्मृति ही क्यों ?

इसलिये भगवच्चरण-कमलों में यह सारी सम्पदा, प्रासाद धनकोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित हैं। भगवत् ने जो यह भिक्षु का उत्तरीय मुझे प्रदान किया है मेरे शरीर की लज्जा-निवारण को यथेष्ट है। आज से अम्बपाली तथागत के शरण है भिक्षुकी है। यह इस भिक्षा में प्राप्त पवित्र वस्त्र को प्राण देकर भी सम्मानित करेगी।

इतना कह अविरल अश्रुधारा से भगवच्चरणों को धोती हुई, अम्बपाली अर्हन्त बुद्ध की चरणरज नेत्रों से लगा कर उठी और धीरे धीरे प्रासाद से बाहर चली गई। दास-दासी, दण्डधर, कर्णिक, कंचुकी, भिक्षु देखते रह गये।

महावीतराग बुद्ध आप्यायित हुए। उनके सम्पूर्ण जीवन में त्याग का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण था।

अम्बपाली, उस पीत परिधान को धारण किये नीचा सिर कि पैदल उसी राजमार्ग से भूमि पर दृष्टि दिए धीरे २ नगर से बाहर रही थी, जिसमे कभी वह मणि-माणिक्य से जड़ी चलती थी। ५६. नगर पौर जानपद उन्मत विमूढ हो उसके पीछे-पीछे चल दिये सहस्र २ कण्ठ से—'जय अम्बपाली, जय साध्वी अम्बपाली' का गगन भेदी नाद उठा। और उसके पीछे समस्त नगर उमडा जा रहा था। खिडकियों से पौरवधुएं पुष्प और खील वर्षा कर रही थीं।

भगवत् ने कहा-"आयुष्मान् आनन्द, यह सप्तभूमि प्रासाद भिक्षुओं का सर्वश्रेष्ठ विहार हो। भिक्षु यहां रह कर सन्मार्ग का अन्वेषण कर—यही तथागत की इच्छा है।"

इतना कह भगवत् बुद्ध उठकर भिक्षु-संघ सहित वाड़ी की ओर चल दिए।

५

महाश्रमण भगवत् बुद्ध अम्बपाली की वाडी में आ स्वस्थ हो आसन पर बैठे। तब अम्बपाली केशों को कटा कर काषाय पहिने मार्ग चलने से फूले-पैरों, धूल-भरे शरीर से दुखी, दुर्मना अश्रुमुखी पांव-प्यादे, रोती वाड़ी के द्वार-कोष्ठक के बाहर आकर खड़ी होगई। उसके साथ बहुत-सी लिच्छवि स्त्रियां भी हो ली थीं।

इस प्रकार द्वार-कोष्ठक पर अम्बपाली को श्रान्त, दुखी और अश्रु-पूरित खड़ी देख आयुष्मान् आनन्द ने पूछा-"सुश्री अम्बपाली, अब यहां इस प्रकार तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है?"

"भन्ते आनन्द, मैं भन्ते भगवान् से प्रव्रज्या लेना चाहती हूं।"

"तो भगवती अम्बपाली, तुम यहीं ठहरो, मैं भगवान् से अनुज्ञा ले आता हूं।"

इतना कह आनन्द अर्हन्त गौतम के

अम्बपाली फूले-पैरों धूल-भरे शरीर से दुखी दुर्मना अश्रुमुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठक पर खड़ी है। वह प्रव्रज्या की अनुज्ञा मांगती है। भन्ते भगवन्, भगवती अम्बपाली को प्रव्रज्या की अनुज्ञा मिले। उन्हें उपसंपदा प्रदान हो।"

"नहीं आनन्द, यह सुकर नहीं। तथागत के जतलाए धर्म में अम्बपाली घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले।"

"भन्ते, क्या तथागत-प्रवेदित धर्म में घर से बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियां स्रोत-आपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्त्व-फल को साक्षात् कर सकती हैं?"

"कर सकती हैं आनन्द!"

"यदि भन्ते, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय में घर से बेघर प्रव्रजित हो स्त्रियां अर्हत्त्व-फल को साक्षात् करने योग्य हैं, तो भन्ते! भगवती अम्बपाली इसके लिये सर्वथा सम्यग् उपयुक्त है।

कुछ देर अर्हन्त बुद्ध ने मौन रह कर कहा—"तो आनन्द, यदि सुश्री अम्बपाली आठ गुरुधर्मों को स्वीकार करे तो उसे प्रव्रज्या मिले। उसकी उपसम्पदा हो।"

तब आनन्द भगवान् से इन आठ महाधर्मों को समझ, द्वारकोष्ठक पर जहां अम्बपाली फूले पैर धूल-भरे शरीर और अश्रु-पूरित नयनों से खड़ी थी वहां पहुंचे। पहुँच कर अम्बपाली से कहा—"भगवती अम्बपाली यदि आठ महाधर्मों को स्वीकार करें तो शास्ता तुम्हें उपसम्पदा देंगे, प्रव्रज्या देंगे।"

"भन्ते आनन्द, जैसे अपने जीवन के प्रभात में मैं शिर से नहा कर उत्पल वर्षिक माला या अतिमुक्तक माला को दोनों हाथों से चाव-सहित अङ्ग पर धारण करती थी उसी प्रकार भन्ते आनन्द, मैं इन आठ गुरु धर्मों को स्वीकार करती हूं।"

तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवत् के निकट जा अभिवादन कर

सन्तोष के लिए नहीं; भीड़ के लिए हैं, एकान्त के लिये नहीं; अनुद्योगिता के लिए हैं, उद्योगिता के लिए नहीं; दुर्भरता के लिए हैं, सुभरता के के लिए नहीं। तो तू अम्बपाली शुभे, एकांसेन जान कि न वह धर्म है न विनय है; न शास्ता का शासन है।"

कुछ देर मौन रह कर भगवत् ने फिर कहा—"जा अम्बपाली, तुझे उपसम्पदा प्राप्त हो गई अपना और प्राणी मात्र का कल्याण कर।"

भगवत्, अर्हन्त प्रबुद्ध बुद्ध ने इतना कह—उच्च स्वर से कहा—'भिक्षुणो, महासाध्वी अम्बपाली भिक्षुणी का स्वागत करो।"

फिर जयनाद से दिशाएं गूँज उठीं। अम्बपाली ने आँसू पोंछे भगवत् सुगत की प्रदक्षिणा की और भिक्षुसंघ के बीच में होकर पृथ्वी पर दृष्टि दिए वहाँ से चल दी। उसके पीछे ही एक तरुण भिक्षु ने भी चुपचाप अनुगमन किया। आहट पाकर अम्बपाली ने पूछा—"कौन है?"

"भिक्षु सोमप्रभ, आर्ये!"

अम्बपाली बोली नहीं, रुकी भी नहीं, पीछे फिर कर एक बार देखा भी नहीं। एक मन्दस्मित की रेखा उसके सूखे होठों और सूखी हुई आंखों में भास गई। वह चलती चली गई। चलती चली गई॥

उस समय प्रतीची दिशा लाल २ मेघाडम्बरों से रंजित हो रही थी। उसकी रक्तिम आभा आम के नवीन लाल २ पत्रों को दुहरी लाली मे रंगीन कर रही थी, ऐसा प्रतीत होता था सान्ध्य सुन्दरी ने उसी क्षण मांग में सिंदूर दिया था।

समाप्त

भूमि

हिंदी-कथा-सोपान की पांचवीं पीढ़ी का शिलान्यास

यह उपन्यास लेकर मैं हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की पांचवीं पैढ़ी का शिलान्यास कर रहा हूं और इस मङ्गल अवसर पर सम्पूर्ण साहित्य-परिजन को श्रद्धांजलि अभिवादन निवेदन करता हूँ। मुझसे प्रथम हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की चार पैढ़ियों का शिलान्यास मुझसे पूर्ववर्ती साहित्य-पुरुष सर्वश्री गोपालराम गहमरी (१८६० ई०), देवकीनन्दन खत्री (१८६२ ई०), किशोरीलाल गोस्वामी (१६०६ ई०) और प्रेमचन्द (१६१७ ई०) ने किया। इनमें प्रथम तीन भारतेंदु-युग के त्रिविध प्रभावकालीन हैं और चौथे प्रेमचन्द द्विवेदी-युग के साहित्य-पुरुष हैं। इन चारों साहित्य-पुरुषों ने अपने हाथो से हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की एक २ पैढी का निर्माण किया, जिन पर तब से अब तक सैंकड़ों साहित्य-चरण पड़े।

उपन्यास-धारा के तीन प्रवर्तक

सर्वश्री गोपालराम गहमरी, देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी उपन्यास की तीन पृथक्-पृथक् धाराओं के प्रवर्तक हैं। इन तीनों साहित्य-पुरुषों ने उपन्यासक्षेत्र में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि की। भारतेंदु-काल के पूर्वार्द्ध में कुल चार ही उपन्यास प्रकाशित हुये थे। उसके बाद कुछ बंगला उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित हुये थे, जिनके कारण जनता की रुचि उपन्यास पढ़ने की ओर झुकी। इसी समय इन तीन उपन्यासकारों ने जासूसी, ऐयारी और तिलस्मी उपन्यासों की बाढ़ लगा दी। गहमरीजी ने २०५, खत्रीजी ने ४६ और गोस्वामीजी ने २५ उपन्यास लिखे। इन तीनों कथाकारों

की लेखनी के चमत्कार से हिन्दी बहुत अंश में सर्वसा॰
साहित्य की प्रतिनिधि भाषा हो गई।

गहमरीजी ने बासठ वर्ष एक ही कलम से लिखा।
की तीन पीढ़ियाँ देखीं। इस हिसाब से ये हिन्दी के ।
योग्य हैं। उन्होंने उपन्यास की जासूसी धारा का प्रवर्त
इस धारा पर वे तीन पीढ़ियों तक अकेले ही बासठ व
रहे। उनकी परम्परा में एक भी अनुगत साहित्य-पुरुष
परन्तु उन्होंने अकेले ही २०९ उपन्यास लिखे। जब पहिले-
जासूसी उपन्यास लिखने प्रारम्भ किए तो उनके प्रति जो
अभिरुचि उत्पन्न हुई। इनके उपन्यासों की भाषा ...
की थी, और उसमें देहाती ढग की कुछ ऐसी प्रचलित भा॰
थीं जिन्हें तत्कालीन पाठकों ने बहुत २ पसंद किया। इन उ॰
थोड़ा-सा बुद्धि-वैचित्र्य का मसाला भी रहता था और पात्रो
उनकी चालाकियां तथा कमज़ोरियां और घटनायें एवं कथावस्तु
उनकी प्रतिक्रियायें, कुछ परिचित, कुछ कौतूहलपूर्ण और कुछ ...
ढंग पर होती थीं। इन सब कारणों से इन उपन्यासों की जन-सा॰
में अच्छी खासी धूम मच गई थी। गहमरीजी में इस प्रकार के उ
लिखते रहने की अद्भुत सामर्थ्य थी। यद्यपि साहित्य की दृष्टि
उपन्यास कुछ मूल्य नहीं रखते थे, परन्तु निस्संदेह यह एक अद्भुत
आश्चर्य की बात है कि यह अकेला पुरुष एक ही कलम से बासठ
तक लिखता ही चला गया। इस दीर्घ काल में हिन्दी-साहित्य
अनेक शाखा-प्रशाखायें विकसित हुईं, परन्तु गहमरीजी का एक
साथी नहीं उत्पन्न हुआ। वे अकेले ही अपनी चलाई हुई जासूसी
न्यासों की परम्परा में कलम चलाते चले गये, और अन्त में उन्हीं
जीवन-काल में उनकी यह परम्परा समाप्त भी हो गई।
साहित्य के इतिहास में निस्संदेह य...

एक ही घटना है।

खत्रीजी ने ऐयारी-उपन्यास लिख कर अद्भुत लेखन-शक्ति का परिचय दिया। इनके उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि जो लोग हिन्दी-पुस्तकें नहीं पढ़ते थे वे भी हिंदी सीखने की ओर कृत-संकल्प हुए। इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य ही था। रस-संचार, भाव-विभूति या चरित्र-चित्रण उनमें न आ पाया। वे एक प्रकार के घटना-प्रधान किस्से थे, जिनमें जीवन के विविध अंगों की अभिव्यञ्जना का सर्वथा अभाव था। इसी से इनकी रचनायें साहित्य-कोटि में नहीं गिनी जा सकीं। परंतु उन्हें हिंदी के अनगिनत पाठक उत्पन्न करने का श्रेय अवश्य प्राप्त है; और इस दृष्टि से वे उस युग के सभी ग्रन्थकारों के अग्रगण्य हैं।

गोस्वामीजी की रचना कुछ साहित्य-कोटि में आती हैं। उनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चरित्र, वासनाओं के अतिरंजित किंतु आकर्षक वर्णन मिलते हैं। चरित्र-चित्रण की भी झलक कहीं २ है। 'उपन्यास-वस्तु' की प्राप्ति पहिले-पहिल हिंदी-कथा-साहित्य में इन्हीं की लेखनी में प्राप्त हुई। इस दृष्टि से इन्हें हिंदी के प्रथम उपन्यासकार कहा जाना चाहिए।

इन तीनों उपन्यास-प्रणेताओं ने हिन्दी-कथा-साहित्य-सोपान की जो एक-एक पैडी का निर्माण किया उन पर सर्वश्री गंगाप्रसाद गुप्त, अमृतलाल चक्रवर्ती, हरिकृष्ण जौहर, लज्जाराम महता, बृजनन्दन सहाय, बृजरत्न तथा जयरामदास गुप्त आदि साहित्य-जनो ने आरोहण किया।

प्रेमचन्द द्विवेदी-युग के परिपूर्ण उपन्यासकार तथा हिन्दी-कथा-साहित्य की पूर्णता के प्रतीक रहे।

प्रेमचन्द — उनकी सब से बडी विशेषता यह थी कि उनकी देश-प्रेम की भावना ने वासना का रूप धारण कर लिया था। एवं वासना ने ही उनमें तन्मयता और

भावावेश उत्पन्न कर दिया। इसी से उन्होंने छोटी बड़ी जो
निर्मित की, उनमें चरित्र, विचार, उत्क्रांति, विश्वदर्शन, प्रसाद
के जो रखा-चित्र बने, उन सब पर देश-प्रेम की वासना का
रहा। प्रेमचन्द जिस युग में उत्पन्न हुए उसमें मनुष्य मनुष्य
आ चुका था, और विश्व सिमट कर मनुष्य के नेत्रों का विषय
था। विश्व में धर्म, अर्थ, राजनीति और समाज में उथल-पु-
हुई थी, परन्तु प्रेमचन्द विश्व का वह रूप देखने की सामर्थ्य
भी उसे न देख पाये। उन्हीं के सामने कुछ तरुण अपनी
लिए उन सब विराट् भावनाओं के चित्र हिन्दी कथा-भूमि में
थे, परन्तु प्रेमचन्द की भांति उनमें से किसी में भावना में
आसक्ति नहीं उत्पन्न हुई थी। इसी से उनके चित्र कुछ बने नहीं
रंग फीका हो गया, कहीं रेखायें अस्पष्ट और कहीं स्थूल हो
प्रेमचन्द की वासना यदि देश-भक्ति की अपेक्षा मानव-जनपद पर
शित होती तो प्रेमचन्द कदाचित् अपने युग के ही श्रेष्ठ उपन्या
न रह जाते, उनकी साहित्य-आयु बहुत बढ जाती। उन्होंने मान.
को वारम्बार छुआ भी, मानव-मूर्ति को चाव से घडा भी, पर उन
में केवल मानव-कल्याण की भावना का ही दिग्दर्शन हो पाया। प्रे.
जहां देशभक्ति के नशे में चूर रहे. वहां मानव-कल्याण के केवल
वकील ही रहे।

इधर हिन्दी-कथा-साहित्य के विकास के साथ २ ऐतिहासिक उ
न्यास भी लिखे गये। इन ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में श्री वृ
लाल वर्मा अग्रगण्य रहे। उनकी रचनाएं वे
उनके अध्ययन या चयन ही का प्रतिफल नहीं
उनमें उनकी प्रतिभा और तल्लीनता की
छाप है, बिना ऐसी तल्लीनता के अतीत
के तमसावृत समुद्र-गर्भ से जीती

ऐतिहासिक
उपन्यास

परन्तु वृन्दावनलाल वर्मा इतिहास की सत्य-रेखाओंपर ही चले, इससे उनके उपन्यासों में इतिहास-रस की अपेक्षा इतिहाससत्य अधिक व्यक्त हुआ। इससे उनकी रचना में भावना और तल्लीनता की अपेक्षा सतर्कता अधिक व्यक्त हुई। इसी से उनके उपन्यासों में इतिवृत्त की झलक दीख पड़ने लगी। इस कारण उनके उपन्यास हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं और पाठक उनके पात्रों के सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख में आरोपित नहीं कर पाता तथा एक सहानुभूति-पूर्ण दर्शक मात्र ही रह जाता है।

इतिहास-रस

यह प्रगट है कि ऐतिहासिक उपन्यास काव्य और कहानियों में जो ऐतिहासिक तथ्य होते हैं वे विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं। उनमें बहुत कल्पना और विकृति मिली होती है। पाठकों को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि 'उपन्यास काव्य या कहानी को पढ़ कर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेंगे। ऐसी पुस्तकों में तो उन्हे इतिहास के स्थान पर केवल 'इतिहास-रस' ही की प्राप्ति होगी। भारतीय साहित्य में कभी रामायण और महाभारत इतिहास माने जाते थे, परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणाएँ उनकी इतिहास कहानी को स्वीकार नहीं करतीं। उनकी दृष्टि में वे केवल काव्य ही है। वास्तव में ऐतिहासिक काव्यों, उपन्यासों और कहानियों का इतिहास की सीमा का उल्लंघन करने के कारण इतिहास-कुल से विच्छेद कर दिया गया है। यह केवल भारतीय साहित्य ही की बात नहीं है, पाश्चात्य साहित्य में भी ऐसा ही हुआ है। इतिहास के 'विशेष सत्य" और साहित्य के भी "चिर सत्य" के सिद्धांतों पर यहां हम थोड़ा विचार करेंगे। 'चिर सत्य' ऐसे साहित्य का प्राण है। चिरन्तन मानव-समाज में चरित्र और परिस्थिति की जो विकृति होती है वही चिर-सत्य है। ऐसे कथानकों में साहित्यकार इसी चिर-सत्य को चित्रित करता है। इतिहास की विशिष्ट सत्य घटनाओं का उसे पूरा ज्ञान नहीं होता। होने पर भी वह जान-बूझ कर उनकी उपेक्षा

कर सकता है, क्योंकि उसका काम तात्कालिक घटनाओं की सूची देना नहीं, तात्कालिक समाज-प्रवाह का वेग दिखाना होता है।

यह कहा जा सकता है कि उसे ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने में पहिले ऐतिहासिक विशेष सत्यों को जानना चाहिये। परन्तु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन में नहीं कर सकता, क्योंकि ऐतिहासिक विशेष सत्यों का ज्ञान कभी भी पूरा नहीं हो सकता, उनमें गवेषणा करने वाले विद्वानों के द्वारा नई २ जानकारी होते रहने से निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। फिर क्यों न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास को चिर-सत्य के आधार पर—जिसमें गवेषणा की कोई गुञ्जायश नहीं—रचना करे; और ऐसी रचनायें—जो साहित्य-संश्लिष्ट हैं और जिनका आरम्भ एक अनिर्दिष्ट रस है—अपने स्थान पर पूजित हों। साहित्य के आचार्यों ने नौ मूल रसों को साहित्य-सृजन में महत्त्व दिया है, परन्तु उनके सिवा कुछ अन्य 'अनिर्दिष्ट रस' हैं, जिनमें एक "इतिहास-रस" भी है।

जगत् में जीवन पाकर मनुष्य अनेक सुख-दुःखों की घाटियों को पार करता है। उसे अनेक बार रोना और अनेक बार हँसना पड़ता है। उसका अपना जो छोटा-सा सुख और दुःख है वह उसेब हुत बड़े रूप में दीख पड़ता है; क्योंकि वह उसी में अभिभूत हो जाता है। उस सुख-दुःख की समता में वह संसार की बड़ी घटनाओं को छायामात्र मानता है। एक नगण्य व्यक्ति भी जब राम, सीता, दमयन्ती, नल उपाख्यान में उनकी महती सम्पत् विपत् की कहानी पढ़ता है तो वह उनकी समता अपने छोटे-से-छोटे सुख-दुःख से कर डालता है। उसे अपना ही सुख-दुःख भारी और बड़ा प्रतीत होता है। इसलिये उपन्यास या कहानी अथवा काव्य में जब वह विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन और उत्थान-पतन का ठीक २ वर्णन पढ़ता है तो उसके हृदय में रसावेश का प्रवाह उत्पन्न हो जाता है जो उसके अतिनिकट आकर उसे आक्रान्त करता है।

उपन्यासों और कहानियों में जिन पात्रों के सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति और जीवन के साहसपूर्ण परिणामों की झांकी दिखाई जाती है वह प्रायः ऐसी होती है जिसमें जीवन का क्षोभ बन्धु-परिजन और कुछ घनिष्ठ व्यक्तियों में ही समाप्त हो जाता है। इसी से पाठक उसे अपनी ही पारिवारिक सम्पत्ति विपत्ति समझ कर हर्ष-विषाद में डूब जाता है। परन्तु संसार में कुछ ऐसे पुरुष भी जन्मते हैं जिनके सुख-दुःख विश्व की महत् घटनाओं के साथ सम्बन्धित होते हैं, रक्त की नदियां बहती हैं। प्रलय की मेघ-गर्जना के समान महाकाल की नियति-परम्परा में उनका राग-विराग अंकित होता है। और कवि की भाव-कल्पना के सहारे जब उनकी कहानी मनुष्य के लिये ज्ञेय बन जाती है तो उस देख सुनकर मानव लोक-भाव-विमोहित हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसे जातियों के इतिहास के निर्माता साहित्यकार यदि हमारे नेत्रों के सामने जीवित होते है तो अपने अल्प जीवन में उनका विराट् रूप हम नहीं देख सकते हैं। इसी से उन्हें उनकी यथार्थ प्रतिष्ठा-भूमि पर स्थापित भी नहीं कर सकते। उन्हें महाकाल की नियति के एक अङ्ग में देखने के लिये हमें उनसे दूर खड़ा रहना पड़ता है, इसी से अतीत में उनकी स्थापना होती है। और उन्हें अकेले नहीं, वे जिस बृहत् नाटक-अभिनय के एक पात्र थे उसके साथ देखते हैं। तब मालूम होता है कि विश्व-पथ पर मानव-कुल के ये महारथी किस अलौकिक कौशल और सामर्थ्य से काल के पहिये को घुमाते चले जा रहे हैं। उस समय कोटि २ जनपद आवेशित होकर जीवन की क्षुद्र परिधि से क्षण भर के लिये मुक्त हो जाता है और उनसे वह अपने परिमित सुख-दुःख का मुकाबला नहीं कर सकता। तब वह तथाकथित अनिर्दिष्ट रस "इतिहास-रस" के स्वाद की एक बूंद का आनन्द प्राप्त करता है।

इस अनिर्दिष्ट 'इतिहास-रस' के उदय का एक और कारण भी है। इसमें रस का एक स्रोत मिश्रित है। वह साधारण भी है और

असाधारण भी । वह है नारी-प्रणय । जहां इतिहास-रस का होता है वहां प्राय: यही देखने को मिलता है कि हृदय-वि व राष्ट्र-विप्लव हुआ । इतिहास के अनेक असाधारण नरवरों ने माया के वशीभूत होकर जीवन-भंग किया है । मानव-कुल के ऐसे करुण भग्नावशेषों से संसार-पथ भरा पड़ा है । लेखक जब भंग की इन घटनाओं पर विप्रलम्भ-शृंगार और 'इतिहास-र मिश्रण करके भैरव-संहार की भेरी बजाता है तो कोटि २ जनपद उद्भ्रान्त होकर लोट-पोट हो जाता है । अब कोई इसे प्रमाणों के धक्के देकर हजार ऐतिहासिक भूलें निकालता फिरे, उसे भ्रान्त विकृत कहता फिरे; पर कवि ने जिस 'इतिहास-रस' की सृष्टि की है इतिहास के लाख सत्य प्रकट होने पर भी फीका न होगा ।

इस उपन्यास की कथा-वस्तु का आधार बौद्ध ग्रन्थों में उल्लि वैशाली की गणिका अम्बपाली है । बहुत दिन हुए सम्भवतः

कथा-वस्तु

से बीस बरस पहले मेरी दृष्टि इस से सम्बन्धित एक बौद्ध उपाख्यान पर पड़ी जिसमें इस बात का उल्लेख था गणिका अम्बपाली ने वैशाली में आने पर बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था और उस पर वैशाली के राजपुरुषों ने ईर्षा की थी । यह भी मैंने सुना कि वैशाली गणतन्त्र में एक ऐसा कानून था जिसके आधार पर राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को अविवाहिता रखकर उसे वेश्या बना दिया जाता था[२] । इसी पर से मैंने अपनी कल्पना के सहारे एक छोटी-सी कहानी उन्हीं दिनों में लिखी थी जो एक पत्रिका में छपी थी ।[१] इसके बाद अम्बपाली पर कई कहानी उपन्यास और लेख मेरे देखने में आए और मेरे मस्तिष्क में अम्बपाली को लेकर एक उपन्यास लिखने की भावना जड़ कर बैठी । परन्तु यह काम सहज न था । फिर भी

---

१. महावग्ग—६।४।७ २. पवे

मैं इसकी वास्तविक कठिनाइयों से ठीक २ अभिज्ञ न था। मै उत्सुक और दत्तचित्त होकर बहुत दिन तक सोचता ही रहा। समझ ही में न आ रहा था—कहां से प्रारम्भ करूं, कैसे करूँ। सन् '३८ के शरद् में मुझे एक श्रीमन्त की चिकित्सार्थ विहार जाना पड़ा। मुझे हठ करके राजगृह ले गये। वहां यों तो हरी-भरी पहाड़ियों को छोड़कर कुछ भी न था। मैं कई दिन उन पहाड़ियों में भटकता और घण्टों गर्म जल के सोतों में सुखद स्नान करता रहा। परन्तु पता नहीं कौन-सी दैवी-प्रेरणा थी कि वहां रहते हुए मै जागृत स्वप्न देखने लगा। मैं सब से आंख बचा किसी शिलाखण्ड की आड में बैठ जाता और सोचता रहता। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कोई ग्रन्थ मै पढ़ रहा हूं। अध्याय के अध्याय मेरी आंखों के सामने से गुजरने लगे। पात्रों की बातचीत प्रत्यक्ष कानों में सुनाई देने लगी। मुझे भय हुआ कि कहीं कोई ज़हरीली वस्तु खा लेने से मस्तिष्क में विकार तो नहीं हो गया है? दैव-योग से मैं जिस रोगी की चिकित्सार्थ गया था वह रोगी भी उन्माद-रोग-ग्रसित था। वह एकान्त में बैठा २ बहुधा होंठ और आंखें हिलाता, हंसता, मुस्कराता और कभी २ चिल्ला २ कर असम्बद्ध प्रलाप किया करता था।

मैं यह देखकर परेशान होने लगा कि मेरी भी ठीक उसी के जैसी दशा होने लगी थी। केवल चीखता चिल्लाता न था। अन्तत. यह सोच कर कि मैं कदाचित् स्वस्थ नहीं हूं मैंने जल्द से जल्द घर लौटने का निश्चय किया। घर आकर भी मेरी वही दशा रही। उन घाटियों में बसे हुए समृद्ध नगर, उनकी सेना, सम्पत्ति, वैभव, संस्कृति, संघर्ष दिन दिन सजीव होते गए। इसके साथ ही अम्बपाली की एक स्थिर मूर्ति का चित्र भी मेरे मस्तिष्क में अंकित होता गया। 'वैसोढ़' को मैं पहले ही देख आया था। उससे बहुत दिन पूर्व एलौरा और अजन्ता की

गुहाएं देखी थीं। अब उनके स्त्री-चित्रों को मैं घण्टों देखकर ७ की उनमें व्यक्ति करने लगा। धीर २ अम्बपाली की एक ७ मूर्ति मेरे मानस पर अंकित हो गई। तथाकथित उस प्राचीन क मुझे अम्बपाली का हिमायती बना दिया। मैंने साहित्य और अ रस में उस मूर्ति को दुव ... दे-देकर उसे अपने साथ इस अंगीभूत कर लिया कि एक दिन जब मैं शीतल-स्निग्ध चांदनी में . हुआ था तो मैंने आकाश में वह उज्ज्वल सजीव मूर्ति स्पष्ट दे. उसके होंठ हिलते हुए, आंचल हवा में फरफराता हुआ, नेत्र आव करते हुए स्पष्ट मैंने देखे। मेरे शरीर के सम्पूर्ण जीवकोष ... वशीभूत हो गए और मैंने कहा—'नाचो अम्बपाली!' और अम्बपाली नाचा। मैंने इन्हीं आंखों से उस स्वच्छ नील गगन में चन्द्रमा के उज. आलोक में नाचते देखा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं भी आक में ही उसके निकट पहुँच गया हूँ। मैं उसके श्वास से निकलते हु सौरभ और नृत्य से झंकृत पैंजनियों की ध्वनि प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा। एकाएक मुझे प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति गायब हो गई और . वेग से नीचे आ गिरा। सम्भवतः मेरे मुंह से चीख या शब्द निकला था और पत्नी ने उठकर मुझे सावधान किया था। मेरा सम्पूर्ण शरीर पसीने से तर था; और मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि मेरी क्या हालत है; परन्तु यह मैं दृढ़तापूर्वक सैंकड़ों बार कह चुका हूं और अब फिर कहता हूं कि मैंने स्वप्न नहीं देखा था। मैंने जो कुछ देखा जागते हुए। सत्य! सब सत्य! उस समय दो बजे थे। यही समय मेरे साहित्य लेखन का है। मैंने तुरन्त उठकर उस नृत्य का वर्णन लिखा, जिसका संशोधित रूप इस उपन्यास में कलमबन्द है।

बस, यहीं से इस उपन्यास का लिखना प्रारम्भ हुआ। पर बड़ी ही धीमी गति से। थोड़े ही दिन में मेरा वह उन्माद समाप्त हो गया और फिर एक दो वर्ष तो मैंने इन कागजों को ...

एक बार अहमदाबाद जाना हुआ। वहां गुर्जर भाषा के मार्मिक कथा-लेखक श्री धूमकेतु से मिलने गया। उन्होंने अपनी कहानियों का एक छोटा-सा संग्रह दिया। उसमें एक कहानी अम्बपाली से सम्बन्धित भी थी। उसे पढ़ते ही पुराना उन्माद रोग फिर उभर आया और इस बार घर लौटकर मैं इस उपन्यास में जुट गया। बहुत अध्ययन किया, बहुत मनन किया। उस दिन आकाश में नृत्य करती हुई अम्बपाली के जो नेत्र देखे थे वे जैसे मुझे आंखो से ओझल ही नहीं होने देते थे। मैं दिन में तो लिखने पढ़ने का क्षण भर भी अवकाश नहीं पाता हूं, रात को दो बजे से लिखता हूं सो मैं स्पष्ट देखता था कि जब मैं एकान्त निशा में लिखना प्रारम्भ करता तो वे दोनो उज्ज्वल अविनश्वर नेत्र मेरे कन्धों के पीछे से झांक २ कर प्रत्येक अक्षर को पढ लेते थे। इससे मैं इस उपन्यास को लिखते हुए कभी थका नहीं, कभी ऊबा नहीं।

'४२ के जून में उपन्यास तैयार हो गया। अगस्त में जन अशान्ति हुई। उसी समय दो धूर्त मित्रों ने मेरा सान्निध्य प्राप्त करके मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। उस अशान्ति में वे मुझे अपने संरक्षण में ले गये और दैवविशङ्क से मुझे उनका उपकृत होना पडा। इसी समय मेरे इन हितैषी मित्रों ने इस उपन्यास की पूर्णाहुति के उपलक्ष में एक भव्य समारोह का आयोजन कर डाला। अनेक साहित्य-जन पधारे, उपन्यास का संक्षिप्त सार और कुछ अध्याय पाण्डु-लिपि में से पढ़े गये। उनकी आलोचना प्रत्यालोचना हुईं। मिठाइयां बांटी गईं। मुझे भी मिली।

तभी से प्रकाशकों, सिनेमावालों और अनुवादकों के पत्रों, मुला-कातो और सौदों का ऐसा तांता लगा कि दूसरा काम करना ही कठिन हो गया। परन्तु अभी मैं पाण्डु-लिपि में कुछ परिवर्तन किया चाह रहा था। इसी समय पाण्डु-लिपि के सम्बन्ध में कुछ भय के कारण उत्पन्न हो गए; और मैंने उसे लोगों को दिखाना तथा उसके सम्बन्ध

में बातें करना बिल्कुल बन्द कर दिया। परन्तु एक दिन अवसर तोड़ कर यारों ने पाण्डु-लिपि चुरा ली।

बहुत पर फड़फड़ाए। पर सब व्यर्थ। विवश जैसे श्मशान जन का विसर्जन करके लौट जाता है, उसी भांति इन भद्र। नमस्कार कर उनके संरक्षण का आभार मान कर लौट आया। वर्ष मैंने हस्ताक्षर करने के लिये भी लेखनी नहीं छुई। सब का कर दिए। लोगों से मुलाकात भी बन्द कर दी। इन दो वर्षों यह अनुभव किया कि मेरे रक्त की प्रत्येक बूँद आंसू बन गई है; वह रक्त में मिल कर शरीर के भीतर ही चक्कर काट रही है नहीं निकल पाती। लोगों ने समझा मेरी साहित्यिक मृत्यु हो परन्तु काल की बलिहारी, काल पाकर विदग्ध-हृदय की भस्म हुई, घाव पुरे, भावना अंकुरित हुई।

मैंने दुःसाहस करके दुबारा नए सिरे से यह उपन्यास लि· आरम्भ किया। प्रारम्भ में मुझे यह असाध्य प्रतीत हुआ। परन्तु व शुक्र-नक्षत्र के समान उज्ज्वल आंखें मेरे साथ थीं। उस दिन जैसे कहा था—'नाचो' उसी भांति वह आंखें कह रही थीं 'लिखो'। स एक बार कहा था पर वे आंखें हर बार कहती थीं। फिर लिखता कै· नहीं? अन्ततः मेरी जड़ता दूर हुई। मैंने नए उल्लास से त्रुटियों को यथाशक्ति दूर करते हुए उपन्यास का पुनर्लेखन किया। इस बार दो नई बातें सामने आईं—एक तो राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति' उपन्यास, दूसरा उनकी कहानी पुस्तक 'वोल्गा से गंगा'; इन दोनों पुस्तकों को पढ़ कर मैं दंग रह गया। लेखक की भावसामर्थ्य का क्या बखान करूं? दोनों ही पुस्तकों में कहानी कला तथा उपन्यास के साधारण गुण भी नहीं थे फिर भी ये दोनों पुस्तकें विशेषकर 'वोल्गा से गंगा' विश्व-साहित्य में शीर्षस्थानीय होने योग्य थी। विचारक जनों की विचारधारा को प्रबल धक्का मार

विचारों के प्रवाह को पलट देने की सामर्थ्य तो मैंने इसी लेखनी के धनी में देखी। इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद मैंने जैन और बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन प्रारम्भ किया। उपन्यास-लेखन धीमा हो गया। परन्तु मैंने उसकी जल्दी नहीं की। मैंने यह ठान ली कि इस उपन्यास में मैं एक तरफ जहां मसीह से पूर्व पांचवीं छठी शताब्दी की सम्पूर्ण धर्मनीति, राजनीति और समाजनीति का रेखा-चित्र खींचूं, वहां अपने अध्ययन और विचारों को भी प्रकट करता जाऊं। अपनी बात को अधिक बल से कहने के लिए मुझे जैन बौद्ध-हिन्दू साहित्य तथा संस्कृत-साहित्य के साथ वैदिक-साहित्य, दर्शन, विज्ञान और मनोविज्ञान का भी अध्ययन करना पड़ा। अनेक अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं के लेख और पुस्तकें भी पढ़नी पड़ीं।

लिच्छवियों की राजधानी वैशाली अथवा विशाला अत्यन्त प्राचीन काल में इक्ष्वाकु के पुत्र अथवा भाई नभाग के पुत्र विशाल राजा ने बसाई थी, ऐसा उल्लेख प्राचीन हिन्दू-ग्रन्थों में

वैशाली

मिलता है[1]। पुराणों के आधार पर विशाला के राजवंश को दशरथ के समकालीन प्रमति तक खींचा जा सकता है। परन्तु विशाला के राजवंश का अन्त किस प्रकार हुआ और वह लिच्छवियों के गणतन्त्र की राजधानी किस प्रकार बनी इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वैशाली और लिच्छवियों के सम्बन्ध में बुद्ध ने बहुत से प्रशंसात्मक उद्गार प्रकट किए हैं जो कि बौद्ध-पाली ग्रंथों में संगृहीत हैं। यह नगरी महावीर की जन्मभूमि भी है। बौद्ध-ग्रंथों में महावीर को "अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए"[2] कहा है। अन्य ग्रंथों में भी महावीर को वैशालिक कहा गया है।[3]

---

१. रामायण वाल्मीकि अ० ४१-६; वायुपुराण—८६-१६,२२ विष्णुपुरा०—४ १-१८

२. सूत्र कृताङ्ग १-२-३-२२। ३ उत्तराध्ययन—६-१७

भगवतीसूत्र की टीका में अभयदेव ने वैशालिक का महावीर किया है[१]। इस प्रकार इस नगरी के नाम पर ही का नाम वैशालिक प्रसिद्ध हो गया। ऐसा मालूम होता है कि नगरी में उस समय कुण्ड-ग्राम और वाणिज्य-ग्राम इन दो न समावेश भी था। आज भी ये दोनों गांव बानिया वसुकुण्ड आबाद हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैशाली का विस्तार धीरे २ गया। बौद्ध ग्रन्थों से पता लगता है कि जन-संख्या बढ़ने से कई गांवों को सम्मिलित करके इस नगरी को विशाल किया गया। उसका नाम वैशाली पड़ा[२]।

इस प्रकार तीन नगरों से मिल कर बने होने के कारण वैशाली प्रसंगानुसार उन तीनों में से चाहे जिस किसी नाम से पुकारा जाता बौद्ध-परम्परा में भी वैशाली के तीन जिलों का उल्लेख है। दक्षिण-पूर्व में, कुण्डपुर उत्तर-पूर्व और वाणिज्य-ग्राम पश्चिम में कुण्डपुर के आगे उत्तर-पूर्व में एक 'कोल्लाग' नामक सन्निवेश। उसमें अधिकतर ज्ञातृ-क्षत्रियो की बस्ती थी। इसी लिये उसे 'नाय-कुल अर्थात् ज्ञातृ वंशीय क्षत्रियों का घर (कोल्लाए संनिवेसे नायकुलंसि) कहा जाता था[३]। इसी कोल्लाग संनिवेश के पास ज्ञातृवंशी क्षत्रियों का द्युतिपलाश नामक एक उद्यान और चैत्य था[४]। इसे ज्ञातृवंशियों का उद्यान कहते थे ("नाय-सण्ड-वणे उज्जाणे" अथवा 'नाय-सण्डे-उज्जाडे") आचाराङ्ग[५] में "उत्तर-क्षत्रिय-कुण्ड-पुर-सन्निवेश" अथवा

---

१. भगवतीसूत्र — २-१-१२-२

२. मज्झिम निकाय अट्ठकथा महासिंहनाद सुत्त वण्णना।

३. उपासक दशासूत्र —१-६ (हार्नल का अंग्रेजी अनु० पृ० ५)

४. विपाक सूत्र—१

५. आचाराङ्ग—२-४-२२

"दक्षिण-ब्राह्मण-कुण्ड-सन्निवेश" का उल्लेख है इससे प्रतीत होता है कि कुण्डपुर-सन्निवेश के दो भाग थे, जिसमें उत्तरीय भाग में क्षत्रिय (सम्भवत: ज्ञातृ) और दक्षिणी भाग में ब्राह्मणों की वस्ती थी। कल्पसूत्र में क्षत्रिय-कुण्ड-ग्राम-नगर और ब्राह्मण-कुण्ड-ग्राम-नगर ऐसा उल्लेख है। इसका अभिप्राय भी हमें पूर्व-वर्णित कुण्ड-ग्राम नगर का उत्तर का क्षत्रिय-विभाग और दक्षिण का ब्राह्मण-विभाग ध्वनित होता है। तिब्बत से प्राप्त ग्रन्थों में बुद्धकालीन वैशाली में सोने के कलश वाले सात हज़ार महल और चांदी के कलश वाले चौदह हज़ार महल तथा तांबे के कलश वाले इक्कीस हज़ार घरों का उल्लेख है। इन तीन पृथक् २ महलों में अनुक्रम से उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ कुल के लोग रहते थे। इसका आभास उपासक-दशा-सूत्र में हमको मिलता है।

हमने पीछे बताया है कि बुद्ध को वैशाली बहुत प्रिय थी। महा-परिनिब्बाण सुत्तन्त में लिखा है कि बुद्ध जब अपने जीवन में अन्तिम बार वैशाली से चले तो बारम्बार पीछे फिर २ कर नगर की ओर देखने लगे। (नागापलोकितं वैसालीयं अपलोकेत्वा) उस समय उन्होंने आनन्द से कहा था कि "आनन्द, इस बार तथागत वैशाली को अन्तिम बार देख रहा है।" जब बुद्ध के दर्शन के लिए लिच्छवि सजधज कर वैशाली से निकलते थे तब उन्हें देख कर एक बार बुद्ध ने कहा था—"हे भिक्षुओ! तुमने देवताओं को तो अपनी नगरी से निकलकर उद्यान में आते हुए कभी नहीं देखा। परन्तु इन वैशाली के लिच्छवियों को देखो जो समृद्धि और ठाठ-बाट में उन देवताओं के ही समान हैं—सोने के छत्र, स्वर्ण-मण्डित पालकी, स्वर्ण-जटित रथ और हाथियों सहित ये लिच्छवि। देखो, आबाल-वृद्ध सब विविध आभूषण पहने और विविध रंग रञ्जित वस्त्र धारण किये हुए सुन्दर वाहनों पर चले आ रहे हैं।" एक बौद्ध ग्रंथ में लिखा है कि यह वैशाली महानगरी अतिसमृद्ध, सुरक्षित, सुभिक्ष, रमणीय, जनपूर्ण, सम्पन्न, गृह और हर्म्यों से अलङ्कृत, पुष्प-

वाटिकाओं और उद्यानों से प्रफुल्लित मानो देवताओं ~
करती है।

जैन-धर्म के प्रवर्तक महावीर का जन्म वैशाली में
हम कह चुके हैं। तीर्थङ्कर होने के बाद उन्होंने ४.
चातुर्मासों में से बारह वैशाली में व्यतीत किये थे।

यह वैशाली वर्तमान तिरहुत में मुजफ्फ़रपुर से कुछ
से कोई ४० क्रोश के अन्तर पर थी।

ईस्वी सन् से पूर्व सातवीं शताब्दी के लगभग गंगा के
पर लिच्छवियों का एक समर्थ गण सत्तात्मक राज्य था। उ.
वन्य प्रदेश, पश्चिम में कोशल देश और
लिच्छवि तथा पावा—जो मल्लों के गण-राज्य थे।
में गंगा और गंगा के उस पार मगध ` ~।
उत्तर में हिमालय की तलहटी में आया हुआ वन्य प्रदेश था।
की राजधानी वैशाली थी।

लिच्छवियों की परम्परा के सम्बन्ध में अनेक मत हैं, कुछ
उन्हें इक्ष्वाकु सूर्यवंशियों का वंशज कहते हैं। बौद्ध-ग्रन्थों में लि
वियों को बुद्ध आदि ने 'वासिष्ठ' कह कर सम्बोधित किया है। वा.
सूर्यवंशी इक्ष्वाकुओं के कुल-गुरु थे। नैपाल की वंशावलि में भी
सूर्यवंशी कहा है, किन्तु स्मृतियां उन्हें व्रात्य-संकर बताती हैं।[१]

जैन-ग्रन्थों में लिच्छवियों के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट बात नहीं
गई। यद्यपि जैन-धर्म के महान् प्रवर्तक महावीर श्रमण लिच्छवीकुल में
उत्पन्न हुए थे। जैन-ग्रन्थों के आधार पर महावीर श्रमण की माता वैशाली
के गण-प्रमुख राजा की बहिन कही गई है. परन्तु महावीर श्रमण ~

१. मनु आदि जिनका

जैन-ग्रन्थो में लिच्छवि न कह कर 'ज्ञातिपुत्र' 'विदेहदत्ता का पुत्र' 'विदेह का राजकुमार' 'वैशालिक' 'ज्ञातृ-क्षत्रिय' आदि नामों से पुकारा गया है[१]।

यह बात विचारणीय है कि जैन बौद्ध धर्मोदय के पूर्व अर्थात् मसीह से पूर्व ५वीं ६ठी शताब्दी से इधर के किसी प्राचीन हिन्दू ग्रन्थ में लिच्छवियों का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु उनके पडौसी मल्लों का उल्लेख महाभारत[२] में पाण्डवों के समकालीन के रूप में आया है।

यह कहा जाता है कि वैशाली का गण-राज्य विदेह-राज्य के भंग होने पर संगठित हुआ। जैन और बौद्ध धर्मोदय से पूर्व के उपनिषद्-काल में विदेह-राज जनक की कीर्ति और ठाठ-बाट का खूब बढा चढ़ा वर्णन और भारी यशोगाथा है।

ऐसा मालूम होता है कि उपनिषद्-काल में—जो हमारी दृष्टि से जैन बौद्ध धर्मोदय काल से एकाध शताब्दी पूर्व ही था—जनक की कीर्ति अच्छी तरह देश-देशान्तरों में फैल चुकी थी। कोसल और कुरु पाञ्चाल देश के अनेक विद्वान् ब्रह्मवेत्ता राजा जनक की सभा में आकर ब्रह्मवाद पर तर्क किया करते थे[३]। ये राजा जनक परिपूर्ण ब्रह्मवादी होने पर भी यज्ञ-विधियों का बडा भारी ज्ञाता था। जिसका उल्लेख शतपथ० ब्राह्मण में हमको अत्यन्त मनोरंजक ढंग से मिलता है[४]।

ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरु राजाओ को तो 'राजा'[५] लिखा गया है परन्तु उपनिषदों में जनक को सम्राट् कहा गया है। शतपथ[६] ब्राह्मण के आधार पर सम्राट् का पद राजाओं के ऊपर था। इस बात का कोई

---

१. आचाराङ्ग सुत्त और कल्पसूत्र
२. महा० सभापर्व ३०-३, भीष्मपर्व ९-४६
३. बृहदारण्यकोपनिषद् तीसरा खण्ड
४. शतपथ ब्राह्मण ११-४-५-११-६-२१
५. ऐतरेय ब्रा० ८-१४
६. शतपथ ५-१-१-१३

स्पष्ट उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता कि इतना उन्नत एव संस्कृति का प्रतिनिधि विदेह-राज्य कैसे नष्ट ० किस प्रकार लिच्छवियों के गणसंघ में मिल गया। ...लि... अनुसार विदेह का अन्तिम राजा सुमित्र था। इसके बाद लिच्छवियों के राज्य के साथ मिल गया।

मज्झिमनिकाय के मखादेवसुत्त के आधार पर निमि कलार के समय में विदेह-राजवंश का अन्त हुआ। कौटि शास्त्र के आधार पर विदेह के राजा कराल ने एक ब्रा... ऊपर अत्याचार किया था, इसी से राजा और राज्य का नाश विदेहराज की समृद्धि के विषय में कहा गया है कि इस राज्य का तीन सौ लीग था और उसमें सोलह हजार गांव लगते थे[२]।

बुद्ध ने लिच्छवियों की प्रशंसा करते हुए कहा था—

"हे भिक्षुओ, आज लिच्छवि प्रमाद-रहित और वी...वान् व्यायाम करते हैं, इससे मगध का राजा उनके मर्म को समझ कर चढ़ाई करते हुए डरता है। हे भिक्षुओ, भविष्य में लिच्छवि सुकु... जायेंगे और उनके हाथ पैर कोमल और सुकुमार बन जायेंगे। वे लकड़ी के तख्त पर सोते हैं फिर वे रुई के गद्दों पर सूर्योदय हो सोते रहेंगे तब मगधराज उन पर चढ़ाई कर सकेगा[३]।

"हे आनन्द, लिच्छवि बारम्बार सम्मेलन करते हैं और सम्मेलनों में सभी इकट्ठे होते हैं, एक साथ बैठते हैं, एक साथ उ० और एक साथ काम करते हैं। जो नियम-विरुद्ध है वह काम नहीं जो नियम-सम्मत है उसका उच्छेद नहीं करते। अपने पूर्वजों के ...च

१. ललितविस्तर अ० ३

२. सुरुचिजातक ४७६—४०६

३. ओपम्म संयुत्त व० १, सू० ५

धर्म में चले आते हैं, वृद्धों का सत्कार करते हैं, उनकी प्रतिष्ठा करते हैं, उनको पूजते है और उनकी आज्ञा मानते हैं। कुल-कुमारियों और कुल-स्त्रियों का हरण नहीं करते, न उन पर बलात्कार करते हैं। अपने भीतरी और बाहरी चैत्यों को मान-सत्कार से पूजते हैं और पूर्व-परम्परा के अनुसार धार्मिक बलि देने में असावधानी नहीं करते। अर्हन्तों के रक्षण और आश्रयण के लिये वे व्यवस्था रखते हैं। हे आनन्द, वे जब तक ऐसा करते रहेंगे उनकी उन्नति होगी, अवनति नहीं[1]।"

इन उद्धरणों से लिच्छवियों के व्यक्तित्व और चरित्र एवं आचार-विचार पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। बुद्ध को और बौद्ध-संघ को उन्होंने कितने ही चैत्य आराम-शालायें और वन अर्पण किये हुए थे, जिनमें कूटागारशाला, चापाल-चैत्य, सप्ताम्र-चैत्य, बहुपुत्र-चैत्य, गौतम-चैत्य, कपिनैह-चैत्य, मर्कट-हृद-तीर-चैत्य, आम्रपाली का आम्रवन और बालिका आराम आदि प्रमुख हैं। बुद्ध वहां निरन्तर जाते आते और लोगों को उपदेश देते रहते थे। यद्यपि इस बात का कोई स्पष्ट उल्लेख हमें नहीं मिलता कि बुद्ध और महावीर से प्रथम अपने चैत्यो मे लिच्छवि किसकी पूजा करते थे। परन्तु लिच्छवियों का यह गण विदेहराज जनक से सम्बन्धित था इसलिये इस राज्य में यज्ञ-याग और वैदिक-उपासना एवं उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्मोपासना भी प्रचलित थी। महावीर और बुद्ध के प्रभाव से बहुत से जैनोपासक और बौद्धोपासक गृहस्थ और भिक्षु हो गये थे। वज्जी-राजाओं के कुल में अञ्जनवनीय, वज्जीपुत्त, सम्भूत, महालि, अभय, समन्दक, उग्र, सालह, नन्दक, भद्रिय आदि भद्र लिच्छवि नागरिक और जेन्ता, वासिट्ठि आदि महिलाओं का उल्लेख है।

---

1. महापरिनिब्बाण सुत्त।

आगे चलकर यद्यपि लिच्छवियों का गण-राज्य
परन्तु उनके कुल की प्रतिष्ठा एक हज़ार वर्ष तक
सन् ४ में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने को बड़े गर्व से
कहा था। परन्तु यह बात विचारणीय है कि महावीर का
में और लिच्छवि-कुल में होने पर भी वैशाली का कोई
ग्रन्थों में नहीं दीख पड़ता। उत्तरकालीन मसीह के पांच
संकलित सूत्र उपासकदशा ग्रन्थों में वाणिज्य-ग्राम और
राजा जितशत्रु कहा है, परन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति ग्रन्थ में उ
राजधानी मिथिला का राजा बताया गया है[१]।

लिच्छवियों के राज्य में गणसत्ता पद्धति से राज्य
थी और इस राज्य में वंशपरम्परा से चला आता कोई

गण-राज्य-पद्धति

सब राजसत्ता नागरिकों के 'गण'
के हाथ में थी, परन्तु इस गण
सभ्य अपने को 'राजा' कहता था
संथागार नामक सार्वजनिक राजभवन में एकत्रित होकर

१. विन्सेन्ट स्मिथ लिच्छवियों को मूलतः तिब्बत नि
हैं। हडसन उन्हें शक कहता है। उनके आचार-विचार आ
क्षत्रियों के कुलों से सर्वथा भिन्न थे। न वे वेदों में श्रद्धा रख
ब्राह्मणों में। न वे वर्णव्यवस्था मानते थे। वे यक्ष-प्रतिमा पू
तथा मुर्दों को जंगल में फेंक आते थे। वे उत्कृष्ट योद्धा धनुर्धा
शिकारी थे। शिकार में कुत्तों को साथ रखते थे। शत्रु उन्हें
कहकर पुकारते थे। सार्वजनिक स्त्रियों का वे खुल्लमखुल्ला
करते। उनके साथ उद्यानों में विहार करते तथा स्त्री के लिये
युद्ध कर डालते थे। उनका प्राचीनतम मान्य पवित्र ग्रन्थ
था।

१. ललितविस्तर—लफ

तथा सामाजिक और धार्मिक निर्णय करते थे। वयस्क होने पर प्रत्येक लिच्छवि-कुमार अपने पिता का पद गणराज-सत्ता में ग्रहण करता था और तब उसे केवल एक बार अभिषेक पुष्करिणी के जल से उसका अभिषेक किया जाता था[१]। कौटिलीय अर्थशास्त्र में लिच्छवियों के संघ को 'राजशब्दोपजीवी' कहा है। महावस्तु-सग्रह ग्रन्थ में लिखा है कि वैशाली में १ लाख ६८ हजार राजा रहते थे[२]। विनयपिटक के अनुसार वैशाली अत्यन्त समृद्धिशाली और धन-जन से परिपूर्ण थी। उसमें ७७७७ प्रासाद ७७७७ कूटागार और ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियां थीं[३]। भिन्न २ राजकाज के छोटे-बड़े कामों के लिए भिन्न २ पदाधिकारी नियुक्त थे। जैसे अपराधी का न्याय करने के लिए अनुक्रम से राजा-गण विनिश्चय महामत्र, व्यावहारिक सूत्रधार, अष्टकुलक, सेनापति, उपराजा और राजा इतने अधिकारियों के मण्डलों के पास अपराधी को ले जाया जाता था[४]। महत्त्वपूर्ण विषयों के निर्णय के लिए आठ या नौ व्यक्तियों की व्यवस्था-समिति भी चुनी जाती थी। लिच्छवियों के संयुक्त राज्य में जिन आठ कुलों के गण थे उनमें प्रत्येक कुल से एक २ प्रतिनिधि लेकर आठ जनों की यह व्यवस्था-परिषद् नियुक्त की जाती थी जो सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था करती थी। जैन-ग्रन्थों में लिखा है कि युद्ध जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों के सम्बन्ध में नौ लिच्छवियों की व्यवस्था-पिका सभा बुलाई जाती थी[५]। लिच्छवियों के नौ या आठ गणों में किन २ संघों व वंशों का समावेश होता था यह कहना कठिन है, परन्तु सूत्रकृताङ्ग के आधार पर राज्य की परिषद् में भोगवंशीय, ऐक्ष्वाकु-

---

१. भद्दसाल जातक

२. महावस्तुग्रन्थ १-२७१

३. विनयपिटक महावग्ग ८-१-१

४. महापरिनिव्वाण सुत्त

५. निरयावलि सूत्र, कल्पसूत्र, भगवतीसूत्र।

वंशीय, ज्ञातृ-वंशीय, कौरव-वंशीय, लिच्छवि-वंशीय
जनों का उल्लेख है[१]।

इस प्रकार की गणसत्तात्मक पद्धति, ऐसा मालूम होता
काल से प्रचलित थी। ऋग्वेद[२] में ऐसा आभास मिलता है
राजा लोग समिति में एकत्रित होते हैं।" इससे अनुमान
अत्यन्त प्राचीन काल में ऐसी राज्य-पद्धति संगठित हो गई
राजवंश के अनेक सभ्यों के एकत्र अनुशासन में होते थे।
...ल में तो लगभग सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में ऐसे गण-राज्य
थे। पूर्व की ओर वज्जी, लिच्छवि और मल्लकों के गण-राज्यों
गिनाता है, मध्य में कुरुओं और पांचालों के, उत्तर-पश्चिम में
और दक्षिण-पश्चिम में कुकरों के। सम्भवतः इन गण-राज्यों को
कर ही उसने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। यहां
विचारणीय बात यह है कि बौद्ध ग्रन्थों में लिच्छवि और वज्जी इन
को एक ही माना है[३]; परन्तु कौटिल्य इन दोनों को पृथक् २ ...ता।

ह्यूनत्सांग[४] ने भी वज्जी देश को वैशाली से पृथक् माना
सम्भव है कि सम्पूर्ण संघ वज्जी कहलाता हो और लिच्छवि उनमें
एक का नाम हो।

जिस काल का वर्णन हमारे उपन्यास में है, अर्थात् बुद्ध के जीव...
काल में भारत तीन बड़े भागों में बँटा हुआ था। इनमें बीच का भा...

१. सूत्रकृताङ्ग (श्रुत २-१) आचाराङ्ग १-२
२. ऋग्वेद १०-६ १६
३. अगुत्तरनिकाय, पंचकनिपात
४. वाटर्स २-८१

देश के तीन मुख्य भाग

'मज्झिम देश' कहाता था। जातकों में इसका उल्लेख है। मनुस्मृति इसे मध्यम देश कहती है[1]। वह इसकी सीमा हिमालय और विन्ध्याचल के बीच तथा सरस्वती नदी के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम में जो देश है उसे मध्य देश कहते हैं। इस मध्य देश का उत्तर भाग उत्तरापथ और दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहलाता था।

उत्तर भारत में सोलह राज्य थे। १. कासी २. कोसल ३. अंग ४. मगध ५. वज्जी ६. मल्ल ७. चेतिय ८. वत्स ९. कुरु १०. पांचाल

सोलह राज्य महा-षोडश जनपद

११. मत्स्य १२. शूरसेन १३. अस्सक १४. अवन्ति १५. गन्धार १६ काम्बोज[2]। ये सब सोलह महाजनपद कहाते थे। ये देशों के नाम नहीं जातियों के थे। जैन-ग्रंथों[3] में भी लगभग यही सूची है। काशी का विस्तार दो सहस्र वर्ग मील था, यह 'कासीरट्ठ' (काशीराष्ट्र) कहाता था। कोसल की श्रावस्ती वर्तमान गोंडा और बहराइच जिला की सीमा पर 'सहेथ-महेथ' ग्राम के स्थान पर थी। कासी और साकेत पर भी कोसलों का अधिकार था और शाक्य संघ इन्हें अपना अधीश्वर मानता था। हिरण्यनाभ कोसल, सेतव्य नरेश और ययाति इन्हें अधिपति मानते थे। यह महाराज्य दक्षिण में गंगा और पूर्व में गंडक नदी को स्पर्श करता था। बुद्ध से कुछ पहिले कोसल राजधानी साकेत हो गई थी।

अंग राज्य मगध के पूर्व में उससे सम्बद्ध था। चन्दन नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। इसकी राजधानी चम्पा थी। जिसका

---

१. मनु० अ० २, श्लो. २१

२. अंगुत्तरनिकाय

३. भगवती सूत्र

स्थान भागलपुर के निकट कहा जाता है। यहां से ५
तक जाते थे[१]। अंगवैरोचन यहां के प्रतापी राजा थे, ३
वाहन की कन्या महावीर की सर्वप्रथम स्त्री-शिष्या थी

मगध में वर्तमान पटना और गया दोनों जिले थे।
राजगृह राजधानी थी। यहां का प्रथम राजा प्रमगंड
निरुक्तकार यास्क उसे अनार्य कहता है[४]। अभिधानचि
कीकट मागधों को कहा है। प्रथम मागध बुरे थे। शोरवा ५०
में उनकी प्रतिष्ठा दर्ज है। महाभारत में मगधपति बृहद्रथ
उस काल इसमें ८० हजार गांव लगते थे, यह महाराज्य ३
गंगा, चंपा, सोन नदियों के बीच में था। इसकी परिधि
मील थी[५]।

वज्जीगणतन्त्र और वैशाली का वर्णन आ चुका है, इस ५
का विस्तार २३०० वर्ग मील बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर था। ५..
के दो भाग थे, जिनकी राजधानियां कुशीनारा या कुशावती और
थीं। चीनी यात्री ह्यूनसांग के कथनानुसार यह पहाड़ी राज्य शाक्
पूर्व और वज्जी के उत्तर में था परन्तु कुछ लोग उसे वज्जी के पूर्व
शाक्य के दक्षिण में बताते हैं। कुशीनारा कसिया के निकट था, ५।
वर्तमान पडरौना है। भोगनगर, उलूपिया और उरुवेल-कप्प भी ५.
के नगर थे। पीछे मगध ने मल्लों को भी जीत लिया था।

---

१. जातक (५४९)
२. ऐतरेय ब्रा० (VIII२२) महागोविन्द सुत्तंता
३. ऋग्वेद ३।५३।१४
४. निरुक्त ६।३२
५. रिज डेविड्

चेतिय-राज्य के दो उपनिवेश थे[१]—एक नैपाल में, दूसरा कौशाम्बी के पूर्व। पुराना चेदि बुन्देलखण्ड तथा निकट के देश में था जो नर्वदा तट तक फैला था। राजधानी सुक्तिमती थी[२]। कासी और चेतिय के मार्ग में डाकू बहुत थे।[३]

वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी। जो आज कोसम कहाती है और प्रयाग के निकट ३० मील दूर दक्षिण की ओर यमुना नदी के किनारे पर वर्तमान कोसम ग्राम के पास थी रामायण[४] और महाभारत[५] के आधार पर चेदि राज्य ने कौशाम्बी बसाई। भर्ग राज्य वत्स का करद था।[६]

जातकों में (इंदपट्ट) इन्द्रप्रस्थ पर युधिष्ठिर के वंशजों का राज्य इस काल में बताया है तथा धनञ्जय, श्रुतसोम और कोरव्य राजाओं के नाम बताए हैं। राष्ट्रपाल कौरव राजा था। कुरु देश के इषुकार नगर में इशुकार राजा रहता था।[७] कौटिल्य अपने काल में कुरु देश में संघ-राज्य बताता है। उसका फैलाव २००० मील था।

पांचाल का राजा चूलनि ब्रह्मदत्त का कथन बौद्ध तथा हिन्दू ग्रंथों में मिलता है।[८] कौटिल्य यहां भी गण-राज्य बताता है। कच्यान बौद्ध शूरसेनों के राजा अवन्तिपुत्त का वर्णन करता है। काव्यमीमांसा में शूरसेनों के राजा का नाम कुविन्द लिखा है, मेगस्थनीज भी शूर-सेनों का उल्लेख करता है। इनका राज्य मथुरा में था। इसके दो विभाग थे—उत्तर पांचाल तथा दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल की राज-धानी कांपिल्य (कपिल) थी, दक्षिण पांचाल की कन्नौज। प्राचीन कांपिल्य

---

१. जातकों में चेतियरट्ठ (चेतिय राष्ट्र) लिखा है।
२. चेतिय जातक ३. जातक ४८
४. रामायण ३२-३-६ ५. महाभारत ६२-३१
६. जातक ३५३ ७. उत्तराध्याय सूत्र
८. जातक (५४६) उत्तराध्याय सूत्र, स्वप्नवासवदत्ता, रामायण।

नगर गंगा किनारे वर्तमान बदायूँ और फर्रुखाबाद के

अस्सक या अश्मक को बौद्ध ग्रंथ गोदावरी के ।

पाणिनि उन्हें दक्षिण प्रांत में कहता है ।[२] यह जाति

में भी थी, जिसे ग्रीक इतिहासकारों ने 'असिकनोई' कहा

में भी अश्मकपुत्र का उल्लेख है ।[३] उनकी राजधानी

थी । महाभारत में 'पौदन्य' नाम दिया है । मूलक इससे ८

अश्मकों ने मूलक और कलिङ्ग को विजय किया था ।

अस्सकराज, सत्तभु—कलिङ्गराज, वैस्सभु—अवन्तिराज,

राज, रेणु—विदेहराज, धत्तरथ—काशिराज समकालीन हैं

को अस्सकराज अरुण ने जय किया था ।[६]

अवन्ति के मन्त्री ने वीति होत्र राजा को मार कर

प्रद्योत को राजा बनाया था जो अपने क्रोधी स्वभाव के का

प्रद्योत' कहाया । अवन्ति-राज्य के दो विभाग थे, इसका उ

'अवन्ति' कहलाया और उसकी राजधानी उज्जैन थी तथ

दक्षिणी भाग अवन्ति दक्षिणापथ कहाता था और उसकी

माहिस्सती (माहिष्मती) थी, पीछे यह राज्य मगध में मिल ग

मसीह पूर्व छठी शताब्दी में गान्धार-पति 'पुक्कुसाति' थे जि

सार मागध को पठौनी भेजी थी और युद्ध में प्रद्योत को

गान्धार में पूर्वी अफगानिस्तान और उत्तरी पश्चिमी पंजाब था ।

(तक्कसिला) तक्षशिला थी[७] । यह नगरी आजकल के पश्चिमी पंजाब

१. सुत्तनिपात ९७७ । २. IV (१, ३७३)

३. महाभारत—द्रोणपर्व

४. वायुपुराण ८८, १७७—८

५. महागोविन्द सुतत्त

६. चुल्ल-कलिङ्ग जातक

७. कुम्भकार ज

पिण्डी ज़िले के सराय-काला नामक स्टेशन के पास थी।

काम्बोज प्रांत उत्तरापथ में गन्धार के निकट था। राजपूर राजधानी थी। ह्यूनसांग राजपूर को पुंच के दक्षिण या दक्षिणपूर्व में बताता है। इसकी पश्चिमी सीमा काफिरस्तान से मिली थी। यास्क काम्बोजों को भारतीय आर्यों से पृथक् कहता है, जातक उनमें जंगली रीति-रिवाज बताते हैं। ह्यूनसांग भी यही कहता है। नन्दिनगर उनका समृद्ध नगर था। चन्द्रवर्मन और सुदक्षिण काम्बोज राजा महाभारत में आये थे। तब वहां राजशक्ति थी—पर कौटिल्य वहां संघ-शक्ति बताता है राजधानी द्वारिका[१]।

बुद्ध काल में ये सोलहों राज्य वर्तमान न थे। कुछ लुप्त हो चुके थे; पर अंगुत्तर और विनय में नामावलि सोलह राज्यों की है। दक्षिणी राज्यों का उल्लेख इनमें नहीं है। बौद्ध ग्रंथों में पैठण या पतिस्थान का नाम है जो आन्ध्रों की राजधानी थी, दक्षिणापथ का नाम बौद्ध साहित्य में तथा महाभारत में है।

निकाय ग्रंथों में कलिङ्ग के वन का उल्लेख है। दूर देश की समुद्र यात्राओं और जहाज चलने का भी वर्णन है। कलिङ्ग की राजधानी दन्तिपुर थी। बाल्मीकि ठेठ दक्षिण में चोल और पाण्ड्य राज्यों का संकेत करते हैं। इस समय उत्तर भारत में ९ मुख्य प्रजातंत्र थे; १-शाक्यों का, २-भग्गो का, ३-बुलियों का, ४-कालामों का, ५-कोलियों का, ६-मल्लों का, ७-मौर्यों का, ८-विदेहो का और ९-लिच्छवियों का। इनमे सब से अधिक प्रभुत्व शाक्यो, विदेहों और लिच्छवियों का था। ये सब गणराज्य आजकल के गोरखपुर, बस्ती और मुजफ्फरपुर जिलों के उत्तर में लगभग सम्पूर्ण बिहार में फैले हुये थे।

---

१ भरिदत्त जातक ५४३

प्राचीन भारत के ये ६ गणराज्य एक प्रकार से प्र...

संघ थे। ई० पू० ७ वीं शताब्दी में ...

गण राज्य — संघ या गण ये दोनों शब्द प्रयोग ।

पाणिनि का एक सूत्र है

"गणश्चसंघयो:" इस का यह अर्थ है कि सं पूर्वक हन धातु से 'सं बनता है तब उसका अर्थ गण या विशेष प्रकार का समूह हो। अर्थों में तो 'सं' पूर्वक 'हन्' धातु से 'संघात' शब्द बनता है।

ये गण संघ समुदाय के अधीन होते थे[1]। पाणिनि सूत्र है—"जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्" इसका अर्थ यह है कि अप में 'अञ्' प्रत्यय उसी शब्द के साथ लगता है जो 'देश' तथा ' दोनों का वाचक हो। इस सूत्र पर कात्यायन ने जो वार्तिक लि उसमें वह कहता है—"क्षत्रियादेकराजात् संघप्रतिषेध इसका यह अभिप्राय है 'अञ्' प्रत्यय अपत्य अर्थ में उसी लगना चाहिये जो देश और क्षत्रिय दोनों अर्थों का बोधक हो, उस देश में एक ही राजा का राज्य हो। परन्तु जिस देश में शासन हो उस देश के वाची शब्द में अपत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय लग सकता।

इस उद्धरण से गणराज्यों के संबंध में यह स्पष्ट कि वह एक मनुष्य का नहीं समुदाय-विशेष का राज्य था। राज्य-प्रणाली के संबंध में किसी ग्रन्थ में कौटिल्य के अर्थशास्त्र कुछ स्पष्ट उल्लेख नहीं है; परन्तु यह तो प्रकट है कि संघ के सब गणसंघ की बैठक में प्रस्ताव बहुमत, गणपूरक, ज्ञप्ति, कर्मवा छन्द आदि के द्वारा होते थे।

मल्लों की तीन शाखायें थीं—पहली कुशीनारा में, दूसरी पावा में तीसरी काशी में। सबसे अधिक महत्व शाक्यों, विदेहों और लिच्छ

1. अवदान शतक ८८

का २१। विदेह और लिच्छवि मिल कर 'वज्जी' कहलाते थे। ये प्रजातन्त्र परस्पर साधारण बातो पर लडते रहते थे। एक बार शाक्यो और कोलियो में एक खेत की सिंचाई के झगड़े को लेकर घनघोर युद्ध हो गया था[१]। लिच्छवियों की मगल-पुष्करिणी में स्नान करने के कारण कोसल के प्रधान सेनापति से लिच्छवियो का भारी युद्ध हो गया था[२]। राजा लोग इन प्रजातन्त्रीय नेताओं की लडकियों से विवाह करने के सदा इच्छुक रहते थे। सम्भवतः ये विवाह राजनैतिक होते थे। कोसल के राजा 'पसेन्दि (प्रसेनजित्)' ने शाक्यों से एक लड़की मांगी थी, शिशुनाग-वंशी बिम्बसार ने भी एक लिच्छवि कन्या से विवाह किया था[३]।

बुद्ध को जन्म देने के कारण शाक्यों के प्रजातन्त्र का सारे ससार की सभ्यता पर प्रभाव पडा। शाक्यो की सख्या १० लाख थी। शुद्धोदन उनके नेता थे। उसकी राजधानी कपिलवस्तु थी, यह गण-राज्य नैपाल की तराई में पूरब से पच्छिम लगभग पचास मील तक और उत्तर से दच्छिण तीस चालीस मील तक फैला हुआ था। गौतम श्रमण ने यहां स्वतन्त्र विचारो की शिक्षा पाई थी। यहां का मनोनीत सभापति राजा कहाता था।

लिच्छवियों के गणराज्य की चर्चा अन्यत्र की गई है। इसका विस्तृत वर्णन 'एक-पराण-जातक' तथा 'चुल्ल-कलिंग-जातक' में है। यहां के सभासद 'गणराजान.' कहाते थे।

मगध-सम्राट् बिम्बसार शिशुनागवंश का पांचवां राजा था। इस वंश का यही प्रथम राजा है जिसका ऐतिहासिक वृत्त प्राप्त है। गया के

१. कुणाल जातक

२--३. भद्दसाल जातक

पास प्राचीन 'गिरिव्रज'

बिम्बसार

थी। पीछे उसने नवीन राज

नींव रखी। इसने अंग को जी

और मुंगेर का इलाका था। मगध राज्य की उन्नति औ सूत्रपात इसी विजय से हुआ। इस प्रकार मगध-साम्राज्य ही बिम्बसार को कहा जाना चाहिये। इसने कोशल के दोनों समर्थ पड़ोसी राज्यों की एक एक राजकुमारी से अपनी राजशक्ति दृढ़ की। बिम्बसार का राज्यकाल ई० पू० पू० ५०० तक माना जाता है।

इस काल के मुख्य नगरों में अयोध्या साकेत सरयूतट सूर्यवंशियों की राजधानी रही थी पर इस समय इसकी प्र

हो चुकी थी। काशी-वाराणसी वर्त

प्रमुख नगर

पर ही थी, चम्पा भागलपुर से चौ

पूर्व थी, पीछे भारतीय उपनिवे

कोचीन-चाइना में इसी नाम की एक पुरी बसाई थी। काश्मी चम्पा नगरी थी। कम्पिला उत्तरी पांचाल की राजधानी थी। ।। कौरवों ने हस्तिनापुर के गंगा में डूब जाने पर बसाया था। यह तट पर काशी से २३० मील के अन्तर पर थी। पीछे यह व राजधानी हुई। यमुना-तट पर मथुरा अब भी अपने स्थान पर है। काल यहां के राजा 'अवन्तिवर्मन्' या 'अवन्तिपुत्र' थे, मथुरा का नाम 'मधुपुरी' था, पीछे मधुवंशियों से इसे शत्रुघ्न ने छीना, इनके वंशजों से छीन कर यादव भीमरथ ने इसे अपनी रा बनाया। बुद्धकाल में यह अवनत हो गई थी, बुद्ध यहां अ नाम का दक्षिण में एक नगर

बसाया था। इस नाम के दो नगर थे—एक गिरिव्रज, दूसरा राजगृह। गिरिव्रज पुरानी बस्ती थी। रोरुक सौवीर सूरत की राजधानी थी, जहां व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था, पीछे इसका नाम रोरुआ हो गया था। सागल भारत के उत्तर-पश्चिम में था, जो मद्र देश की राजधानी थी। श्रावस्ती कोशल की राजधानी साकेत से ४९ मील दूर थी जो भारत के ६ बड़े नगरों में एक थी। श्रावस्ती—सावत्थी सूर्यवंशी राजा श्रावस्त ने बसाई थी। यह साकेत से ४९ मील उत्तर, राजगृह से ३३७ मील उत्तर-पश्चिम, सांकाश्य से २२५ मील, अचिरवती नदी के किनारे पर बसी थी।

उज्जयिनी अपने प्राचीन स्थान पर अब भी बसी है। वैशाली का वर्णन आ चुका है। इनके अतिरिक्त २० प्रमुख नगरों में ये भी थे—आलवी, इन्दपत्त, संसुमारगिर, कपिलवत्थु, पाटलिग्राम, जेत्तुतर, संकस्स, कुसीनारा और उक्कट्ठ[1]।

तक्षशिला, कन्नौज, काशी, उज्जयिनी, मिथिला, मगध, धन्यकंटक, राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कौशाम्बी, जेतवन और नालन्द में विश्वविद्यालय थे।

प्रामाणिक ग्रन्थ—जिनसे इस काल के राजअवस्था तथा राज-वंशों का पता चलता है—जातक, त्रिपिटक, जैन सूत्रग्रन्थ, कौटिलीय अर्थशास्त्र, पतञ्जलि महाभाष्य और पुराण हैं। पुराणों में वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड और भागवत में बौद्धकालीन राजाओं की क्रमबद्ध सूची है।

प्रामाणिक ग्रन्थ

यह स्पष्ट है कि सिकन्दर के समय तक भारतवर्ष योरुप की दृष्टि से छिपा था। सिकन्दर के आक्रमण से ही योरोप के साथ भारतवर्ष का सम्बन्ध हुआ। सिकन्दर के साथ कई इतिहास-लेखक भी थे, जिन्होंने तत्कालीन भारत का वर्णन किया है। चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण

---

1. राय चौधरी।

भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं । सिकन्दर की मृत्यु
बीस बरस बाद सीरिया और मिश्र के राजाओं ने मौर्य सम्राट्
अपने राजदूत भेजे थे, इन्होंने जो कुछ भारत का वर्णन किया
कुछ भाग अनेक यूनानी और रोमन लेखकों ने अपने विवरणों
किया है। इन राजदूतों में सीरिया के राजा सेल्यूकस के
मेगस्थनीज़ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह कई वर्ष तक
मौर्य के दरबार में रहा था। दूसरा व्यक्ति 'ऐरियन' है जो ईस्वी
शताब्दी में यूनानी रोमन अफसर था। ई. पू. ४थी
इतिहास जानने के लिये एरियन के ग्रन्थ बड़े महत्त्व के हैं।

तात्कालिक समाज व्यवस्था

इस काल में नगर कम और गांव अधिक थे। गांव सम्पन्न थे
उन पर वहां के मुखियाओं का शासन था। ब्राह्मण व्यापार,
मृगया, कपड़ा बुनने और रथकार का
करने लग गये थे। खेती और पशुपालन
करते थे। क्षत्रिय भी व्यापार करते तथा सै
नौकरी करते थे। वे कुम्हार, माली, पाचक
टोकरी बनाने का काम भी करते थे। मुर्दे जला कर उनकी राख पर
बनाये जाते थे। भिन्न २ नौकरपेशे और कारीगर थे।
था। हुण्डी का चलन भी था। सूद का लेन-देन था, पर जमींदार
न थे, किसान पर्याप्त भूमि जोत बो सकते थे। सिक्के ताम्बे
और सोने के थे।

बड़े २ व्यापार मार्ग थे जिन पर सार्थवाह चला करते थे। रिज
डेविड ने इन पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्रावस्ती से पतित्थान तक
मार्ग माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत
होकर था। श्रावस्ती से राजगृह का
तराई में

हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्द पड़ते थे। पूर्व से पच्छिम का रास्ता नदियों द्वारा था। गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी पर्यन्त नावें चलती थीं। व्यापारी सार्थवाह विदेह से गान्धार को, मगध से सौवीर को, भरुकच्छ से वर्मा को, दक्षिण से बेबिलोन को जाते आते थे। लंका का नाम इस काल के वर्णन में नहीं है, ताम्रपर्णी द्वीप का कथन है।

इसी काल में वैदिक साहित्य-काल और वैदिक आर्य-सभ्यता का अन्त हुआ। धर्म और राजनीति दोनों पर संकर जातियों का प्रभुत्व हुआ।

इस काल में क्षत्रियों का दर्जा ब्राह्मणों से ऊपर था। क्षत्रियों की मर्यादा बहुत बढ़ गई थी[1]। क्षत्रियों और ब्राह्मणों में छठी ७वीं ई० पूर्व शताब्दी में काफी द्वेष और स्पर्द्धा फैल गई थी। ब्राह्मणों के तिरस्कार का कोई भी अवसर क्षत्रिय चूकते न थे। तथा बौद्ध, जैन, श्रमण निरन्तर ब्राह्मण-विरोधी हलचलें करते रहते थे। बौद्ध जैन ग्रन्थों में ब्राह्मणों का उल्लेख अत्यन्त अपमानजनक शब्दों में किया गया है। जैन ग्रन्थों में कहा है कि अर्हन्त ब्राह्मणों तथा नीच जाति में जन्म नहीं लेते[2]। अछूतों का बड़ा अपमान होता था; चित-सम्भूतजातक, मातंगजातक और सतधम्म जातकों से यह प्रकट होता है। इस काल में खानपान का परहेज न था[3]। गोत्र बचाकर स्ववर्ण में विवाह विहित हो गया था। सब वर्णों के लोग इन जातियों के काम करने लगे थे। समाज बाह्याडम्बर में फंसा था, यज्ञ सबसे बड़ा आडम्बर था। लोग कठिन तप और व्रत करते थे; और बड़ी २ यातनाएँ धैर्य से सहन करते थे। बहुत से भिक्षु-साधु वैखानस, परिव्राजक विचरते रहते थे। सर्वत्र

१. रिज डेविड—बुद्धिष्ट इण्डिया

२. जैनकल्प सूत्र

३. भद्दसालजातक, कुम्मासपिण्डजातक और उद्दालजातक।

उनका समादर होता था। अतिथिसेवा का बड़ा महात्म्य
दोनों ही परिव्राजक होते थे। लगभग ७८ प्रकार के द
जिनमें ६ प्रधान थे, जो वर्तमान षड् दर्शन के नाम से लि
और वेदान्त परस्पर प्रतिस्पर्द्धी थे, इन्हीं की अधिक चर्चा
चाव से लोग इन शुष्क विवादों में फँसे रहते थे। इ
ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन
ब्रह्मचारी सुखोपभोगों से बच कर विनयी, नम्र एवं इन्द्रिय
रहते थे; परन्तु मेट्टिपुत्र बहुधा कठिन नियम नहीं पालते
थियों के दो नित्य कार्य थे—पढ़ना और गुरुसेवा। शिक्षा
होती थी। स्नातक होकर जब वह गृहस्थी होता था तब उस
पति के अनेक दायित्व लद जाते थे। इनमें अतिथि-सत्कार
प्रमुख थे।[1] पीछे उसे भिक्षुक और वैखानस बनना होता था[2]
यही चार आश्रम विख्यात हुए। वशिष्ठ ने चारों आश्रम
आवश्यक नहीं समझा। वह बिना गृहस्थाश्रमी हुए भी संन्या
की बात कहता है।[3] बौधायन का भी यही मत है।[4] जाति
गृहस्थी की मानी जाती थी, भिक्षुक या वैखानस की नहीं।[5]
के ४० धर्म थे। जिनसे तत्कालीन गृहस्थ जीवन पर यथेष्ट प्र
पड़ता है। इनमें गृहस्थी की रीतियां, गृहस्थ कर्म और श्रौत
सम्मिलित हैं। इन श्रौत कर्मों का विस्तृत विवरण यजुर्वेद में
उन्हीं का संक्षिप्त रूप श्रौत सूत्रों में दिया गया है। गृहस्थ कर्मों

१. आपस्तम्ब २,३,७,१

२. आपस्तम्ब २।६, २१,२

३. वशिष्ट धर्म (७।३)

४. बौधायन २.१०,१७, २

५. वशिष्ठ ८ १

विवाह, गर्भाधान, पुत्रजन्म और १६ संस्कार महत्त्वपूर्ण हैं। गृहाग्नि-स्थापन मुख्य श्रौत कर्म है। गृह्य विधानों में श्राद्ध में पितरों के प्रतिनिधि विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता था।[1]

श्रावणी पर्व जो आज भी श्रावण की पूर्णिमा को एक त्यौहार की भांति माना जाता है तथा राखी बांधी जाती है, इन दिनों सर्पों को संतुष्ट करने के लिये मनाया जाता था। राखी जो बाधी जाती थी वह सर्पों से रक्षा के लिये अभिमन्त्रित। तथा उस दिन सेवइयों का सेवन भी साँपों ही के प्रतिनिधि रूप होता था। श्रावणी ही की भाँति आश्वयुगी—आश्विन की पूर्णिमा को (जो अब शरत्पूर्णिमा के रूप में है) तथा आग्रहायणी—अगहन की पूर्णिमा को त्यौहार मनाये जाते थे[2]। चैत्री चैत्र की पूर्णिमा को की जाती थी, जिसमें इन्द्र, अग्नि, रुद्र और नक्षत्र पूजे जाते थे।

विवाह शब्द का अर्थ है—'खास सम्बन्ध' आर्य साहित्य में यह शब्द बहुत पुराना होने पर भी अतिप्राचीन नहीं है। क्योंकि ऋग्वेद[3] में वर्तमान अर्थों में विवाह शब्द नहीं मिलता।

विवाह उत्तराधिकार और जाति

रूढ़ि अर्थों में हिन्दू समाज की दृष्टि से विवाह का अर्थ है स्त्री-पुरुष का जीवन भर अथवा जन्मान्तर के लिए एक दूसरे से अनुबन्धित होना। हिन्दू स्त्री एक बार विवाहित होकर जीवन भर वह विच्छेदित नहीं हो सकती। यही नहीं, पति के मर जाने पर भी वह उसी की विधवा रहेगी। पति मृत हो या जीवित, स्त्री वाग्दत्ता हो या विवाहिता, हर हालत में उसे मन, वचन, कर्म से पति के प्रति सर्वथा अनुबन्धित, अनुप्राणित एवं आत्मार्पित होना होगा। विवाह के बाद पति का स्त्री

---

१. आश्वलायन २. पारस्कर ३. २. २

३. ऋग्वेद मं० २ सू० १० मंत्र ७, मं. २ सू. २६ मन्त्र १, मं. १० सू. १७, मं. ६ सू. १६ मंत्र २—१०

पर पूर्ण अधिकार है परन्तु पुरुष पत्नी को भां
बन्धित नहीं। हिन्दू-धर्मानुबन्धन में पति एक या
अनुबन्धित पत्नियां रखते हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र रूप
अनगिनत पत्नियां बिना पत्नी की स्वीकृति के रख स
कि वह दासियों, वेश्याओं, रखेलियों और व्यभिचारि
स्वच्छन्द सहवास कर सकता है और दूषित नहीं होता

यजुर्वेद में और ब्राह्मण ग्रन्थों में विवाह के वि
हमें मिलता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ि
विकास साथ ही साथ एक ही आधार पर हुआ है।
में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि स्त्रियां पर्दे में नहीं
सम्पत्ति में हिस्सा पाती थीं, सम्पत्ति की अधिकारिणी
कार्य में सम्मिलित होती थीं[१]।

अथर्ववेद—जो कि पहले वेद नहीं गिना जाता था
उत्तरकालीन है—विवाह की परिपाटी को स्थापित करता
का यह मन्त्र ही विवाह की परिपाटी स्थापित करता है
लिए तेरा हाथ पकड़ता हूं, मुझ पति के साथ रह, प्रति
पुरुषों ने मुझे तुझे दिया है'"।"[२]

इस मन्त्र में कन्यादान का पूर्वरूप प्रकट है, अगले
का विकास है[३]।

अब हम उस युग में आते हैं जब आर्यों ने विन्ध्याचल
दक्षिणापथ को आक्रांत कर लिया था। पर मध्य भारत में
गोदावरी, कृष्णा के किनारों पर बड़े २ राज्य कायम कर लिए
समुद्र तट तक फैले हुए थे। पूर्व में मागध का महान् साम्राज्य

---

१. बृहदारण्यक ३० ऐतरेय ब्रा० ३-३३
२. अथर्ववेद १४-१-५

हो चुका था जो पूर्व में उड़ीसा तक फैला हुआ था। यह आर्य बन्धुओं अथवा संकर जनों की नई नस्ल का विकास था जो आर्यों से अधिक सम्पन्न और मेधावी हो गए थे। इस युग तक आर्यों और आर्य बन्धुओं ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक और एक शताब्दी से दूसरी शताब्दी तक निरंतर विजय करके सम्पूर्ण भारत को समृद्ध कर दिया था और वे इन्द्रप्रस्थ से आगे बढ़ कर गुजरात को चीरते हुए आगे बढ़ गये थे। उन्होंने नदियों को व्यवस्थित किया, जंगल साफ़ किये, ऊसरों को उपजाऊ बनाया और आचार्यों ने आश्रम कायम किये और फिर जनपद-बस्तियां बसीं। व्यापारी नौका और वाहनों पर जीवन की वस्तुओं का विनिमय करने लगे, विजेता और विजित हिल मिल कर एक हो गये और नई सभ्यता का विस्तार हुआ जिसमें दक्षिण के सब प्रांत सौराष्ट्र, कोल, चेरा, पाण्ड्य, मगध, वत्स, अंग, वंग और कलिंग सभ्य नागर बन गए[१]।

इन दिनों लंका पर भी भारतीय अधिकार था और उसकी राजधानी ताम्रपर्णी थी। इसी युग में आर्यों को दो महत्कार्य करने पड़े—एक विवाह-मर्यादा स्थापित करनी पड़ी; दूसरे, जाति विभाजन करना पड़ा। यद्यपि चार वर्णों का विभाजन पहले ही हो चुका था परन्तु अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न वर्णसंकरों और अनेक अनार्य जातियों की स्त्रियों से आर्यों का संसर्ग होने पर उनसे उत्पन्न संतानों की अनेक शाखायें फैल गई थीं और इस बात की अब आवश्यकता थी कि विवाहों और इन विवाहों से उत्पन्न संतानों की जातियों का नए सिर से संगठन किया जाय। विवाहों के संगठन के सम्बन्ध में वशिष्ठ, आपस्तम्ब, गौतम आदि आचार्य कहीं सहमत और कहीं असहमत हैं। वशिष्ठ केवल छः

१. बौधायन १-१-२

विवाहों को स्वीकार करता है। आपस्तम्ब भी इन्हीं छः को है। परन्तु पिछले दो विवाहों को दूसरे नामों से स्वीकार क. गौतम और बौधायन विवाह की आठ रीतियों को मानते हैं। ये सूत्रकार वशिष्ठ से प्राचीन हैं। इन्होंने प्राजापत्य और पिशाच को अधिक माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में प्रदेशों में विवाह की भिन्न २ रीतियां प्रचलित हो गई थीं। तथा हिना स्त्रियां अन्तःपुर में रहती और पति की आज्ञानुवर्तिनी होती महाभारत एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह ग्रंथ आज जितना भी दूषित हो गया हो उस काल की सभ्यता का अप्रतिम प्र है, जब आर्यों का विस्तार गंगा की घाटियों तक हो चुका था आधुनिक दिल्ली के निकट गंगा के तीर पर उन्होंने राजधानी स्थ कर ली थी। सम्भवतः कुरु वे ही हैं जो ऐतरेय ब्राह्मण में उस पार रहने वाले कहे गये हैं[१]। इसी काल में आर्यों का दूसरा दल पांचाल नाम से आधुनिक कन्नौज के आस-पास पंचाल न से एक राज्य बना चुका था। संभव है ये पांचाल ऋग्वेद में वर्णि पंचजन के वंशज हों। जो हो, इन दोनों वंशों की समृद्धि मसीह से १ सौ वर्ष पूर्व हुई और दोनों में राजनैतिक संघर्ष हुए।

महाभारत[२] में केवल पांच ही विवाह वर्णित हैं। ब्राह्म, क्षात्र गान्धर्व, आसुर और राक्षस। दैव, आर्ष और प्राजापत्य को 'क्षात्र' अन्तर्गत माना गया है। पैशाच को निर्दिष्ट नहीं माना है। इनमें प्रथम के चार को प्रशस्त और अन्तिम को निकृष्ट माना है[३]। यद्यपि बलात् कन्याहरण भीष्म ने किया था और माद्री को मोल लिया था। क्षात्र

---

१. ऐतरेय ब्रा० ७—१४

२. महा०आदिपर्व अ. ७४; अनुशासन पर्व अ. ४४

३. [illegible]

विवाह की व्याख्या स्पष्ट नहीं है पर सम्भवतः वह गान्धर्व विवाह ही है परन्तु गान्धर्व विवाह और स्वयम्वर में जो भेद है वह स्पष्ट है। स्वयवर में तो एक न एक शर्त रखी जाती थी जिसे वर को पूरा करना होता था। परन्तु ऐसे भी स्वयंवर होते थे कि जिनमें कोई प्रण पूरा नहीं करना होता था जैसा कि दमयन्ती का स्वयवर हुआ। सिकन्दर के साथियों ने लिखा है कि 'पंजाब की स्त्रियां अपने लिये आप ही वर पसन्द करती हैं' इससे यह सहज ही अनुमान होता है कि स्वयंवर प्रथा बहुत देर तक प्रचलित रही। परन्तु गान्धर्व विवाह में किसी साक्षी का भी प्रश्न न था। पाठक जानते हैं कि गन्धर्व एक देवों की उपजाति है[१]। सम्भव है कि गन्धर्व विवाह की उन्मुक्त रीति आर्यों ने उनसे सीखी हो और अपनी परम्परा में सम्मिलित कर ली हो।

अब असुर विवाह पर विचार करिये। आप जानते हैं कि शर्मिष्ठा असुरकन्या थी जो कि आर्य राजा को विवाही थी[२]। मद्र और केकय देश की स्त्रियों को मध्य देश के क्षत्रिय राजा मूल्य देकर लिया करते थे[३]। ऐसा प्रतीत होता है कि साधारणतया समस्त दक्षिणावर्त में और विशेष प्रकार से उनमें—जिनके संबन्ध असुरों से थे—यह प्रथा कुल-परम्परा से चली आई थी। तथा उच्च कुल की ऐसी अनार्य कन्यायें मोल खरीद कर ब्याह ली जाती थीं और असुर विवाह उनके सन्तानों के अधिकारों की रक्षा कर लेता था परन्तु नीच जाति की कन्यायें दासी की भांति खरीदी जाती थीं और उनकी सन्तानों को कोई अधिकार प्राप्त न थे[४]।

अब राक्षस विवाह पर विचार करना चाहिये। भारत के दक्षिण प्रान्तों में कुछ आदिम निवासी जातियां थीं जो लंका तक फैली हुई थीं। सम्भवतः ये मनुष्यभक्षी थीं। रावण उनका एक सम्पन्न राजा था

१—२. महाभारत

३. महाभारत, रामायण

४. मनु

जिसकी राजधानी लंका थी। मय दैत्य की कन्या मन्दोदरी रावण को ब्याही थी[1]। दैत्य और दानव-वंश सम्भवतः राक्षस-वंश से अधिक उन्नत थे। इन सबसे आर्यों के विवाह-सम्बन्ध भी होते थे और देवताओं में भी उनकी रिश्तेदारियां थीं। राक्षस लोग यद्यपि ब्राह्मण और यज्ञों के विरोधी थे परन्तु बहुत राक्षस यज्ञ करते थे, उनकी प्रतिभा, योग्यता, संस्कृति तथा वैभव भी साधारण न था। उनमें से अनेक आर्यधर्मी हो गये थे[2]।

रामायण से पता लगता है कि राम से कुछ प्रथम ही अगस्त मुनि ने आर्यों का एक उपनिवेश दक्षिण में स्थापित कर लिया था। शरभंग ऋषि और परशुराम भी उधर ही चले गये थे। अनेक ऋषियों की इन राक्षसों से रिश्तेदारियां थीं। मत्स्यपुराण के मत से दैत्य दानव श्वेत पर्वत; पर देवगण सुमेरु (पामीर) पर; राक्षस, यक्ष और पिशाच हिमालय पर; गंधर्व, अप्सरस् हेमकूट (काराकुरम) पर; नाग और तक्षक निषध पर्वत पर रहते थे। रावण राक्षसों का एक प्रतिनिधि राजा था, उसकी स्वर्णपुरी लंका अपूर्व वैभव, प्रबल चतुरंगिणी वीरवाहिनी, विदुषी पत्नी, महापराक्रमी भाई कुम्भकर्ण और पुत्र मेघनाद एवं पवित्राचारिणी पुत्रवधु सुलोचना किसी भी सम्राट् के लिये ईर्षा का विषय हो सकती है। रावण का कुल गोत्र आचारहीन भी न था और राक्षस कहलाने पर वह लज्जित भी न था।

राक्षस विवाह अतिसाहसी सुभट ही कर सकते थे। सुभद्राहरण और भीष्म द्वारा काशीराज की कन्या का हरण इसका उदाहरण है। विवाहिता स्त्रियों का भी हरण किया जाता था जैसे कि जयद्रथ ने द्रौपदी का किया।

अब सब से महत्वपूर्ण बात की तरफ ध्यान देना चाहिये कि ब्राह्म विवाह सब विवाहों का मुख्य अंग था। क्षात्र, आसुर, राक्षस आदि

१—२. रामायण

विवाह से लाई हुई कन्या को ब्रह्म-विवाह की रीति से विवाह किया जाता था। आगे चलकर यह ब्रह्म-विवाह ही एकमात्र प्रमुख विवाह बन गया।

पाठक देख सकते हैं कि यह विवाह न तो व्यक्तिगत प्रेम के सम्बन्ध थे न कोई धार्मिक या आध्यात्मिक गठजोड़े थे जैसा कि आज समझा जाता है, प्रत्युत ये विशुद्ध आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखते थे जिनका अभिप्राय सम्पत्ति के उत्तराधिकारी पुत्रों को उत्पन्न करना था। यह उत्तराधिकार आज भी तब की भांति दीवानी कानून का सबसे पेचीदा और सब से अधिक महत्त्व का प्रश्न है। इसी कारण वे प्राचीन काल में पुत्र का बहुत महत्त्व था। हमारे उपन्यास में जिस वृद्धा ने अपने मृत-पुत्र की वधूटियों के लिये जो एक पुरुष को नियुक्त किया था, उसने पुत्रों के न होने के ख़तरे को भली भांति समझ लिया था।

अब आप गौतम के मत से उत्तराधिकारों की सूची देखिये—वह पुत्रों को दो भागों में विभक्त करता है—एक वह, जो उत्तराधिकारी हैं। दूसरे वह, जो केवल वंशज हैं।

१—अपना पुत्र (औरस)

२—अपनी स्त्री से उत्पन्न पुत्र (क्षेत्रज)

३—गोद लिया (दत्तक)

४—माना हुआ (कृत्रिम)

५—गुप्त रीति से उत्पन्न (गूधज)

६—त्यागा हुआ (अपविद्ध)

ये सब उत्तराधिकारी हैं।

१—कुमारी अवस्था में स्त्री का उत्पन्न पुत्र (कानीन)

२—गर्भवती दुलहिन का पुत्र (सहोध)

३—दो बार विवाहिता स्त्री का पुत्र (पौनर्भव)

४—नियुक्त कन्या का पुत्र (पुत्रिकापुत्र)

५—स्वयं दिया हुआ पुत्र (स्वयंदत्त)

६—मोल लिया हुआ पुत्र (क्रीत)

ये सब केवल वंशज हैं।[1]

बौधायन और वशिष्ठ जो गौतम के उत्तरकालीन हैं गौतम से भी भिन्न मत रखते हैं तथा परस्पर भी।

१—अपनी जाति की विवाहिता स्त्री में पति के वीर्य से उत्पन्न (औरस)

२—नियुक्त पुत्री का पुत्र (पुत्रिकापुत्र)

३—नियोग द्वारा (क्षेत्रज)

४—गोद लिया (दत्तक)

५—बनाया हुआ (कृत्रिम)

६—गुप्त रीति से उत्पन्न (गूढज)

७—त्यागा हुआ (अपविद्ध)

८—अविवाहिता कन्या का पुत्र (कानीन)

९—गर्भवती दुलहिन का पुत्र (सहोध)

१०—मोल लिया हुआ (क्रीत)

११—स्त्री के दूसरे पति से उत्पन्न (पौनर्भव)

१२—स्वयं दिया हुआ (स्वयंदत्त)

१३—द्विज पुरुष और शूद्रा स्त्री से (निषाद)

१४—एक ही माता पिता से उत्पन्न (पार्सव)

इन १४ प्रकार के पुत्रों में से बौधायन प्रथनके७ को बाद के ६ को वंशज तथा अन्त के पार्सव को वंशज भी नहीं वशिष्ठ गौतम की भांति केवल १२ ही पुत्र मानता है। वह पुत्र की नवीन व्याख्या करता है।

१. गौतम धर्मसूत्र २८

२. बौधायन २-२-३

"वह कन्या, जिसका कोई भाई नहीं अपने वंश के पुरुष पूर्वजों में आ जाती है और वह लड़का हो जाती है[1] ।"

वशिष्ठ ने जो नियुक्त कन्या को पुत्र कहा है उस कन्या का रीति के अनुसार पुत्र नाम रखा जाता था। ऐसी एक घटना का उल्लेख राजतरंगिणी में है, उसमें लिखा है कि गौड़ की राजकुमारी और जयापीड़ राजा की रानी कल्याण देवी को उसके पिता 'कल्याण मल्ल' कहते थे[2] ।

अब वशिष्ठ, गौतम और बौधायन के उत्तराधिकारी क्रम इस प्रकार हुये :—

	गौतम	वशिष्ठ	बौधायन
वंशज और उत्तराधिकारी	१ औरस	१ औरस	१ औरस
	२ क्षेत्रज	२ क्षेत्रज	२ पुत्रिकापुत्र
	३ दत्त	३ पुत्रिकापुत्र	३ क्षेत्रज
	४ कृत्रिम	४ पौनर्भव	४ दत्त
	५ गूधज	५ कानीन	५ कृत्रिम
	६ अपविद्ध	६ गूधज	६ गूधज
			७ अपविद्ध
वंशज परन्तु उत्तराधिकारी नहीं	७ कानीन	७ सहोध	८ कानीन
	८ सहोध	८ दत्त	९ सहोध
	९ पौनर्भव	९ क्रीत	१० क्रीत
	१० पुत्रिकापुत्र	१० स्वयंदत्त	११ पौनर्भव
	११ स्वयदत्त	११ अपविद्ध	१२ स्वयंदत्त
	१२ क्रीत	१२ निषाद	१३ निषाद

१. वाशिष्ठ १७

२. डा० बुहलर

	गौतम	वशिष्ठ	बौधायन
न वंशज, न उत्तराधिकारी किन्तु पुत्र	×	×	१४ पार्सव

परन्तु आपस्तम्ब जो बौधायन की केवल एक शताब्दी पीछे हुआ इन पुत्रों और उत्तराधिकारियों को संमूल कर देता है, वह सख्ती के साथ कहता है—

"जो मनुष्य ठीक समय में अपनी जाति की उस स्त्री के पास जाता है जो कि किसी दूसरे मनुष्य की न रही हो और जिससे उसने नियमानुसार विवाह किया हो तो उससे जो पुत्र उत्पन्न हो वही अपनी जाति के व्यवसाय तथा पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने का अधिकारी है"[१]। इस प्रकार वह पुत्र को गोद लेने, मोल लेने, तथा नियोग द्वारा उत्पन्न करने का सख्त विरोध करता है।

हमने अपने उपन्यास में विवाह-उत्तराधिकार आदि के प्रश्न पर एक विहंगम दृष्टि डालने के विचार से एक परिच्छेद में परिषद कल्पित कर शास्त्रों का प्रातिनिध्य आचार्यों से कराया है। इससे उसमें असंगति दोष नहीं समझना चाहिये। केवल इस जटिल प्रश्न पर थोड़ा प्रकाश डालने ही का हमने प्रयत्न किया है।

जिस काल का वर्णन हमारे उपन्यास में है, उस काल में विवाहों और उनसे उत्पन्न सन्तानों के उत्तराधिकारों को लेकर एक बहुत भारी संघर्ष का वातावरण देश में था। उस समय आर्यों के तीन वर्ग थे—एक ब्राह्मण पुरोहित, दूसरा क्षत्रिय राजा, तीसरा सर्वसाधारण अर्थात् विश। इनके अतिरिक्त अनार्य, दस्यु और दासों का एक दल था। इस

१. आपस्तम्भ २-६-१३

काल से कुछ पूर्व तक अनुलोम विवाहों से उत्पन्न संतान पिता के कुल, गोत्र, सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी, इसी बात को लेकर उच्च वर्ण के लोगों में ये भाव उत्पन्न हुआ कि आर्यों की सम्पत्ति अनार्य स्त्रियों की सन्तानों को नहीं मिलनी चाहिये। विशेषकर विश जनों की सतान जिन्हें केवल इतर जातियों में शूद्रा ही स्त्री प्राप्त हो सकती थी और जो सम्पत्तिशाली हो गए थे, इन स्त्रियों की सन्तानों को सम्पत्ति का पूरा भाग नहीं देना चाहते थे। पहले यह निर्णय किया गया कि एक अंश दिया जाय, आगे चल कर निर्णय किया गया कि कुछ भी न दिया जाय, जब ऐसी सन्तानें पिता की सम्पत्ति से वंचित हो गईं तो यह स्वाभाविक था कि वे पिता के कुल गोत्र से भी वंचित हो जॉय और उनकी पृथक् जाति बन जाय और ऐसा ही हुआ। धीरे २ वैश्या और क्षत्रिया स्त्रियों में उत्पन्न उच्चवर्णस्थ पति की सन्तानों को भी पिता की सम्पत्ति से वंचित किया गया और उनकी पृथक् जाति बना दी गई। प्रतिलोम विवाह की सन्तान तो पहले से ही वर्णसंकर कही जाती थीं। अब वर्णसंकरों का एक प्रबल संगठन खडा हो गया था और उन्होंने आर्यों की राजसत्तायें छीन लीं। जिस काल का वर्णन इस उपन्यास में है उस काल में भारतवर्ष में शुद्ध आर्यों के केवल दो चार वश राजसत्ता-प्राप्त थे; शेष सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनार्यों, आर्यबन्धुओं और संकरों की सत्ता व्याप्त हो गई थी। इन्हीं कारणों मे आर्यों ने वर्णसंकरों के प्रति अत्यन्त घृणा के भावों का प्रचार किया जिसका आभास हम भगवद्गीता[1] में पाते हैं। यहां स्पष्ट रूप में कहा गया है कि राजा को इस विषय में सावधान रहना चाहिये कि उसके राज्य में वर्णसंकर न उत्पन्न हो।

इन सब कारणो से असवर्ण विवाह रुक गये। प्रतिलोम तो पहिले ही कम होते थे, अनुलोम भी रुक गए। तब अनुलोम प्रतिलोम विवाह

---

१. संकरो नरकायैव कुलघ्नाना कुलस्य च। श्रीमद्भगवद्गीता

से उत्पन्न संकर जातियों ने आपस में संगठन करके विवाह करने प्रारम्भ कर दिए। शुद्ध चारों आर्य-वर्ण संकरत्व के भय से अपने ही वर्ण में विवाह करने लगे। इन सब कारणों से इन संगठित संकरवर्णी जनों के मन में कुलीन आर्यों, खासकर ब्राह्मणों के प्रति विद्वेष के गहरे भाव प्रकट हो गए। इस विद्वेष भावना का सुन्दर उदाहरण हमें महाभारत में मिलता है[1], जहाँ सर्पवेशधारी नहुष ने धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर किए हैं। इस प्रश्नोत्तर से हमें एक नई और अद्भुत बात यह दीख पड़ती है कि पहिले जहां वर्ण से वृत्त परखा जाता था, वहां अब वृत्त से वर्ण परखा जाना चाहिये। अर्थात् प्राचीन धारणा यह थी कि ब्राह्मणवर्णी को शीलवान् अवश्य होना चाहिये, परन्तु वर्णसंकरत्व के कारण यह गड़बड़ी हो गई कि ब्राह्मणों में भी बुरे लोग उत्पन्न होने लगे, तब शील को प्रधानता दी गई और यह कहा गया कि जिनका शील उत्तम है वही ब्राह्मण हैं, युधिष्ठिर का यह नवीन तर्क नहुष ने मान लिया और इस प्रकार वर्ण का अस्तित्व एक दूसरे रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस नवीन सिद्धांत का अभिप्राय यह था कि वर्ण या वंश ही मनुष्य के स्वभाव का मुख्य स्तम्भ है और वर्ण के साथ स्वभाव का नित्य का साहचर्य है। इसके समर्थन में महाभारत ही में भीष्म और युधिष्ठिर सम्वाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है[2]।

परन्तु आगे कुल-धर्म और कुलकृत्य को न छोड़ने की भी कठिन व्यवस्था हो गई थी। महाभारत में ही व्याध का एक उदाहरण है—'व्याध से ज्ञान प्राप्त करने को एक ब्राह्मण गया और उससे कहा—कि तुम महाज्ञानी होकर यह माँस बेचने का काम क्यों करते हो? तो उसने कहा—यह मेरे बाप-दादों से चला आता हुआ मेरा कुलधर्म है······कुलधर्म को जो लोग छोड देते हैं उसे राजा नष्ट कर देता है।

---

१. महा० वन० अ० १८०

२. महा० अनु० अ० ३-४

महाराज जनक के राज्य में ऐसा कोई नहीं है जो अपने कुलोचित कर्म को छोड़ अन्य कर्म करे[1]।'

इस उदाहरण से एक महत्वपूर्ण निर्णय पर हम पहुँचते हैं कि राष्ट्र के विस्तार के साथ ही विवाह की भांति ही ऐसे कड़े नियम बना दिये गए थे कि कोई व्यक्ति अपने पैतृक धन्धे को छोड़ कर दूसरा धंधा नहीं कर सकता था।

ब्राह्मण के ६ कर्म थे—१–यजन, २–याजन, ३–पठन, ४–पाठन, ५–दान, ६–प्रतिग्रह। परन्तु महाभारत काल में ब्राह्मण वेतन लेकर पूजापाठ, नौका द्वारा व्यवसाय, पुरोहित मन्त्री और दूत-कार्य करते थे[2]। वे बेगार और कर नहीं देते थे, यद्यपि दक्षिणा में उन्हें भारी २ रकम प्राप्त होती थीं। नहुष वर्णों के मामले में क्रांतिकारी विचार रखता था और उसने ब्राह्मणों से कर लेना चाहा था। जिस पर बड़ा प्रबल विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, तथा नहुष को राज्यच्युत होना पड़ा था[3]। वह व्यापार भी कर सकता था पर मांस, नमक, मधु और पकाया भोजन नहीं बेच सकता था। क्षत्रिय के तीन कर्म—१–अध्ययन, २–यज्ञ तथा ३–दान कर सकता था पर करा नहीं सकता था। केकय जैसे वेदपारंगत यजनशील क्षत्रियों के अनेक उदाहरण हैं। उस काल में क्षत्रियों का ध्यान एक ही गुण की ओर था 'युद्धे अपलायनम्'।

वैश्यों के कर्म थे—कृषि, पशुपालन और वाणिज्य। समृद्ध होने पर वैश्यों ने प्रथम के दोनों कार्य शूद्रों के ऊपर छोड़ केवल वाणिज्य ही को अपनाया। शूद्रों के लिये कठोरतम नियम बनते ही गये। वे पढ़ लिख नहीं सकते थे। मालिकों की जूठन खाते और उनके पुराने वस्त्र

---

१. महा० अ० अ० २०७

२. महा० शांति अ० ७

३. महा० शांति० अ० ७

पहनते थे। वे धन-संग्रह भी नहीं कर सकते थे। परन्तु ज्यों २ आर्यों का विस्तार दक्षिण की ओर होता गया, शूद्रों की संख्या बढ़ती गई और वैश्यों के पशुपालन तथा कृषि-कार्य इन्हीं पर छोड़ देने से उन्हें धनप्राप्ति का भी अधिकार हो गया[1]।

आर्यों की भांति संकर जातियों ने भी अपने पैत्रिक पेशे अपनाये। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न 'सूत' को वेदपाठी होने तथा रथ हाँकने का पेशा मिला। वे ब्राह्मण और क्षत्रिय के मेल से उत्पन्न संतति थी इससे इसमें दोनों वर्णों के गुण आये। वैश्य और ब्राह्मण से 'वैदेह' उत्पन्न हुए, इनका कार्य अन्तःपुर की रक्षा करना था। आगे चल कर इन्होंने गंगा की घाटियों में एक महाराज्य की स्थापना की और ब्राह्मण-विरोधी ब्रह्मवाद के सिद्धांत को जन्म दिया। क्षत्रिया और वैश्य से उत्पन्न मगध जाति हुई[2]। इन्होंने भी पूर्वी भारत में एक महाराज्य स्थापित किया। ये तीनों संकर जातियां संकरों में अग्रगण्य हुईं इन्हें 'सूत-वैदेह-मागधाः' कह कर पुकारा गया।

वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष की संतान 'आयोगव' मानी गई। इन का कार्य सम्भवतः बढ़ई का था। परन्तु क्षत्रिय स्त्री और शूद्र की संतान अधिक निकृष्ट 'निषाद' मानी गई जो धीवर हुए। मछली मारना तथा नाव खेना भी उनका काम हुआ। ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरुष की संतान अतिनिषिद्ध चाण्डाल मानी गई। उसे जल्लाद का कार्य दिया गया तथा बस्ती के बाहर रहना और ठीकरों में खाने का आदेश दिया गया। सम्भवतः कंजर और डोम इस वंश के हैं। 'अम्बष्ट, पारशव और उग्र' के व्यवसायों का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता तथापि द्विजों की

---

१. महा० शांति० अ० ६० ।

२. मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर स्मृति

सेवा करना ही उनका कार्य था। इस प्रकार प्रतिलोम संतति-परम्परा में पन्द्रह प्रकार की बाह्याभ्यन्तर जातियां बनीं[1]। जिनके भिन्न २ सेवा-कर्म रहे। अब आप सहज ही समझ सकते हैं कि वर्ण-संकरत्व के इस कुत्सित रूप से भय खाकर चातुर्वर्णों में कड़ाई से सवर्ण-विवाह और वर्ण-वर्णित व्यवसाय करने की परम्परा चल गई तथा चारों वर्णों का नए सिरे से संगठन हुआ। महाभारत से पता चलता है कि चम्पा, मत्स्य, कुरु, पांचाल और चम्पा आदि देशों में वर्णधर्म बहुत शिथिल था। वाल्हीक देश में मनुष्य पहले ब्राह्मण होता है, फिर क्षत्रिय, फिर वैश्य फिर शूद्र, बाद में नापित हो जाता है। इस प्रकार वह ब्राह्मण होकर उसी का दास हो जाता है[2]। इससे यह स्पष्ट होता है कि कुरुओं में जात-पात का जितना प्रतिबन्ध था उतना पंजाब में नहीं था।

यह स्वाभाविक था कि जातियों के इन बखेड़ों के कारण स्त्रियों के सम्पूर्ण अधिकारों को भी छीन लिया गया तथा उनकी स्वाधीनता का सख्त विरोध किया गया। मनु स्त्रियों की प्रतिष्ठा तो करता है—पर उन्हें कड़ाई से जन्म-जन्मान्तर तक पुरुषों के अधीन बताता है। वह असवर्ण विवाह का सख्त विरोधी है[3]। वह प्राचीन विवाह-परिपाटी में भी कुछ संशोधन करता है[4]।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कारणों से हिन्दू स्त्रियों का जीवन अधिकार-शून्य और आंसुओं तथा निराशा से परिपूर्ण दासी-जीवन बन गया। यही नहीं। मनु ने पुरुष को स्त्री-त्याग के भी काफ़ी अधिकार दिये[5]।

उसने यह व्यवस्था दी कि आर्यों के चारों वर्ण अनार्यों तथा इतर

---

१. महाभा० अनु० अ० ४८

२. महाभा० कर्ण पर्व अ० ४५

३. मनु०, ३-१२, १३, १५, १६, १७, १९।

४. मनु० ३-२५। ३-५४। ९-९८, १००। ८-२०४।

५. मनु० ९-८०। ८-१०। ९-८१। ८-३७१।

वर्णों एवं मिश्रित स्त्रियों से विवाह करके या बिना ही विव
रखें और उनको संतान हो तो वह न पिता की जाति या मा
भाग की अधिकारिणी हो। वह उनकी एक नवीन
देता है।

पिता	माता	जाति
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ट
ब्राह्मण	शूद्र	निषाद
क्षत्रिय	शूद्र	उग्र
क्षत्रिय	ब्राह्मण	सूत
वैश्य	ब्राह्मण	वैदेह
वैश्य	क्षत्रिय	मागध
शूद्र	वैश्य	अयोगव
शूद्र	क्षत्रिय	क्षत्री
शूद्र	ब्राह्मण	चाण्डाल
ब्राह्मण	उग्र	अवृत्त
ब्राह्मण	अयोगव	पिजवन
ब्राह्मण	अम्बष्ठ	अभीर
निषाद	शूद्र	पुक्कस
चाण्डाल	निषाद	कुक्कुटक
क्षत्री	उग्र	स्वपाक
वैदेहक	अम्बष्ट	वैण

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पतित सवर्णा स्त्रियों

क्षत्रिय व्रात्य	झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नट, करन, खस, द्रविड़
वैश्य व्रात्य	सुधन्वन, अचार्य, कारुप विजन्मन, मैत्र, सान्त्वन
अयोगव	सैरिन्ध्र
अयोगव	मैत्रेयक
अयोगव	मार्गव, दास, कैवर्त
वैदेह	कारावर
कारावर	अन्ध्र
निषाद	मेद

यह सूची प्राचीन सूत्रकारों से मिलती जुलती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इनमें से वैदेह, मागध, क्षत्री, निषाद, मल्ल, लिच्छवि, द्रविड, खस, अन्ध्र आदि जातियों ने अपने समर्थ गण-राज्य स्थापित किये। आर्यों की अपेक्षा इन संकर जातियों में, जहां सम्पूर्ण जाति का एक बँधा गुट्ट था, गणराज्य ही अधिक स्वाभाविक थे। जबकि आर्यों में राजा अपने साम्राज्य का निर्माण करते, ब्राह्मण उनके देवत्व का ढोल पीटते और लूट के माल में हिस्सा बँटाते थे। मनु इन्हीं संकर जातियो में चाण्डाल, उग्र, द्रविड, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पहलव, किरात और दरद लोगों को भी सम्मिलित करता है; परन्तु मार्के की बात यह है कि वह पेशेबन्द जैसे सुनार, लुहार, छीपा, ठठेरा, कुम्हार आदि को संकरों में सम्मिलित नहीं करता।

यह स्वाभाविक ही था कि आर्य ज्यों २ दक्षिण की ओर बढ़ते गये और अपने राज्य स्थापित करते गये तथा वहां की अनार्य जातियों को विजित करते गये—उनमें मिलते भी गये, कुछ उनके रीति-रिवाज अपनाते कुछ उन्हें सिखाते तथा उनकी स्त्रियों से विवाह भी करते गये। परन्तु इस

अनार्य मिश्रण को उन्होने अपनी रक्त-परम्परा औ
से भी दूर ही रक्खा। शुद्ध आर्य पृथक् रहे
आर्य उन्हीं चार वर्णों में विभाजित रहे, परन्तु
भारत में और भारत के बाहर भी बड़े २ राज्य ९
मिथिला में, लिच्छवियों ने वैशाली में, मागधों
राजगृह में, मल्लों ने पावा में, द्रविड़ों और आन्ध्रों
गुजरात में महाराज्य स्थापित किये। पौण्ड्रों ने
समृद्ध राज्य की नींव डाली। आभीर, गर्धभिल, शक,
आदि संकर जातियों ने भी राज्य स्थापित किए।

भारत से बाहर की जातियों ने उत्पल में, काम्बो
यवनों ने बैक्ट्रिया में, पारदों और पहलवों ने फारिस में,
किरातों ने पर्वतों में; इन सब संकर जातियों का
और शुद्ध आर्यों का देश विदेश में पराभव एक म०
घटना है। कदाचित् आज भी समस्त सभ्य संसार पर
की संतति शासन कर रहा है। संभवतः शुद्ध आर्यों
पराभव और संकर जातियों का उत्कर्ष का सूत्रपात
के साथ ही हुआ, जिसमें कौरवों के साथी कुलीन आर्य थे
के मिश्रित जाति वाले। वास्तव में यह युद्ध कुलीन आर्यों
चूर करने वाला था। यदि आप महाभारत में वर्णित उस
से देखें,[१] जिसमें दोनों ओर से युद्ध में सम्मिलित होने
का उल्लेख है तो आप देखेंगे कि यह युद्ध पहले आये
आए हुए आर्यों के बीच हुआ था। कौरवों के दल में सभी
द्रविड़ अवन्ति तक के तथा पूर्व में अयोध्या प्राग्ज्योतिष
कुलीन राजा थे। मद्रों का राजा शल्य

का भूरिश्रवा तथा माहिष्मती का राजा नील, पंजाब का केकय और गान्धार कोसल के राजा थे। उधर पाण्डवों के दल में दिल्ली, मथुरा, चेदि, मगध और काशी के राजा तथा मध्यदेश के लोग थे। जो निस्संदेह सब नए आए हुए चन्द्रवंशी थे। आप ध्यान से देखने पर जानेंगे कि इस युद्ध में श्रीकृष्ण और व्यास विशेष रीति पर उत्सुक हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि ये दोनों महापुरुष उच्च गुणों से विभूषित होने पर भी कुलीन आर्यों में तिरस्कार से देखे जाते थे।

युद्ध में कुलीन कौरवों का क्षय हुआ और हीनकुल पाण्डव विजयी हुए। इसके बाद तो गर्वोन्नत आर्यों का पतन होता ही गया और नन्दों के बाद सम्पूर्ण भरतखण्ड भर में संकर और शूद्र राजाओं का राज्य हो गया; और गर्वीले आर्य केवल प्रजावर्गी रह गये। परन्तु संकर जातियों ने राज्यसत्ता ही आर्यों से छीन कर संतोष नहीं किया। उन्होंने ब्राह्मणों की धर्मसत्ता भी छिन्न-भिन्न कर दी। यह कार्य बुद्ध और महावीर ने श्रमण संस्कृति का स्थापन करके सम्पन्न किया; तथा आर्य-संस्कृति के प्रतीक वेदों, यज्ञों तथा ब्राह्मणों एवं उनकी भाषा संस्कृत के विरुद्ध एक विजयी धर्मयुद्ध किया। उसका तुरन्त यह परिणाम हुआ कि जिन विजित जातियों ने विजयी आर्यों के धर्म को स्वीकार कर लिया था उन्हीं की सन्तानों ने आर्यत्व की जड़ पर पूरे वेग से कुल्हाड़ा मारा। वेद, यज्ञ और ब्राह्मण तीनों की जड़ें हिल गईं, उनका प्रबल प्रताप भावी दुनिया पर छा गया, तथा इन संकरों के वंशधर समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, अशोक आदि सम्राटों ने बिना ही अश्व-मेध-यज्ञ किये आर्यों की परम्परा को ठुकरा कर अखण्ड भारत ही में नहीं उससे बाहर भी अपनी विजय-वैजयन्ती फहराई।

आर्यों के भारत में आने से पूर्व सिन्धु-उपत्यका में असीरिया की समसामयिक एक सभ्य जाति रहती थी। यह सामन्तशाही पद्धति पर

आर्यों का वैदिक-काल

शासित नागरिक जाति थी। उसकी सभ्यता असुर और काल्दी सभ्यता की समता की थी। तथा उनकी समसामयिक भी थी। वह 'शिश्नदेव' की पूजा करती थी तथा कृषि, शिल्प और वाणिज्य में उन्होंने यथेष्ट विकास कर लिया था, उनका एक परिपूर्ण धर्म था तथा एक चित्रलिपि वे काम में लाते थे। इस सिन्धु-उपत्यका की सभ्यता का परिचय इसी शताब्दी के द्वितीय पाद के आरम्भ में 'मोहनजोदडो' और 'हड़प्पा' से प्राप्त अवशेषों से मिला है।

मसीह से लगभग १८०० वर्ष पूर्व आर्यों ने अफगानिस्तान के मार्ग से प्रविष्ट होकर इन सिन्धु-उपत्यका के नागरिकों को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उस समय आर्य जन-प्रभावित पितृसत्ताक समाज में संगठित थे और निस्संदेह इन सिन्धु-तीरवासी नागरिकों की अपेक्षा सभ्यता और संस्कृति में पिछड़े हुए थे।

यह जैमिनी[१] के मतानुसार आर्यों का वेद-साहित्य मन्त्र और ब्राह्मण दो भागों में विभक्त है। मन्त्रभाग को संहिता कहते है। ऋग्, यजु, साम, अथर्व की मन्त्रसंहिताएँ हैं। जिनकी अनेक शाखाएँ थी, जिनमें अनेक अब नष्ट हो चुकी है। इस प्रकार आर्यों के विचारों, सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आरम्भिक स्थिति और तत्कालीन अवस्था का परिचय हम वेदसंहिता, ब्राह्मण और आरण्यक में लिखित सामग्री के रूप में पाते हैं।

ऋग्वेद सर्वाधिक प्राचीन मन्त्रसंहिता है। उसके मन्त्रकर्ता ऋषियों में सबसे प्राचीन विश्वामित्र, वशिष्ठ, भरद्वाज (गौतम), दीर्घतमा और अत्रि आदि हैं। इनमें कुछ समसामयिक है और कुछ में एक-दो पीढियों

---

१. ३०० ई० ।

का अन्तर है। सारा ऋग्वेद छः-सात पीढियों के ऋषियों की कृति है। अंगिरा के पौत्र और वृहस्पति के पुत्र भरद्वाज उत्तर-पांचाल[1] के राजा दिवोदास के मसीह से १५०० वर्ष पूर्व एक पुरोहित थे।

विश्वामित्र दक्षिण पांचाल[2] के निवासी थे। वशिष्ठ कुरुराज[3] के पुरोहित थे।

वृहस्पति जो सबसे अधिक प्रतिष्ठित और विद्वान् ऋषि हैं उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है।
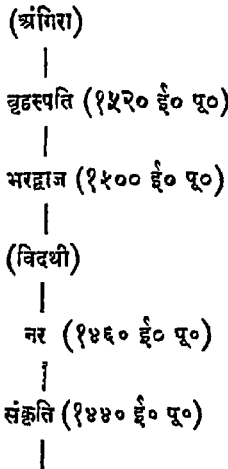
ऋषियों की इस परम्परा पर विचार करने से इसमें सन्देह नहीं रहता

---

१. रुहेलखण्ड

२. आगरा कमिश्नरी का अधिकाश भाग

३. मेरठ और अम्बाला कमिश्नरी का अधिकाश भाग

कि ऋग्वेद-संहिता के अधिकांश भाग की रचना लगभग १०० वर्षों के बीच हुई है। ब्राह्मण और आरण्यक मसीह पूर्व की छठी-सातवीं शताब्दी तक बनते रहे हैं।

भारत में आने के बाद आर्यों ने पहला निवास स्वात नदी की उपत्यकाओं में[1] किया। दूसरा सप्त-सिन्धु में[2] और तीसरा उत्तर-दक्षिण-पांचाल देशों में[3]। यहीं पर ऋग्वेद का अधिकांश निर्मित हुआ। इसी से यह प्रदेश अधिक पवित्र, अनेक तीर्थों का केन्द्र तथा आर्यावर्त माना गया।

प्राचीन वैदिक आर्य-समाज

आर्यों के इस तृतीय सन्निवेश में बस जाने तक आर्यों में कुरु-पांचालों के समर्थ सामन्तशाही राज्य स्थापित हो चुके थे। कृषि, पशुपालन, ऊनी वस्त्र आदि का व्यापार चल निकला था। वर्ण अभी अस्थिर अवस्था में थे। विश्वामित्र राजपुत्र होने पर भी ऋषि हो गये। और भरद्वाज के पौत्र सुहोत्र और शुनहोत्र की संतति कुरु पाञ्चालों में परिणत होकर क्षत्रिय शासक हो गई। भरद्वाज का प्रपौत्र संकृति-पुत्र रन्तिदेव राजा और क्षत्रिय था। इससे प्रतीत होता है कि इस समय तक वर्ण-व्यवस्था अस्थिर थी। कर्म अनुसार ब्राह्मण (पुरोहित) क्षत्रिय (राजा) हो सकता था और राजा (क्षत्रिय) ब्राह्मण (पुरोहित)। आगे चलकर ये वर्ण आनुवंशिक बन गये; परन्तु सप्तसिन्धु और काबुल (स्वात) में जो आर्य बस गये थे उनमें वर्णव्यवस्था स्थापित ही नहीं हुई। उन्हें 'आर्यावर्त' के

---

१. अफ़गानिस्तान में।

२. पंजाब में।

३. पश्चिमी युक्तप्रान्त, यमुना-गंगा और रामगंगा की मैदानी उपत्यका।

ब्राह्मण पुरोहितों ने व्रात्य (पतित) कह कर बहिष्कार कर दिया और उसका कारण 'ब्राह्मण का अदर्शन' बताया।

युक्तप्रान्त अभी भी (१५०० ई० पूर्व) घने जंगलों से परिपूर्ण था। इस समय आर्यों का खाद्य रोटी, चावल, दूध, घी, दही, मांस[1] था। सोम (भंग) पेय था। ऊन के तथा चमड़े के वस्त्र पहने जाते थे। वे इन्द्र, वरुण, सोम, पर्जन्य आदि प्राकृत शक्तियों को देवता मानते थे। उनकी प्रतिमा या संकेत वे नहीं मानते थे।

उस काल में आर्य किसी एक देव को सर्वेसर्वा नहीं मानते थे। परन्तु आगे चलकर एक देववाद की प्रवृत्ति बढ़ी जिसका आभास हमें ऋग्वेद के १०वें मंडल में मिलता है। आगे चलकर ई. पू. छठी पांचवी शताब्दी में जब प्रजा के अधिकार बहुत कम रह गये और राजा निरंकुश हो गया तो राजा को 'देव' कहा जाने लगा और प्रजापति—जो आर्यों के पितृसत्ताक समाज का नेता था—ऋग्वेद के अन्तिम दशम मंडल में महान् सर्वेश्वर बन गया है ?

उपनिषद् का विकास व्यापार-प्रधान काल में होता है। और वह एक अद्वितीय निराकार शक्ति है। पुनर्जन्म, से वैदिककालीन ऋषि परिचित नहीं है। 'पुनर्जन्म' का सबसे प्रथम उल्लेख प्राचीन आर्य-साहित्य में छान्दोग्य उपनिषद् ने किया है[2], तथा इसी स्थान पर एक और महत्त्वपूर्ण बात छान्दोग्य ने उपस्थित की है—वह ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य को मनुष्य योनि नहीं मानता, उन्हें उसने स्वतन्त्र योनि का दर्जा

---

१. संकृति के पुत्र रन्तिदेव के २०० रसोइये प्रतिदिन २००० गायों के मास को पकाते थे।

'सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मासं यथा पुरा।' महा० द्रोण० ६७।१७।१८ शांति-२६।२८

२. छान्दो० ५।१०।७।

दिया है। इससे स्पष्ट है कि इस काल में वर्णों का वर्गीकरण ही नहीं, उत्तम वर्णों की महत्ता भी स्थापित हो चुकी थी। यदि सब वर्णों को मनुष्ययोनिमान् कहा जाता है तो समानता का प्रश्न उठ सकता था।

मसीह से पूर्व छठी शताब्दी में भारतीय दर्शन का स्रोत फूटा। इस समय भारत में तीन समाज प्रणालियां थीं; १—वैदिक आर्य, २—अवैदिक आर्य (व्रात्य) और ३—अनार्य। इनमें वैदिक और अवैदिक आर्यों के जनपद भिन्न २ राजनैतिक क्षेत्रों में थे। परन्तु दोनों ही क्षेत्रों में अनार्य नागरिक थे। गणराज्यों की प्रणाली रक्त की प्रधानता पर निर्भर थी। इसलिये गणराज्यों की राज्यव्यवस्था में ये दखल नहीं दे सकते थे; परन्तु राज्यतन्त्रों में उन्हें ऐसी सुविधाएं थीं। राजतंत्र में किसी एक कबीले की प्रधानता तो थी नहीं। राजा और पुरोहित की अधीनता स्वीकार कर लेना ही यथेष्ट था। वे उत्तम राजपद पर भी पहुँच सकते थे। परन्तु इस काल तक उन्हें आर्यसंस्कृति से दूर रखने की चेष्टा की जाती थी। सबसे प्रथम अथर्ववेद में दोनों संस्कृतियों को मिलाने का प्रयास दीख पड़ता है। अथर्ववेद आर्य अनार्य धर्मों, मन्त्र तन्त्र दोनों टोटकों के मिश्रण का प्रथम प्रयास है। परन्तु यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि इस काल में ही वैदिक अवैदिक दोनों ही दर्शनों का उदय हुआ।

वैदिक दर्शनों की अपेक्षा अवैदिक दर्शन अधिक विकसित हैं स्वतन्त्र विचारकों में चार्वाक् और कपिल प्रथम आते हैं और बुद्ध तथा उनके समसामयिक तीर्थंकर उसके बाद।

चार्वाक् भौतिकवादी दर्शन हैं। वह भोगों को महत्त्व देता है।

चार्वाक — चार्वाक् का अर्थ है—'चबाने के लिये मुस्तैद'।

जैविलि, आरुणि, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति (चार्वाक) आदि विचारकों ने भारतीय विचारधारा में क्रान्ति

बुद्धकालीन दार्शनिक (५००-४५० ई० पू०	की वह इस युग में चरम सीमा पर पहुँच गई। इस युग में निम्नलिखित विचारक दार्शनिक उत्पन्न हुए।

१ अजितकेश कम्बल (५२३ ई० पू०) भौतिकवादी। यह एक लोक-विख्यात, सम्मानित धर्मप्रवर्तक था। कोशलेश प्रसेनजित् ने एक बार गौतम बुद्ध से कहा था—

"हे गौतम, वह जो श्रमण ब्राह्मण संघ के अधिपति, गणाधिपात, गण के आचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी, तीर्थंकर बहुजनो द्वारा सुसम्मत हैं जैसे पूर्ण काश्यप, मक्खलिगोशाल, निगंठ, नातिपुत्त, संजय वेलट्ठिपुत्त, प्रबुद्ध कात्यायन, अजितकेशकम्बल—वह भी यह पूछने पर कि आपने अनुपम सच्ची सम्बोधि (परम ज्ञान) को जान लिया—यह दावा नहीं कर सकते फिर जन्म से अल्पवयस्क और प्रव्रज्या में नए आप यह दावा कैसे करते हैं[१]।

त्रिपिटक में अजित और बुद्ध के संवाद का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु उसके दार्शनिक विचारों का उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों में है[२]।

२ मक्खलिगोशाल (५२३ ई० पू०) अकर्मण्यतावादी। मक्खलि-गोशाल का नाम जैन और बौद्ध दोनों ही साहित्य में आया है। वह पहिले जैन साधु था पीछे उसका विरोधी हो गया। ऐसा जैनग्रन्थों से प्रकट है। जैन ग्रन्थों में उसे अत्यन्त नीचप्रकृति और ईर्षालु कहा गया है परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में बुद्धकालीन छः प्रसिद्ध लोकसम्मानित आचार्यों में गिना गया है। बौद्धग्रन्थों से यह भी प्रकट है कि वह आजीवक सम्प्रदाय का था और नंगा रहता था। आजीवक संयम-

---

१. संयुत्त-निकाय ३।१।१ (बुद्धचर्या, पृ. ६१)

२. दीघनिकाय १।२; मज्झिम निकाय २।१ १०, २।६।६

(अपने उपन्यास में हमने यह नाम कुछ विकृत करके अजितके-सम्बल नाम से प्रयुक्त किया है क्योंकि उनका प्रयोग औपन्यासिक है।)

नियम की भी परवाह नहीं करते[१] । इसी काल आजीवकों के 'नन्दवात्स्य-कृशसांकृत्य दो और निर्मातात्रों (आचार्यों) का भी उल्लेख है । मक्खलि-गोशाल भाग्यवादी, पुनर्जन्म और देवताओं को मानने वाला था ।

३ पूर्णकाश्यप (५२३ ई० पू०) अक्रियावादी । यह भी बुद्ध का समकालीन प्रसिद्ध तीर्थंकर था ।

४ प्रक्रुद्ध कात्यायन (५२३ ई० पू०) नित्यपदार्थवादी । यह भी बुद्धकालीन विद्वान् था । भाग्यवादी होने से वह शुभकर्मों को निष्फल बताता था । वह प्रत्येक वस्तु को अचल नित्य मानता था ।

५ संजय वेलट्ठिपुत्त (५२३ ई० पू०) अनेकान्तवादी । यह महावीर की भांति अनेकान्तवादी है; अन्तर यह है कि 'महावीर' 'हां' कहते हैं वपस्या संजय 'नहीं' ।

६ महावीर । यह अपने को सर्वज्ञ तीर्थंकर कहते हैं । शारीरिक पर उनका बड़ा जोर है ।

बुद्ध के जन्म से कुछ प्रथम ही उत्तर भारत के सामन्त राज्य विस्तार के अभिप्राय से लड़ने लगे थे । बुद्ध से दो ही तीन पीढ़ी प्रथम कोसल ने कासी जनपद को हड़प लिया था, अङ्ग को बुद्ध के जन्मकाल ही में मगध में मिलाया । उधर मगध की सीमा विन्ध्याचल को पार करके अवन्ती तक पहुँच चुकी थी । कोसल, वत्स, मगध, अवन्ती के अतिरिक्त लिच्छवियों का प्रजातन्त्र ये पांच महाशक्तियां थीं । उपनिषद् काल में राजतन्त्र की झलक अधिक है । बुद्ध के समय तो जनसत्ता भंग ही हो रही थी और कई २ जनपद मिलकर राज्य बन रहे थे । व्यापारी-वर्ग ने भी जनों की यह सीमा-बन्दियां तोड़ने में सहायता की थी ; क्योंकि उनके सम्बन्ध अनेक राज्यों से थे । उनका लाभ छोटे २ राज्यों की अपेक्षा बड़े २ राज्यों से था ॥

इस उपन्यास में एक कल्पित नियुक्त पुरुष की घटना का उल्लेख है । इस उल्लेख का अभिप्राय यह है कि उस काल में भी यह प्रथा

---

१. मज्झिम निकाय २।३।६, १।४।६, १।३।६

नियोग

प्रचलित थी और यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती थी कि पति की आज्ञा से अथवा पति के मरने पर स्त्री अन्य पुरुष को नियुक्त करके सन्तान उत्पन्न कर सकती थी और वह सन्तान उस पति की कुल गोत्र और सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। ११ प्रकार के पुत्रों में इस प्रकार से उत्पन्न पुत्र—जो क्षेत्रज कहलाता था, कुर्सीनामे के क्रम से दूसरे दर्जे पर-दाय भाग का अधिकारी होता था। इसी प्रकार के नियुक्त पुरुषों के द्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और पांचो पाण्डव जैसे महज्जनों की उत्पत्ति हुई थी। महाभारत में इस प्रकार के नियुक्त पुरुषों से सन्तान उत्पन्न करने का प्रचलन प्राचीन काल से था, यह हम स्पष्ट देख पाते हैं। यद्यपि महाभारत काल में यह प्रथा निन्दनीय मानी जाने लगी थी परन्तु अनिवार्य होने पर उसका उपयोग किया जाता था। महाभारत में जो दीर्घतमा ऋषि का वर्णन है। वह तो ऐसा मालूम होता है कि इस महात्मा ने तो यह काम अपना पेशा ही बना लिया था। ऐसा मालूम होता है कि उत्तरकालीन युग में स्त्रियों को जब पुरुषों ने वैवाहिक जीवन में अनुबन्धित किया तो बड़े यत्न, प्रयत्न और भांति २ की कथायें घड़ कर स्त्रियो पर बिना शर्त पातिव्रत का बोझ लाद दिया जिसका एक सब से बढ़िया उदाहरण सावित्री का उपाख्यान है।

नियोग की प्रथा के साथ ही साथ स्त्रियों के पुनर्विवाह की भी प्रथा बन्द कर दी। दुनिया में केवल दो ही जातियां हैं जिनमें स्त्रियों के पुनर्विवाह का मार्ग रोक दिया गया था। एक भारतीय आर्य और दूसरे योरोप के जर्मन। यूनानी पर्यटकों ने और सिकन्दर के साथी इतिहासकारों ने भी इस बात की साक्षी दी है कि आर्य स्त्रियों का पुनर्विवाह नहीं करते। महाभारत के अनुसार दीर्घतमा ऋषि ने यह मर्यादा स्थिर की थी कि जन्म भर स्त्री का एक ही पति रहे, वह जीवित

हो या न हो, स्त्री दूसरा पति न कर सके, करे तो पतित हो[1]।

नल के उपाख्यान में नल के मुख से कहलाया गया है—"लिये अनुव्रत रही हुई कौन-सी स्त्री दूसरे पुरुष से विवाह करेगी तेरे दूत तो पृथ्वी पर कहते फिरते हैं कि स्वतन्त्र व्यवहार करने दमयन्ती अपने अनुरूप दूसरा भर्ता करेगी[2]।"

नियोग का अर्थ है नियुक्त करना, अर्थात् ऐसी स्त्री और ऐसे का केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये अस्थायी रूप में सहवास करना, नियम से पति-पत्नी नहीं हैं। प्राचीनकाल में यह कार्य कोई सधवा अथवा विधवा स्त्री अथवा वैसा ही पुरुष अपुत्र होने की दशा में कर सकता था और पुत्र की प्राप्ति होने पर फिर उनका कोई सम्बन्ध न रह जाता था।

वैदिक साहित्य में नियोग का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं है, फिर भी 'देवर' की कामना करने की बात वर्णित है[3]। यद्यपि यास्क ने देवर का अर्थ "द्वितीय वर" किया है[4]।

इससे नियोग की अपेक्षा पतिभाव की ही ध्वनि अधिक निकलती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि नियोग की आवश्यकता उस समय हुई जब कुरु पाञ्चाल जातियाँ गंगा की घाटी तक फैल गई थीं और उनकी राजसम्पदा बहुत बढ़ गई थी। क्योंकि इस क्रिया में केवल पुत्र का ही महत्त्व है। यद्यपि उत्तरकालीन ग्रन्थों में पुत्र को परलोक में पिण्डदान करने का अधिकारी कहा गया है परन्तु वास्तव में उसका उपयोग उस

---

१. महाभारत आदिपर्व अ० १०४

२. महाभारत वनपर्व अ० ७६

३. यजुर्वेद-"वीरसूदेवका"... —"

४. ...

समय सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिये था और इसका स्पष्ट उल्लेख हमें पहले-पहल सूत्रग्रन्थों में मिलता है वह भी उत्तराधिकार के सिलसिले में जहां सर्वत्र के नियोग के पुत्र को क्षेत्रज कहकर औरस पुत्र से दूसरे दर्जे पर माना गया है।

वशिष्ठ[1] और गौतम[2] ने उसे दूसरे दर्जे पर और बौधायन[3] ने तीसरे दर्जे पर माना है परन्तु आपस्तम्ब[4] जो बौधायन से एक शताब्दी बाद हुआ, कड़ाई से इन भिन्न २ प्रकार के पुत्रों का विरोध करता है।

वह नियोग के सम्बन्ध में भी कहता है कि "किसी सभ्य पुरुष को अपनी स्त्री अपने कुटुम्ब को छोड़ दूसरे को नहीं देना चाहिए[5]।"

मनु भी इसका समर्थन करता है[6]। नियोग-विधि किस प्रकार दूषित हुई इसका वर्णन भी मनु ने किया है[7]। याज्ञवल्क्य आचाराध्याय के विवाह-प्रकरण में नियोग-विधि का वर्णन करता है जिस पर मिताक्षरा ने मार्मिक टिप्पणी की है। मेधातिथि लिखता है कि ऋग्वेद १४०२ में नियोग का उल्लेख है[8]।

गौतम धर्मसूत्र-नियोग की कुछ मर्यादायें स्थापित करता है, उनके नियमों का वर्णन करता है, और देवर के अभाव में सपिण्ड, सगोत्र, समानप्रवर या सवर्ण से सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा देता है[9]।

---

१. वशिष्ठसूत्र १४
२. गौतमसूत्र ३२
३. बौधायन १७
४. आपस्तम्ब २।१०।२७
५. आपस्तम्भ २।१७।२७
६. मनु० अ० ६, श्लोक ६४
७. मनु० अ० ६, श्लोक ६६-६८
८. मानव ६-६६ (मेधातिथि भाष्य)
९. गौतम धर्मसूत्र १८-४-१४

यह क्षेत्रज पुत्र को भी पिता के रिक्थ का भागी बताता है[1]।

लगभग इन्हीं नियमों का समर्थन बौधायन और हारीत सूत्रों, मानव धर्मसूत्रों, भृगु तथा नारदसंहिता और याज्ञवल्क्य, वैष्णु आदि में है।

पुराणों में और महाभारत में नियुक्त पुरुषों से सन्तान उत्पन्न करने के अनगिनत उदाहरण हैं। महाभारत में लिखा है कि जब परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को निष्क्षत्रिय किया और इसके उपरान्त वे महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने चले गये तब क्षत्रियकुल की स्त्रियों ने ब्राह्मणों के पास आ आकर उनसे अपने में पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना की और व्रतधारी ब्राह्मणों ने उसे स्वीकार किया। इस प्रकार क्षत्रिय जाति की वृद्धि हुई[2]।

शान्तनु की रानी सत्यवती का वह उपाख्यान महत्त्वपूर्ण है जब उन्होंने भीष्म से भाइयों की पत्नियों में पुत्र उत्पन्न करने का अनुरोध किया था और भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा के कारण स्वीकार न कर दीर्घतमा ऋषि का उदाहरण देकर किसी वेदपाठी ब्राह्मण को नियुक्त करने की सम्मति दी थी[3] और भीष्म ने व्यास को अपने भाई की पत्नियों में नियुक्त किया था[4]।

पाण्डु ने माद्री और कुन्ती को अत्यन्त उत्साहपूर्ण शब्दों में किसी पुरुष को नियुक्त करने के लिये उत्तेजित किया था[5]। शरद्दण्ड की रानी पुत्र उत्पन्न करने के निमित्त ऋतुस्नान करके किसी पुरुष की प्रतीक्षा

---

१. गौतम २८-३४

२. महाभारत आदिपर्व अ० ६४

३. महाभारत आदिपर्व अ० १०४

४. महाभारत आदिपर्व अ० १०७

५. महाभारत आदिपर्व अ० १२१

में चौराहे पर आ खड़ी हुई थी[1] और महात्मा दीर्घतमा ऋषि ने तो यह पेशा ही स्वीकार कर लिया था और वे इस काम के लिये भी चौराहे पर खड़े रहते थे[2]।

इन उदाहरणों से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह प्राचीन परिपाटी मनुष्य-संख्या बढ़ाने पर और वैवाहिक प्रथायें प्रचलित होने पर निन्द्य समझी जाने लगीं और फिर बन्द कर दी गईं। उसके बाद पातिव्रत्य के माहात्म्य को बड़े जोर-शोर से प्रचारित करके इस नियोग की पद्धति को स्त्रियों और सर्वसाधारण की दृष्टि में दूषित बना दिया गया।

मनु ने इस विषय पर बहुत विवाद किया है और वह यद्यपि इसे स्वीकार तो नहीं करता परन्तु त्याज्य और निन्दनीय बतलाता है[3]। कौटिलीय अर्थ शास्त्र[4] में तथा आदिपुराण[5] में इसके विरोध में बहुत कुछ कहा गया है। आधुनिक आचार्यों में केवल स्वामी दयानन्द[6] ने नियोग की प्रथा को विहित कहा परन्तु आज तक आर्यसमाज के किसी पुरुष ने उस पर अमल नहीं किया।

यह एक अत्यन्त गम्भीर विषय है जिस पर हमें विचार करना चाहिये। हमारे पास इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि उत्क्रान्ति के

मुक्त-सहवास

मानव-समाज के इतिहास में एक समय ऐसा था जब कि विवाह-बन्धन न था और स्त्री पुरुष इसी भांति परस्पर मुक्त-सहवास करते थे

---

१. महा० आदिपर्व अ० १२१

२. महा० आदिपर्व अ० १०५

३. मनु० ९-६४,६८ और १०-५६,१६

४. कौटिलीय—१६४

५. आदिपुराण १–११

६. सत्यार्थप्रकाश—चतुर्थ समुल्लास

जैसे कि आज पशु करते हैं और वे इसके लिये किसी प्रकार की लज्जा की भावना भी मन में नहीं लाते थे। निस्सन्देह यह विश्व के मानवों के आदिपुरुषों का जीवन था, तब कदाचित् गुप्तेन्द्रियों को छिपाया नहीं जाता था और सम्भवतः सहवास-कार्य गोपनीय नहीं माना जाता था। उस काल में मनुष्य को सामाजिक रूप का विकास नहीं हुआ था। आखेट, आहार, कृषि और पशुपालन तक ही उनके सामाजिक जीवन का विकास था।

ऋग्वेद, जो आर्यों की अतिप्राचीन पुस्तक है और आर्यों की आरम्भिक सभ्यता का जिसमें प्रदर्शन है, मानव-समाज के बहुत संस्कृत और परिष्कृत काल का उदाहरण हमारे सामने उपस्थित करता है। वह आर्यों की सभ्यता की, जो उस युग में अन्य मानव जिनसे अधिक और शीघ्र विकसित हो गये थे तथा तत्कालीन आर्यों की प्रतिस्पर्द्धी जातियों के सम्बन्ध में भी सभ्यता की साक्षी देता है।

ऋग्वेद को पढ़ कर हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि समाज के नियन्त्रक व्यक्तियों के समक्ष स्त्री-पुरुष मुक्त-सहवास कर सन्तान उत्पन्न कर सकते थे और एक दूसरे के प्रति आजीवन अनुबन्धित रहना उनके लिए आवश्यक न था। उस काल में पुत्र माता की ही सम्पत्ति होता था पिता की नहीं। इसका उत्कृष्ट उदाहरण छान्दोग्योपनिषद्[१] में प्राप्त है जो सत्यकाम जाबाल के उपाख्यान के रूप में है।

ऐतरेय ब्राह्मण[२] में हम इलुषा दासी के विद्वान् पुत्र कावष को—जो ऋषि था, देवताओं को जानता था और देवता उसे जानते थे—अपमानित होकर यज्ञ से निकाला हुआ पाते हैं। यह उदाहरण ब्राह्मण ग्रथ और उपनिषद् की सामाजिक स्थिति का अन्तर प्रकट करता है परन्तु

१. छान्दोग्योपनिषद् ८--४

२. ऐतरेय ब्राह्मण २--१६

मुक्त-सहवास को स्पष्ट करता है जिसकी विस्तृत व्याख्या महाभारत[1] में देखी जा सकती है। श्वेतकेतु उद्दालक का उदाहरण भी इसी प्रकार का है, जिसका वर्णन महाभारत में देखा जा सकता है। कल्माषपाद राजा की रानी मदयन्ती से अश्मक की उत्पत्ति सवर्णा स्त्रियों के मुक्त-सहवास पर काफी प्रकाश डालती है। इस उदाहरण में मुख्य बात यह है कि ऐन्द्रिय वासना मुख्य है और सन्तानकामना गौण। पीछे सन्तान-कामना का महत्व बढ़ा, तब सवर्णा स्त्रियों में तो नियोग ही रह गया, परन्तु दासियों में मुक्त-सहवास बिना किसी प्रतिबन्ध के आर्यों में समृद्ध होता गया। ये दासियां मोल ख़रीदी जाती थीं और दान भी दी जाती थीं। क्षत्रियों और ब्राह्मणों के घरों में इनकी भारी भरमार हो गई थी। देखिये छान्दोग्योपनिषद्[2], शतपथ ब्राह्मण[3], तैत्तरीयोपनिषद्[4], ऐतरेय ब्राह्मण[5], महाभारत[6], रामायण और पुराणादि।

उत्तरकाल में जब कि विवाह-मर्यादा का विकास हो गया, मुक्त-सहवास का सम्पूर्ण उन्मुक्त और अनुबन्धन रहित प्रकार जो समाज के नियन्ताओं ने विकसित किया वह वेश्यावृत्ति थी। ये वेश्याएँ समाज में एक प्रतिष्ठा और अधिकार रखती थीं और वे विवाहिता और अविवाहिता स्त्रियों की प्रतिष्ठित सहचरी गिनी जाती थीं। वे समाज का एक

---

१. महा भा० आदि पर्व अ० १२२

२. छान्दो० उ० ५-१३-१७-१९-७-२४

३. शतपथ० ३-२-४८

४. तैत्त० उ० १-५-१२

५. ऐत० ८-२२

६. महाभारत

अंग थीं। ऋग्वेद[1], यजुर्वेद[2] और शतपथ[3] में ऐसी स्त्रियों की चर्चा है।

ब्राह्मण ग्रन्थों[8] में अप्सराओं का वर्णन है जो वास्तव में देवगणों की उन्मुक्त सहवासिनी थीं। उनमें से कुछ वेदव्याख्यत्रायें थीं।

रामायण से पता लगता है कि जब भरत राम को लौटाने के लिए जाते हुए भरद्वाज के आश्रम मे पहुँचे तो भरद्वाज ने अनेक सुन्दरी वेश्यायें अयोध्यावासियो के मनोरंजन के लिए मंगवाई थी। जिनके रूप से विमोहित होकर भरत के साथी अयोध्यावासी कहने लगे थे कि भाई अयोध्या में क्या रखा है और दण्डक जाकर हम क्या करेंगे भरत और राम प्रसन्न रहें हम तो यहीं मजे मे हैं। स्कन्दपुराण में भी वेश्याओं को अप्सरा कहा है। याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षराकार ने भी उनकी चर्चा की है। इन अप्सराओं की मुक्त-सहवास से उत्पन्न सन्तान राजर्षियों ले विवाही गई है। पुराणों और महाभारत- में ऐसे अनेक उदाहरण है। ऐसी ही एक अप्सरा की मुक्त-सहवास से उत्पन्न कन्या शकुन्तला थी। यह स्त्री दया और लज्जा को तिलांजलि देकर नव-शिशु शकुन्तला को कण्व के आश्रम में छोड जाती है, यही नहीं, एक दूसरे अवसर पर भी यह स्त्री वैसी ही विरक्ति अपनी सन्तान के लिए दिखाती है जब कि वह गन्धर्व विश्वावसु के वीर्य से उत्पन्न अपनी कन्या को स्थूलकेश ऋषि के आश्रम में छोड जाती है जहां वह पलकर 'प्रमद्वरा' नाम को धारण करती है[4]।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में ६४ कलाओं में प्रवीण वेश्याओं को पसंद किया है। कुलार्णवतंत्र और गुह्यसाधनतन्त्र तथा बौद्ध-ग्रन्थों

---

१. ऋग्वेद मं० १ सूक्त ९२ मं० ४

२. यजु० अ० ३०

३. शतपथ २–४–६

में वेश्याओं की बड़ी भारी महिमा गाई है। श्रीपति ने बुद्ध के महलों का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहां गाने वाली ऐसी वेश्यायें रहती थीं जिनके नेत्र खिले कमल के समान थे, कटि क्षीण थी, नितम्ब भारी थे और वे रूपगर्विता थीं। जब बुद्ध वैरागी हो उदास रहने लगे तब उनके मनोरंजन के लिए उनके पिता ने देश-देशान्तरों की सुन्दरी वेश्यायें भेजी थीं। जैन ग्रंथों और संस्कृत-साहित्य में भी वेश्याओं की बड़ी भारी चर्चा है। भास का दरिद्र चारुदत्त और शूद्रक का मृच्छकटिक तो वेश्याओं के सम्मान में एक अच्छी दृष्टि डालता ही है। कालीदास के मेघदूत में, माघ के शिशुपालवध में और विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में वेश्याओं का सादर उल्लेख किया गया है।

स्कन्द-पुराण के ब्राह्मण-खण्ड में उज्जैन की एक प्रसिद्ध वेश्या पिंगला का वर्णन है जिसका प्रेमी मन्दर नाम का ब्राह्मण था। स्कन्द-पुराण में कलावती का खूब बढ़ा चढ़ा वर्णन है और राजतरंगिणी में पौण्ड्रवर्द्धन नगर की वेश्या कमला का जिसका प्रेम काश्मीर महाराज जयापीड के साथ था। राजतरंगिणी में हंसी और नागलता नामक दो डोम की लड़कियों का वर्णन है जिन पर काश्मीर का राजा चन्द्रवर्मा मोहित था। जिसके महल में वे रानियों से ऊंचे सिंहासन पर बैठती थीं। कथासरित्सागर में दक्षिण भारत की राजधानी प्रतिष्ठान की वेश्या मदनमाल का उल्लेख है कि उसका घर राजप्रसाद की स्पर्द्धा करता था, इसके पास रक्षक सिपाही, घोड़े और हाथी थे। इसने प्रतापी विक्रमादित्य का सत्कार स्नान, पुष्प, सुगन्ध, वस्त्र, वस्त्राभूषण और भोजन से किया था[1]।

इसी ग्रन्थ[2] में उज्जयिनी की वेश्या देवदत्ता की कथा है जो राजा के योग्य महल में रहती थी।

---

१. कथासरित्सागर अ० ३८

२. कथासरित्सागर अ० २४

कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] से पता लगता है कि मौर्य साम्राज्य में वेश्यावृत्ति विशुद्ध पद्धति पर राज्य की देख-रेख में होती थी और इस के लिए अलग एक सरकारी विभाग था।

कृष्ण और गोपियों की रासलीलाओं से सम्बन्धित वासनामय मैथोत्सव जिनमें चीरहरण से लेकर प्रेम और सहवास के सब सञ्चारी और असचारी भाव उपस्थित हैं और जिनका नग्न और ओजस्वी वर्णन गीतगोविन्द में है, मुक्त-सहवास-सम्बन्धी हमारी विचारधारा को बहुत गम्भीर कर देता था। हम निस्सन्देह इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि स्त्री-पुरुषों की नैसर्गिक प्रवृत्ति के लिए प्रारम्भ में समाज ने कोई मर्यादा नहीं बनाई और बहुत काल तक मनुष्य पशुओं की भांति स्वच्छन्द स्वाभाविक उद्वेगों को शमन करते रहे, बाद में समाज और सभ्यता ने व्यवहार-शास्त्र और नीतियों का प्रचार किया और अन्ततः कठिन धर्माचरणों और रूढ़ियों ने समाज को संयम-पाश में बांध दिया।

यहां हम 'कन्या' शब्द की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हैं। हिन्दू धर्मशास्त्र "संभोग हो गया हो परन्तु विधिवत् विवाह न हुआ हो तो भी उसे कन्या ही कहेंगे?" पाणिनि के ४-१-११६वें सूत्र की व्याख्या में काशिकाकार कहते हैं कि जिस कन्या का विवाह-संस्कार नहीं हुआ वह कन्या ही है। वह परपुरुष से भोगी जाने पर भी वह कन्यात्व से नहीं पृथक् होती। विवाह होने के बाद संग होने पर कन्यात्व छूटता है। मनु के भाष्यकार कुल्लूकभट्ट भी यही कहते हैं कि विवाह असम्भव होने के कारण कन्या शब्द स्त्रीमात्र के लिये है। परन्तु बहुधा भावना के तौर पर विवाहिता स्त्रियां भी कन्या कह कर मानी गई हैं। इन सब

---

1. कौ० अ० अधिकरण २, अ० २७, प्रकरण ४४

उद्धरणों से हम इस परिणाम पर पहुचते हैं कि कन्या का यह दूषण प्रारम्भ में दूषण नहीं माना जाता था, पीछे उस पर प्रतिबन्ध और कड़ाइयां होने लगीं।

आर्यों ने द्रविड़ और कोलों को दास कहा है। कोल उत्तर-पूर्व में और द्रविड़ दक्षिण में बसते थे। ऋग्वेद में द्रविडों को यातुधान या राक्षस भी कहा गया है।

दास

इन दोनों जातियों के स्त्री-पुरुषों को युद्धबन्दी बना कर पहले-पहल सेवा-कार्य में लिया गया। पीछे युवती स्त्रियों से सहवास करके उन्हें सम्पत्ति के तौर पर बेंचा। और जब इन स्त्रियों में संतति हुई तो उसे यथार्थ मे दास-दासी समझा गया और उनमें अवैध सन्तान उत्पन्न की गई। चूँकि उनके यहां विवाह का नियम ही न था। अतः उन्हें इसमें अधिक असुविधा नहीं हुई। हरिश्चन्द्र राजा की प्रसिद्ध कथा में राजा ऋषि का काल्पनिक ऋण चुकाने के लिए अपने आपको और अपनी पत्नी को काशी के बाज़ार में बेचता दिखाई देता है; परन्तु दास बेचने का सब से कुत्सित उदाहरण तो हमें यजुर्वेद के शुनःशेप की कथा में मिलता है। जहां वरुण को बलि देने के लिए एक ब्राह्मण अपने पुत्र को सौ गायों के बदले बेच डालता है तथा सौ और लेकर उसका वध करने को भी उद्यत हो जाता है [1]।

दास के सम्बन्ध में मनु कहता है कि वह चाहे मोल खरीदा गया हो या न खरीदा गया हो, उससे सेवा ही लेनी चाहिए। दास को यदि स्वामी ने छोड भी दिया हो तो भी वह नहीं छूटता, क्योंकि वह उसका स्वाभाविक धर्म है, उससे उसे कोई छुडा नहीं सकता। [2] वह दास के सात प्रकार बताता है—(१) युद्ध में जीता हुआ (२) स्वयं दास

१. शुनःशेप ३० यजु०।
२. मनु अ० ८ श्लो० ४१४

(३) दासीपुत्र (४) मोल खरीदा हुआ (५) दान में दिया परम्परा से चला आता हुआ (७) जिसने दण्ड के लिये स्वीकार किया हो।[१] कौटिल्य के अर्थशास्त्र से दासों के पता चलता है, पर ग्रीक राजदूत उनका अभाव ब ऋग्वेद में सुदास ने पत्थर के सौ किलो को तोड कर तीस ह को मारा था। वे दास वास्तव मे आर्यों के प्रबल शत्रु थे, ज बन्दी बना कर जब सेवा-कार्य में लगाया गया तब उनका पड़ा और उनकी स्त्रियों को दासी माना गया; जो आर्यों की स्वीकृत हुईं। इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि नीच कुल की मोल ली जाकर बिना ही विवाह किये दासी बना ली जाती जिनका स्वागत-सत्कार उनके रूप-गुण और शिक्षा के अनुसार था। इन दासियों में बिना ही प्रतिबन्ध के सहवास होता था दासियाँ ख़रीदी भी जाती थीं और दान भी दी जाती थीं। च और ब्राह्मणों के घरों में दासियों की भरमार हो गई थी। उप और ब्राह्मण ग्रन्थों से यह हम सहज ही जान सकते हैं।[२] एक ने दस हज़ार हाथियों और दस हज़ार दासियों का दान किया था जो आभूषणों से सुसज्जिता थीं; और दशों दिशाओं से लाई गई थीं।[३] महाभारत, रामायण और पुराणों में दासियों के खूब बढ़े चढ़े वर्णन हैं। भारत के बड़े-बड़े नगरों के सब बाज़ारों में दूर २ के दासविक्रेता देश-देशान्तर के दासों को बेचने लाते थे।

---

१. मनु० अ० ८ श्लो. ४१५

२. बृहदारण्यक उप० ५। १३। १७। १६। ७। २४

शतपथ ब्राह्मण ३। २। ४८।

तैत्तिरीयोपनिषद्

शम्बर असुर और उसकी पुरी का उल्लेख यहां सर्वथा काल्पनिक अवश्य है परन्तु यह सत्य है कि उस काल में इस प्रदेश में कुछ जंगली अनार्य राजा थे। तथा कुछ सभ्य अनार्य राजा भी थे। उनमें से अनेकों का रक्त आर्यों से मिल चुका था और वे उनकी सभ्यता में परिचित हो चुके थे। शवर नाम तांत्रिक ग्रन्थों में आया है, और वह एक मायावी असुर था--"या माया शम्बरस्य च" दुर्गा में भी महिषासुर का वर्णन है। श्रीकृष्णचरित्र एवं महाभारत में असुरों और राक्षसों का वर्णन ऐसा है कि वे सर्वथा पृथक् न थे। विवाह, विनोद और युद्ध में उनसे सहयोग होता था।

असुर और मनुष्येतर जातियाँ

[1]पुराणों में दानव और दैत्यों के राजवंश की जो सूची दी गई है उसके अनुसार कश्यप ऋषि की स्त्री दिति की संतति 'दैत्य' जाति है। तथा दूसरी स्त्री दनु की संतति 'दानव' है।

इन जातियों में हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बलि, बाण, शंबर, वृषपर्वा, पुलोमा, रावण आदि नाम प्रसिद्ध हैं। यह एक मार्के की बात है कि पत्नी अपने नाम पर एक पृथक् वंश स्थापित करती है। रावण लोकपालों से बढ़ कर शक्तिशाली और पुलस्त्य ऋषि के कुल का था। माल्यवान्, महोदर, मेघनाद, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर, मकराक्ष उसके सम्बन्धी प्रसिद्ध राक्षस थे। राम-काल में मथुरा का राजा लवणासुर था जिससे शत्रुघ्न ने युद्ध किया था। यह असुर यादव नरेश भीमसात्वत की ओर से मथुरा के प्रबन्ध पर नियुक्त था। वह नरभक्षी था। उसे मार कर शत्रुघ्न ने बारह वर्ष मथुरा पर राज्य किया था।[2] पांचालराज दिवोदास ने प्रसिद्ध तिमिध्वज शम्बर के सौ दुर्ग जय किये थे, और

---

१. विष्णुपुराण

२. अग्नि-११,१-८

उसके भतीजे सुदास ने प्रबल प्रतापी असुर वर्चिन को
उत्तरी आसाम का राजा बाणासुर था। जिसकी राजधानी
थी। यह नरकासुर का मित्र था, इसकी सुन्दरी पुत्री ऊषा कृ
अनिरुद्ध को ब्याही थी। इसका मन्त्री कुम्भाण्ड असुर था।
ने बाण को पराजित कर राजा बनाया था।[२] नरकासुर
राजा था। इसी का पुत्र भगदत्त अतिरथी था जिसने मह।
युद्ध किया था। यह असुर ब्राह्मण था, परन्तु उसकी सेना
योद्धा थे।[३]

गन्धर्व देवों की उपजाति थी और सम्भवतः हि
अंचल में रहती थी। इनका सबसे अधिक सजीव वर्णन और
से सामाजिक सम्बन्ध की कथाएं कथासरित्सागर में भरी पड़ी
केकय देश के राजा भरत के मामा आनव युधाजित को मार कर
नरेश गन्धर्वों ने उसका राज्य छीन लिया था, उन्हें भरत ने मार
मामा के राज्य का उद्धार किया था[४]।

नागों का राज्य तक्षशिला में था। कुछ दिन मथुरा पर भी
ने राज्य किया। तक्षशिला का नाग राजा तक्षक था जिसका परीक्षित
युद्ध हुआ था; और उसमें परीक्षित मारे गये थे। परीक्षित के
सम्राट् जनमेजय एक प्रतापी राजा थे, जिन्होंने नागों को निर्वं
किया। वासुकी, कुलज, नीलरक्त, कौणप, पिच्छल, शल, चक्रपाल,
हलीमक, कालवेग, प्रकालग्न, सुशरण, हिरण्यबाहु, कक्षक, कालदन्तक,
तक्षकपुत्र शिशुरोम, महाहनु आदि अनेक नाग सरदारों को सम्राट् जनमेजय
ने जीता जला दिया था[५]। पीछे नागराज वासुकी के भागनेय आस्तीक ने

---

१. ऋग्वेद (मं० ७)
२. हरिवंश पु०
३. महा० उद्यो० २१, १००८।
४. रघुवंश XV ८८-९

बड़े अनुनय विनय से सम्राट् से नागों की सन्धि कराई थी। मथुरा पर नागों की सात पीढ़ियों ने राज्य किया[1], तथा काश्मीर पर भी उनका राज्य था। मसीह से पूर्व छठी शताब्दी में—जिस युग का वर्णन हमारे उपन्यास में है—विदिशा के नागराज शेष का पुत्र पुरञ्जय भोगी एक प्रतापी राजा था। इसके वंशधर रामचन्द्र, चन्द्रांशु नृखवंत, धन-धर्मण, वंगर और भूतनद प्रसिद्ध नागराजा हुए[2]।

श्रमण-सम्प्रदाय ब्राह्मणों का विरोधी सम्प्रदाय था। इनमें जैन और बौद्ध दो सम्प्रदाय प्रमुख थे, जिनके शास्ता महावीर और बुद्ध थे। जो इस काल में एक ही प्रदेश में दीर्घ काल तक

श्रमण-सम्प्रदाय

विचरण करते रहे। हमारा यह उपन्यास इन दोनों महाश्रमणों के जीवन काल की, और उसी क्षेत्र की—जिस में ये दोनों महाश्रमण विचरण करके अपना प्रभाव प्रसार करते रहे हैं—विहङ्गम दृष्टि डालता है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रमणों की इन दोनों प्रधान शाखाओं के सिवा और भी कुछ शाखायें थीं, जिनमें आजीवक और सांख्य शाखाओं का उल्लेख वैदिक सम्प्रदाय की विरोधिनी शाखाओं के रूप में किया जा सकता है। पीछे ये शाखायें बहुत हद तक वैदिक सम्प्रदाय में घुल मिल गईं। ऐसा मालूम होता है कि लगभग ब्राह्मण काल में पुराने वैष्णव और शैव आगम भी वेद और आर्यों के विरोधी थे, जिस प्रकार कि सांख्य-सम्प्रदाय था, परन्तु आगे चल कर वे भी वैदिक सम्प्रदाय में घुल मिल गए। केवल जैन और बौद्ध ही ऐसे सम्प्रदाय रह गए, जो अन्ततः ब्राह्मण धर्म और वेदों के विरोधी रहे। श्रमण सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे न तो अपौरुषेय अनादि रूप से या ईश्वर रचित रूप से वेदों का

---

१. वायु और ब्रह्माण्ड पुराण

२. वायुपुराण

प्रामाण्य ही मानते थे, न ब्राह्मणवर्ग का जातीय या पु
गुरुपद स्वीकार करते थे। जैसा कि वैदिक सम्प्रदाय स्वं क
श्रमण-सम्प्रदाय की सभी शाखा प्रतिशाखाओं में श्रमण, ।
गार, यति, साधु, तपस्वी, परिव्राजक, अर्हंत, जिन, तीर्थङ्कर अ
से जिन्हें पुकारा जाता था, उन्हीं में से योग्यतम व्यक्ति
स्वीकार करते थे।

बहुधा बुद्ध और महावीर चूँकि इन दोनों की प्रवृत्ति का
ही रहा, दोनों के अनुयायी एक दूसरे को अमित्र भाव से
स्पर्धा भाव से मानते जानते रहे और मुख्य बात यह रही कि
और ब्राह्मणधर्मी भी परस्पर ऐसे पड़ोसी या कुटुम्बी रहे जिनका
जिक सम्बन्ध बहुत निकट था।

बुद्ध और महावीर में एक अन्तर यह है कि बुद्ध ने दूसरे
समकालीन या पूर्वकालीन मत का समन्वय नहीं किया। जब
महावीर ने तथाकथित पूर्वकालीन पार्श्वापत्यकों के परिवर्तनों
समन्वय किया है[१]।

बुद्ध ने ८० वर्ष के होकर शरीर त्यागा जब कि महावीर ७२
के होकर मरे; परंतु बुद्ध की मृत्यु पहले हुई, महावीर की पीछे।

बुद्ध और महावीर इन दोनों महापुरुषों ने आर्यों से उत्पन्न सं
परम्परा में जन्म लेकर आर्यों की वैदिक संस्कृति के विपरीत जो
संस्कृति की स्थापना की वह बड़ी विचित्र और

श्रमण-संस्कृति

बहुत बलशालिनी प्रमाणित हुई। इस श्रमण-
संस्कृति की विशेषता यह थी कि उसमें
'देवताओं' और 'ईश्वर' का कोई स्थान न था। उसमें एक सामान्य व्यक्ति
विकसित होकर 'देवताओं' से भी पूजित हो जाता है। व
आर्य-संस्कृति में जहां ...

वे 'पूजक' हो गये। सम्भव है श्रमण-संस्कृति के प्रभाव से ही उत्तर-कालीन हिन्दू आर्य-संस्कृति में देवताओं के स्थान पर राम और कृष्ण जैसे मनुष्य-पूजन प्रारम्भ हुआ, परन्तु वैदिक आर्य-संस्कृति के प्रभाव से उन्हें मनुष्य न रहने देकर ईश्वर अवतार की कल्पना करली गई। श्रमण-संस्कृति का मन्तव्य था ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा आत्म-विकास की पराकाष्ठा तक पहुंचना। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमण-सम्प्रदाय ने अपने युग मे कोटि २ जनपद को भीतरी और बाहरी बन्धनों से मुक्त कर दिया। जिस काल में श्रमण-संस्कृति के उद्गाता बुद्ध और महावीर ने अपना कार्य प्रारम्भ किया, उस समय धार्मिक अनुष्ठानों को ब्राह्मणों ने अपने हाथ में लिया हुआ था। ये अनुष्ठान अत्यन्त जटिल और बहु साधन-साध्य थे और उनमें ब्राह्मणों की मध्यस्थता अनिवार्य थी। मनुष्य जाति की समानता और एकता के सिद्धान्त नष्ट हो चुके थे, और सम्पूर्ण जनपद के दश-प्रतिशत उच्चवर्णी पुरुष ६० प्रतिशत जन-साधारण तथा अपनी स्त्रियों की भी सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक स्वाधीनता को अपहरण किये बैठे थे।

आर्यों के धार्मिक साधनों का प्रमुख अनुष्ठान यज्ञ था। यह यज्ञ निरर्थक थकाने वाले, जटिल प्रक्रियाओं से परिपूर्ण और भयंकर खर्चीले तथा वर्षों तक चलने वाले होते थे और इन सबका लाभ यजमान के लिये उधारखाते और ब्राह्मणो के लिए नकद धर्म था। अर्थात् इन यज्ञों से यजमान को मृत्यु के बाद स्वर्ग सुख परन्तु ब्राह्मणो को छकड़ा भरी दक्षिणा, स्वर्ण, रत्न, गाय, बैल, दास, दासी एवं अनेकों प्रकार के सुख-साधन मिलते थे। यद्यपि इन यज्ञो का और यज्ञ के देवताओं का विरोध आरण्यको और उपनिषदों के द्वारा प्रारम्भ हो चुका था, परन्तु वह ब्राह्मणों का जुआ कंधे से उतार फेंकने और प्रजा पर अपनी राज-सत्ता और भोग-सामर्थ्य को अक्षुण्ण रखने मात्र का षडयन्त्र था। इसलिये जो सफलता श्रमण-संस्कृति को मिली वह उनको नहीं। इनमें यद्यपि

बुद्ध ने भी काफी कठिन तपस्या की परन्तु सबसे अधिक हमको महावीर के जीवन में मिलती है। उन्होंने गृह-त्याग नहीं स्वीकार किया। कठोर सर्दी, गर्मी, डांस, मच्छर और धू का परिताप समभव से सहन किया। कभी घर को नहीं ७५ वर्ष के तपश्चरण में उन्होने सब मिलाकर तीन सौ पचास दिन भोजन नहीं किया।

बुद्ध केवल एक तपस्वी और धर्मोपदेष्टा ही न थे, वे अतिजागरूक, प्रबन्धक, भूतदया से ओत-पोत और महान् ह वाले महापुरुष थे। उन्होंने भिक्षु-संघ को इस प्रकार अनुशासि व्यवस्थित किया जैसे कोई सम्राट् साम्राज्य को करे।

सबसे बड़ा भारी प्रभाव जो भारतीय संस्कृति पर इन दोन। पुरुषों का पड़ा वह यह था कि पशुवध द्वारा किये जाने वाले यज्ञ भारतवर्ष से नामशेष हो गया। पुष्यमित्र जैसे कट्टर हिन्दू र.ज उन्हें पुनरुज्जीवित करना चाहा, परन्तु सफलता नहीं मिली।

आर्यों की राजसत्ताएं तो प्रथम ही छिन गई थीं इन दोनो श्रमणों ने उनकी धर्मसत्ता भी छीन ली इस प्रकार आर्यों के हाथ रहा सहा धर्म-साम्राज्य भी जाता रहा।

बौद्ध संघ एक ऐसा संगठित संघ था जो शीघ्र ही सम्पूर्ण एशिया फैल गया था प्रत्येक स्त्री पुरुष बिना जात-पांत के भेद के इस संघ में सम्मिलित हो सकता था। बुद्ध से प्रथम आर्य जन शूद्रों को वानप्रस्थ या परिव्राजक नहीं होने देते थे। संघ में आने पर कहा जाता था कि उसने 'पब्बज्जा (प्रव्रज्या) ग्रहण की। उस समय जो संस्कार किया जाता था उसे 'उपसम्पदा' कहते थे। उपसम्पदा-प्राप्त स्त्री पुरुष ि ा भिक्षुणी कहाते थे। तथा संघ के अ

बौद्ध-संघ

स्त्री पुरुष उ

बैठ 'बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि' यह त्रिवाक्य बोलता था। जिस उपाध्याय से उपसम्पदा ग्रहण की जाती थी उसका दर्जा बहुत बड़ा होता था। १० वर्ष तक भिक्षु जीवन व्यतीत करके ही योग्य और विद्वान् भिक्षु अपने अन्तेवासी को उपसम्पदा दे सकते थे। उपाध्याय अपनी इच्छा से नहीं, संघ की स्वीकृति से उसे उपसम्पदा देता था। उस समय उससे संघ अनेक प्रश्न पूछता तथा प्रतिज्ञा कराता था। तब उसे योग्य समझ उपसम्पदा लेने की अनुमति दी जाती थी। बीस वर्ष के कम आयु के भिक्षु को उपसम्पदा नहीं मिल सकती थी। इससे कम आयु के भिक्षु केवल प्रव्रज्या ग्रहण कर 'सामणेर' कहलाते थे। उन्हें १० शीलों का पालन करना पड़ता था। इनके उल्लंघन करने से वह दण्डनीय होता था। संघ में भिक्षु जीवन कैसा रहे इसका विस्तृत वर्णन विनयपिटक के 'महावग्ग' में विस्तार से लिखा है।

भिक्षुओं को तीन वस्त्र पहनने की आज्ञा थी—जो त्रिचीवर कहाते थे। १ अतर्वासक, २ उत्तरासंग, ३ संघाटी। अन्तर्वासक नीचे का वस्त्र कमर से लटका रहता था। उत्तरासंघ ऊपर का वस्त्र था। उससे एक कंधा, छाती और दोनों जाँघें ढकी रहती थीं, सघाटी छाती और दोनों कन्धों पर लिपटा रहता था। वह कमर में एक डोरी से बाँध लिया जाता था। उपासक गृहस्थ हर वर्षा ऋतु के बाद प्रत्येक संघ को वस्त्र वितरण करना बड़े पुण्य की बात समझते थे। इन तीन वस्त्रों के सिवा भिक्षु की सामग्री—एक भिक्षापात्र, एक मेखला, एक उस्तरा, एक सुई और एक छन्ना होती थी। साधारणतया भिक्षु १५ दिन में बाल मुंडाते थे। वर्षा ऋतु में वे एक स्थान पर वर्षावास करते थे। इसके लिए राजाओं तथा सेठियों ने बड़े २ विहार बनवा दिये थे। बुद्ध के जीवन-काल में तथा उसके बाद भी बुद्ध के शब्द और आज्ञाएं संघ के कानून थे। संघ का यह नियम बुद्ध-निर्वाण के बाद राजगृह की प्रथम बौद्ध

महासभा में निर्णीत हुआ था कि बुद्ध को छोड़ और ... नियम नहीं बना सकता दूसरे लोग उन नियमों की व्यवस्था ... है। संघ का प्रबन्ध बहुमत से होता था[1]। भिक्षुणियों का ... था पर वह भिक्षु संघ के अधीन था[2]।

'निगण्ठ' शब्द संस्कृत के निर्ग्रन्थ शब्द का अपभ्रंश है ... अभिप्राय है नंगा रहने वाला या जो वस्त्र में गांठ न ...

निगण्ठ

... पिटकों में स्थान २ पर "निगण्ठो ना... तथा "निगण्ठा एकसाटका:[4]" जैसे ... हैं। इन शब्दों का अभिप्राय महावी... प्रचलित जैन-परम्परा में नग्न रहने वाले साधुओं से था। यद्यपि उ... में दूसरी परम्परायें भी ऐसी थीं जिनमें साधु लोग नंगे ... महावीर ने प्रारम्भ में जब दीक्षा ली थी तो एक वस्त्र धारण ... था, पीछे अचेलत्व उन्होंने अपनी परम्परा में सम्मिलित ... महावीर स्वयं अपने अन्तिम जीवन में नग्न रहते थे, फिर भी ... व्यक्ति के लिए सर्वथा अचेलत्व शक्य न था। इस बात पर विचार ... उन्होंने अचेलत्व का आदर्श रखते हुए भी सचेलत्व का मर्यादि... विधान किया।

जो सामञ्जस्य अचेलत्व और सचेलत्व के बीच महावीर के द्वारा ... वह लगभग दो-अढाई सौ वर्ष तक साथ २ चलता रहा। पीछे जै... धर्म की दो शाखायें हो गईं जो दिगम्बर और श्वेताम्बर के नाम से प्रसिद्ध है।

---

१. महावग्ग ६।३, ६।४; चुल्लवग्ग ४-६। ४।१४।१७

२. चुल्लवग्ग

३. मज्झिम सुत्त ५६

४. अंगुत्तर० V० २

इस उपन्यास में महावीर स्वामी का जो उग्र तपस्वी रूप मूर्त किया गया है, उसको बहुत कुछ भांकी आचाराङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध में तथा अनुत्तरनिकाय आदि आगमों में स्पष्ट दीख पड़ता है[१]।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि बुद्ध ने बहुत स्थानों पर निर्ग्रन्थ तपस्याओं का प्रतिवाद किया है। उस प्रतिवाद का दृष्टिकोण यह है कि तप केवल कायक्लेश है, उससे दुःख सहन का तो अभ्यास बढ़ता है, किंतु कोई आध्यात्मिक सुख या चित्तशुद्धि नहीं प्राप्त होती। मार्के की बात एक यह है कि बुद्ध की प्रकृति परिवर्तनशील और तर्कशील रही। उन्होंने भी प्रारम्भ में देहदमन किया, परन्तु उसे छोड़ कर ध्यान-मार्ग नैतिक जीवन तथा प्रज्ञा पर ही पूरा भार डाला।

वैदिक यज्ञ और पशु-वध

जिस काल का चरित्र-चित्रण इस उपन्यास में है उस काल में भी आर्य ब्राह्मणों के हिंसक यज्ञ प्रचलित थे। यद्यपि उनका विरोध होने लगा था। बड़े २ राजा लोग जहां महाराज और सम्राट् की उपाधि धारण करने के लिये राजसूय और अश्वमेध यज्ञ करते थे, वहां श्रीमन्त प्रजावर्गीय जन अपने छोटे २ कार्यों और अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए छोटे २ यज्ञ करते थे। फिर भी अनेक मनस्वी जन यज्ञविरोधी आन्दोलन करते रहते थे। उपनिषदों[२] में; ऋग्वेद[३] में, गीता[४] में और श्रीमद्भागवत[५] में हम इन यज्ञों का विरोधी आभास पाते हैं।

---

१. भगवती २।१

२. मण्डूकोपनिषद् १--२००

३. ऋग् १०--२२--७

४. गीता २--४२, ४३, ४४

५. द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति। एष मा करुणो हन्यात् तज्ज्ञो हि सत्रशाध्नुवम्॥ श्रीमद्भागवत।

यज्ञों का और उनकी स्तुतियों का ऋग्वेद में बहु-
अस्पष्ट लेख है। कहीं २ तो यज्ञ की निंदासूचक श्रु।
"वे उस सृष्टिकर्त्ता को नहीं जानते, तुममें इनमें अन्तर है
ये आच्छन्न हैं। केवल उच्चारण करने से ही तृप्त होकर विच॰

इसमें सन्देह नहीं कि यज्ञों का बाहुल्य यजुर्वेद
हुआ है, जो कि मसीह से पूर्व १५ सौ वर्ष के लगभग है। ॰
शतपथ ब्राह्मण को पढ़ने से पता लगता है कि यजुर्वेद के
आर्य जीवन में से वह सादगी और पवित्रता नष्ट हो चुकी ॰
काल में आधुनिक दिल्ली के आसपास के देश में प्रबल कुरु
उत्तरी प्रान्त में विदेहों का, अवध में कोसलों का, और ॰
निकट काशियों का राज्य था। इनमें जनक, अजातशत्रु, ॰
और परीक्षित प्रतापी राजा थे। इन्हीं लोगों ने यज्ञ के ॰
इतना बढ़ा दिया था। यद्यपि जनक यज्ञविरोधी ब्रह्मवाद के
भारी प्रचारक थे। यह विचारणीय बात है कि जहां ऋग्वेद में
पंजाब की चर्चा है, उसके आगे के भारतवर्ष का कुछ भी समाचार
वहां ब्राह्मणों के काल में पंजाब बिलकुल भूला हुआ है। पंजा॰
किसी भी राजा का ब्राह्मणों में उल्लेख नहीं है।

यजुर्वेद जो यज्ञों का मूलस्तम्भ है, उसका नवीन संस्क॰
जनक के दरबारी विद्वान् याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने किया है। ऐ॰
मालूम होता है कि जब ब्राह्मण लोग क्रिया-संस्कारों को बढ़ाये ॰
चले जाते थे, और प्रत्येक क्रिया के लिए मनमाने कारण बताते रहते थे,
तब क्षत्रिय लोग—जिनके सम्मुख राजव्यवस्था की कठिन समस्यायें
थीं और जो अधिक विचारशील और अनुभवी हो गये थे—ब्राह्मणों
के इस थोथे पाण्डित्य-दर्प से ऊब ॰॰॰
आत्मा एवं ॰॰॰

शुरू कर दिया था। इन निरर्थक अग्निहोत्रों का ज्ञाल इतना विस्तृत हो गया था कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी वह याद न रहा और उसे जनक की फटकार खानी पड़ी[1]। कदाचित् इसी गड़बड़ा-ध्याय को मिटाने के लिए उसे शुक्ल-यजुर्वेद का एक नया संस्करण तैयार करना पड़ा और उसका स्वतन्त्र ब्राह्मण शतपथ-जो एक गधे का बोझ है, बनाने में अपना तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

इस उपन्यास में हमने केवल हठपूर्वक यज्ञ की एक झलक दिखाने की चेष्टा की है, जिससे पाठक उसके आडम्बरों और निरर्थक क्रिया-कलापों से अवगत हो जायँ।

हमने कहा कि बहुत प्राचीन काल में ही यज्ञों का विरोधी दल आर्यों में खड़ा हो गया था। इनमें उपनिषदों के सूत्रधार क्षत्रिय लोग तो थे ही, अन्य विरोधियों में सांख्य के निर्माता कपिल भी थे। गीता में यज्ञ के विरोध में कहा गया है-- 'हे पार्थ! वेदों के मन्त्रपाठ में भूले हुए और यह कहने वाले मूढ व्यक्ति-कि इसके सिवा और कुछ नहीं है-बात बढ़ा २ कर ऐसा कहते हैं कि भाँति २ के यज्ञ आदि कर्म करने से स्वर्ग और दूसरे जन्म में कर्म-फलभोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इसलिये हे अर्जुन! इन वेदों में त्रैगुण्य भरा पड़ा है, तू गुणा-तीत हो"[2]।

मांस-भक्षण

यहां पर अब हम एक बड़े महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषय को उठाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन काल में आर्य लोग मांसाहार करते थे और यज्ञों में पशुवध करना और मांस की आहुतियां देना प्रचलित था। ब्राह्मण ग्रन्थों में हम पाते हैं कि

---

१. शतपथ ब्रा० ११ प्र, ४, २। ११, ६, २।

२. गीता २-४२, ४३, ४४।

किसी राजा या प्रतिष्ठित महिमान का जब कभी आ॰
तो उसके लिये एक गाय मारी जाती थी[1]। आयु॰
में महिमान का नाम ही 'गोघ्न' है जिसका अर्थ होता है गा॰
वाला' या 'जिसके लिये गाय मारी जाय'। बहुत से कुलीन ि
गोत्र ही 'गोघ्न' है जिसे बिगाड़ कर 'गोग्ना' का नाम दिया
सम्भव है इस गोत्र वाले जब कभी ऐसे प्रतिष्ठित रहे हों ि
जाते रहे हों उनके लिये एक गाय मारी जाती रही हो। ऐ॰॰
के ब्राह्मण में यह ब्यौरे वार लिखा हुआ है कि छोटे २ यज्ञ ॰
देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार का पशु मारना चा॰

गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि यज्ञ में मारे हुए प
यज्ञ में नियुक्त पुरोहित किस प्रकार बांटें। उन्हें जीभ, गला,
नितम्ब, टांग इत्यादि मिलता था। यजमान पीठ का भाग पाता था
उसकी स्त्री को पेड़ू के भाग से सन्तोष करना पड़ता था[2]।

शतपथ ब्राह्मण में इस विषय में कई मनोहर आख्यायिकायें
एक विवाद इस विषय में है कि पुरोहित को बैल का मांस ख
चाहिये या गाय का। विवाद के अन्त में याज्ञवल्क्य कहते हैं—"य॰
वह नर्म और चिकना है तो मैं अवश्य खाऊँगा।"[3]

इसी ब्राह्मण में मनुष्य की बलि से लेकर घोड़ा, बैल, भेड़, बकरा,
चावल, जौ आदि से यज्ञ करने का वर्णन है[4]।

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद श्रौत सूत्र हैं जिनमें यज्ञ-सम्बन्धी बलिदानों
की विस्तारपूर्वक व्याख्या है।

---

१. ऐतरेय ब्राह्म॰ १-१५
२. गोपथ ब्रा॰ २। १८
३

शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणों में सोमयाग में अज, गो, अश्व आदि पशुओं का संज्ञपन-वध करके उनके मांस से यजन करने का विधान है। पारस्करगृह्यसूत्र में अष्टकाश्राद्ध[1] शूलगव[2] कर्म और अन्त्येष्टि संस्कार[3] का वर्णन है जहां गाय, बकरा जैसे पशुओं के मांस चर्बी आदि से क्रिया सम्पन्न करने का विधान है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध में सब प्रकार के पालतू और जंगली जानवरों की संख्या थलचर, जलचर, उड़ने वाले, तैरने वाले जानवरों को मिलाकर ६०६ से कम नहीं होनी चाहिये। इस मांसभक्षण का प्रभाव उपनिषदों तक में हुआ। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान्, विजयी और सब वेदों का ज्ञाता हो, वह बैल का मांस और चावल का पुलाव घी डाल कर पका कर खाये[4]।

ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीय ब्राह्मण में यज्ञ में किस प्रकार पशु को मारना चाहिये इसकी भी विधि लिखी है कि उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिये और तब उसके श्वास आदि प्राणवायु नाक, मुख आदि बन्द करके मारे[5]। उत्तररामचरित नाटक में लिखा है कि वाल्मीकि के आश्रम में जब वसिष्ठ जी गये तो उनके आतिथ्य के लिये एक वत्सतरी (बछिया) मारी गई। महाभारत काल में यद्यपि पशु-वध का विरोध होने लगा था फिर भी पाण्डवों ने जो अश्वमेध यज्ञ किया, उसमें सैंकड़ों पशु मारे गये[6]।

---

१. काण्ड ३, अ० ८-९
२. काण्ड ६ प्रपाठक ३
३. काण्ड ३, ४—८
४. बृहदारण्यक उपनिषद् अ० ८।४।८
५. ऐतरेय ब्रा० ६।७; तैत्तरीय ब्रा० ३।६।६
६. महाभारत अश्वमेध पर्व०, अ० ८८—३४

यज्ञ से अलग ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य महिमानों के
अनेक प्रकार का मांस पकाया जाता था। अश्वमेध यज्ञ
गार' तैयार करने में इतने आदमी लगे थे और इतने पशु
कि जिनका अन्त नहीं[१]। मय दानव ने जो सभागृह तैयार
उसमें प्रवेश करने के अवसर पर युधिष्ठिर ने १००० ब्राह्मणों को
कन्द-मूल और फल तथा वराहों और हरिणों के मांस, घी, शह
मिश्रित पदार्थ और तरह २ के मांसों से सन्तुष्ट किया गया था
लोग भी मांस खाते थे। इसका उदाहरण भी महाभारत में है[२]
मालूम होता है कि महाभारत काल में यज्ञ में गवालम्भन
बैल का मांस खाना वर्ज्य हो गया था और इस सम्बन्ध में
उद्योग श्लाघनीय था। परन्तु रन्तिदेव ने अपने यज्ञों में इतने गाय
मारे थे कि उनके चमड़े की ढेरी के पास बहने वाली नदी का
चर्मण्वती पड़ गया था। रन्तिदेव के रसोड़े में प्रतिदिन १०००० गौ
मारी जाती थीं, जिनसे ब्राह्मण भोजन होता था। एक दिन
समाप्त हो गया और रसोइयों ने ब्राह्मणों से कहा आज केवल भात
खा लो तो इस पर ब्राह्मण नाराज़ हो गये[३]। गोवध-निषेध पर
में एक सुन्दर उदाहरण है। प्रतीत होता है कि सबसे पहले चन्द्रवं
क्षत्रियों में गोवध-निषेध का प्रारम्भ हुआ। नहुष और ऋषियों के बीच
एक स्थान पर इसी विषय पर झगड़ा हुआ है[४]।

आगे चल कर इसी वंश के श्रीकृष्ण ने गोपूजन और गोवर्द्धन
का प्रचार किया। फिर भी गाय बैल को छोड़ कर दूसरे पशुओं का
मांस तो ब्राह्मण और क्षत्रिय खाते ही थे। महाभारत में भक्ष्याभक्ष्य

---

१. आश्व० पर्व० अ० ४१—७६

२. महा० कर्ण पर्व अ० ४१

३.

भांगों का वर्णन है[१]। श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों को विविध मांस खाने का विधान है। महाभारत में इस सम्बन्ध में विचार किया गया है[२]।

यज्ञ में[३] पशुवध के प्रकरण को लेकर इन्द्र और ऋषियों के साथ बड़ा मनोरंजक विवाद वर्णित है। इसी प्रकार वायुपुराण और महाभारत में भी है[४]। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत-काल में यज्ञ में पशु-वध करने के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई थी। अनुशासन पर्व[५] और अश्वमेधीय पर्व[६] इस सम्बन्ध में विशेष रूप से पठनीय हैं। श्रीमद्भागवत में यज्ञ में पशु मारने की कड़ी निंदा की गई है[७]।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में कलियुग में वर्ज्य वस्तुओं का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। आदित्यपुराण[८], बृहन्नारदीयस्मृति[९], वीरमित्रोदय[१०] तथा ब्रह्मपुराण[११] में अन्यान्य वस्तुओं के साथ यज्ञीय

---

१. महा० शान्ति पर्व अ० १४१

२. महा० अनु० प० अ० ११५--१४४

३. मत्य पुराण अ० १४३ । १२१

४. महाभारत (शान्तिपर्व) ३४५

५. अनुशासन पर्व ११७--२३

६. अश्वमेधीय अ० ९१ से ९५, नकुलाख्यान अ० ९४ अगस्त्य-कृत बीजमय यज्ञ।

७. श्रीमद्भागवत ४ । २५ । ७--८ । ७ । १५ । ७--११

८. आदित्य पु० (हेमाद्रि उल्लिखित)

महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञप्तिश्च गोसवे।
सौत्रामण्यामपि सुरा ग्रहणस्य च संग्रहः॥

९. बृहन्नारदीय स्मृति अ० २२ श्लो० १२-१६

१०. वीरमित्रोदय संस्कार प्रथम, पृ० १९

११. स्मृतिचन्द्रिका संस्कार काण्ड पृ० २८

गोवध, पशुवध तथा ब्राह्मण के हाथ से किया जाने
भी वर्ज्य बताया गया है। मनुस्मृति[१] और महाभारत[२] में
गया है कि घृतमय या पिष्टमय अज आदि पशु से यज्ञ
वृथा पशुहिंसा न करे।

एक बात अवश्य है कि हिंसक यागसूचक वाक्यों का
ज्यों का त्यों मानने वाले सनातन मीमांसक और उन वाक्य
बदलकर नई परंपरा वाले सनातनी आर्यसमाजी आदि दोनों
व्यवहार में मांसाहार से परहेज रखते हैं। मतभेद केवल
वाक्यों के अर्थ करने में ही है और हिन्दू सनातन-मानस और
दोनों परस्पर विरोधी परम्पराएं एक दूसरे पर यथेष्ट प्रभाव भी
हैं। वैष्णव-परम्परा ही को लीजिए, यह परम्परा मुख्यतया अ
याग का ही पक्ष करती रही है फिर भी उसकी विशिष्टाद्वै
रामानुजीय शाखा और द्वैतवादी माध्वशाखा में बड़ा अन्तर
माध्वशाखा अज का 'कांपिष्ठमय अज' अर्थ करके ही धर्म्य आच
निर्वाह करती है, जब कि रामानुजशाखा एकान्त रूप से ऐसा
मानती। रामानुजशाखा में तेंगलै और वडगलै दो भेद हैं। 'तें
शब्द का अर्थ है दाक्षिणात्य विद्या और 'वडगलै' शब्द का अर्थ है
विद्या। तेंगलै-शाखा वाले रामानुजी किसी भी प्रकार के पशु-वध
सहमत नहीं। इसलिए वे स्वभाव ही से गो, अज आदि का अर्थ
देंगे या उन्हें कलियुग-वर्ज्य कोटि में डाल देंगे। परन्तु वडगलै-शाखा
वाले रामानुजी वैष्णव होते हुए भी हिंसक-याग से सम्मत हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि वैदिक परम्परा के कट्टर अनुयायी अनेक
शाखाओं और उपशाखाओं ने हिंसासूचक शास्त्रीय वाक्यों का
अहिंसापरक अर्थ किया है। तथा धार्मिक अनुष्ठानों में से एव
सामान्य जीवन-व्यवहार में से मांसाहार

१.

बहिष्कार किया है। यह बड़ी ही चमत्कारिक बात है कि जिन धर्म-वाक्यों का परम्परा के प्राचीन और प्रामाणिक दल ने हिंसापरक अर्थ किया है उन्हीं धर्मवाक्यों का अहिंसापरक अर्थ उत्तरकाल में किया गया है। सभी मीमांसक व्याख्यानकार यज्ञ-यागादि में गो, अज आदि के वध को धर्म्य स्थापित करते हैं परन्तु वैष्णव, आर्यसमाज[१] स्वामी नारायण आदि अनेक वैदिक परम्पराएं उन वाक्यों का या तो सर्वथा पृथक् अहिंसापरक अर्थ करती हैं, या यह सम्भव न हो तो ऐसे वाक्यों को प्रक्षिप्त कहकर प्रतिष्ठित शास्त्रों में स्थान देना नहीं चाहतीं। मीमांसक प्रामाणिक व्याख्याकार इन शब्दों का अर्थ तो यथावत् करते हैं परन्तु हिंसा-प्रथा से बचने के लिये कहते हैं कि कलियुग में वैसे यज्ञ-यागादि विधेय नहीं हैं।

जैन-बौद्ध-परंपरा में मांसाहार

अब हम जैन और बौद्ध सम्प्रदाय के मांसभक्षण-सम्बन्धी भावना पर विचार करते हैं। जैनों के आचाराङ्गादि आगमों के कुछ सूत्रों से मांस-मत्स्यादि भक्षण का पता चलता है। अध्यापक कौसाम्बी ने बुद्धचरित में भी इसका समर्थन किया है और जर्मन विद्वान् जैकोबी ने भी आचाराङ्गसूत्रों के अंग्रेजी अनुवाद में यही बात लिखी है। प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य देवनन्दी ने उमा स्वाती के तत्त्वार्थसूत्र के ऊपर सर्वार्थसिद्धि नाम की टीका लिखी है।

---

१. "राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि के दान देने हारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध; अन्न, इन्द्रिया किरण और पृथ्वी आदि का पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मर जाय तब उसके शरीर का विधिवत् दाह करना नरमेध कहलाता है।" सत्यार्थप्रकाश समु० ११।

उसमें वे मांस आदि का प्रतिपादन करना यह श्रुतावरण बतलाते हैं[१]।

चूर्णीकार आचार्य हरिभद्र और आचार्य अभयदेव ने । आगमिक व्याख्याओं में उन वाक्यों का अर्थ मांस-मत्स्य किया है। यह निर्विवाद है कि जैनियों के आचाराङ्ग - वैकालिकादि आगमों में सामिष आहारसूचक सूत्र उपस्थित ह

बौद्ध ग्रन्थों में भिक्षुओं के लिए कुछ मांस खाना निषेध कुछ का विधान है। विनयपिटक में बच्छियों को और गायों भिक्षुगण मारते थे उन्हें बुद्ध ने खासतौर पर आदेश देकर .। महावग्ग में एक बछड़े को मारकर चमड़ा निकालने का उल्लेख परन्तु रोगी को कच्चा मांस और कच्चे खून को खाने की । गई है। महावग्ग में वाराणसीप्रसंग में एक गृहस्थ स्त्री ने जांघ का मांस पकाकर एक रोगी भिक्षु को खिलाया था। भिक्षु घोड़े, कुत्ते, सांप, बाघ, चीते, भालू, लकड़बग्घा और सिंह का भी खाते थे, जिसका बुद्ध ने निषेध किया।

अन्धकविन्द में एक श्रद्धालु तरुण महामात्य ने साढ़े बारह भिक्षु-संघ को साढ़े बारह सौ मांस की थालियां तैयार कराकर कराया था[४]। वैशाली के सिंह सेनापति ने बुद्ध को संघ-सहित भोजन कराया था[५]।

---

१. सर्वार्थ-सिद्धि ६।१३

२. आचाराङ्ग २।१। २७४--२८१; दशवैकालिक अ० ५।७३--७४

३. विनयपिटक महावग्ग ६

४. विनयपिटक महावग्ग ६।४।४

५. वि

बौद्ध-पिटकों में यह बतलाया गया है कि चुन्द नामक एक व्यक्ति ने बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया और उसमें उन्हें सूअर का मांस खिलाया जो उन्हें पचा नहीं और उन्हें उग्र शूल पैदा हुआ जो उनकी मृत्यु का कारण हुआ[1]। यह तो असंदिग्ध रूप से माना जाता है कि बौद्ध भिक्षु उस पशु का मांस खाने में कोई दोष नहीं समझते थे जो उनके निमित्त न मारा गया हो।[2] बुद्ध के निर्वाण के लगभग १००० वर्ष बाद बुद्ध घोष ने पिटकों के ऊपर व्याख्यायें लिखीं। उसने दीघनिकाय की अट्ठकथा में 'सूकर' 'मद्दव' तीन अर्थ भिन्न २ व्याख्याओं के मत से किये हैं।

वे इस प्रकार हैं—(१) स्निग्ध और मृदु सुअर का मांस, (२) पञ्च गोरस में से तैयार किया हुआ एक प्रकार का कोमल अन्न, (३) एक प्रकार का रसायन। ये तीन अर्थ महापरिनिब्बाणसुत्त की अट्ठकथा में भी हैं किन्तु उदान अट्ठकथा में और दो नये अर्थ, एक सूकर के द्वारा मर्दित बांस का अंकुर और दूसरा वर्षा में उगने वाला अहिच्छत्र। चीनी भाषा में उपलब्ध एक ग्रन्थ में 'सूकर' 'मद्दव' का अर्थ किया गया है शर्करा से बना हुआ सूकर के आकार का खिलौना[3]। इन तमाम भिन्न २ प्रकार के क्लिष्ट-कल्पनामूलक अर्थों का यह अभिप्राय हो सकता है कि चुन्द के दिये हुए अन्तिम सूकर-मांस का निषेध किया जाय। ऐसा मालूम होता है कि बुद्ध की मृत्यु के बाद, चाहे जैनियों के प्रभाव से कहिये चाहे भागवत आदि हिन्दुओं के अहिंसक धर्मों का प्रभाव कहिये, बुद्ध घोष के काल में एक ऐसा वातावरण बौद्ध भिक्षुओं में उत्पन्न हो गया था कि जो बुद्ध के सूकर-मांस-भक्षण पर पर्दा डालना चाहता था।

---

१. दीघ० महापरिनिब्बाण सुत्त १६

२. अंगुत्तर Vol. 11 P. 107 मज्झिमनिकाय सू० ५५ विनयपिटक पृ० २४५

३. अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी

यहां हम प्रसंगवश बौद्ध धर्म से सम्बन्धित एक म० का उल्लेख करेंगे। बुद्ध ने अपने जीवन में जो प्रवचन और उनके सौ वर्ष बाद तक जो

हीनयान-महायान

प्रवचनों के आधार पर पाली भाषा गये वे सब भी पाली-पिटक के नाम से हैं। उन पर मान्यता रखने वाला बौद्ध-पक्ष स्थविरवाद कहला। और पाली पिटकों के ऊपर बने संस्कृत पिटकों के ऊपर निर्भर र० पक्ष महायान कहलाता है। स्थविरवाद और महायान ये दोनों ५ बुद्ध को और उनके उपदेशों को मानने वाले हैं। फिर भी इन सम्प्रदायों के बीच ऐसा तीव्र धर्म-कलह हुआ है जिसका उदाहरण ४ नहीं मिल सकता। यद्यपि महावीर के अनुयायी जैनियों में श्वेताम्बर और दिगम्बर दो फिरके पैदा हो गये उन दोनों में का मानसिक कटुता रही।

भारत जहां धर्म-भूमि के नाम से प्रसिद्ध हुई उसी प्रकार उसे धर्म युद्ध-भूमि भी कहना चाहिये। यह धर्मयुद्ध भारत में दो प्रकार से होता रहा—एक तो भिन्न २ सम्प्रदायों के बीच जैसे वैदिक और अवैदिक श्रमणों का संघर्ष जो दोनों के धर्म और दर्शन-शास्त्र में दीख पड़ता है। दूसरा एक ही सम्प्रदाय के अवान्तर फिरकों के बीच जैसे एक ही औपनिषद-परम्परा के अवान्तर भेद शांकर, रामानुजीय, माध्व, वल्लभीय आदि के बीच उग्र कटुतापूर्ण। इसी प्रकार बौद्धों और जैनियों की श्रमण-परम्परा में भी मानुषिक कटुता उत्पन्न होकर दो दो फिरके परस्पर विरोधी बन गये। बुद्ध-निर्वाण के सौ वर्ष बाद जब वैशाली में प्रथम संघ बैठा तो स्थविरवाद में से एक और शाखा फ० महासंघिक कहलाई। फिर इसके सौ जब कि दो...

थे तब तीसरा संघ बैठा और महासंघिकों में से महायान विकसित हुआ। महायान के पुरस्कर्ता नागार्जुन सिद्ध ने दर्पपूर्वक कहा कि जो श्रावक स्थविरवाद में प्रवेश करता है वह सारे लाभ को नष्ट कर देता है और कभी बोधिसत्व नहीं हो पाता। नरक में जाना भयप्रद नहीं पर हीनयान में जाना अवश्य भयप्रद है[1]। आचार्य स्थिरपति[2] ने अपने महायानावतारक शास्त्र में लिखा है कि जो महायान की निंदा करता है वह पापभागी और नरक-गामी होता है[3]। वसुबन्धु ने भी ऐसा ही भाव प्रगट किया है।

लंकावतार महायान-परम्परा का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो सम्भवतः ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में रचा गया है। उसका आठवां प्रकरण मांसभक्षण परिवर्त नामक है। उसमें बोधिसत्व ने बुद्ध से प्रश्न किया है कि मांसभक्षण के गुण-दोष का निरूपण कीजिये, तो इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने कहा कि भला सब प्राणियों में मैत्री भावना रखने वाला मैं कैसे मांस खाने की अनुज्ञा दे सकता हूं, और स्वयं भी खा सकता हूं? इस प्रकार लंकावतारकार ने बुद्ध के मुंह से जो मनोरंजक वाक्य कहलवाया है उससे यह स्पष्ट होता है कि महायान-सम्प्रदाय में प्रबल मांसाहार-विरोधी भावना उत्पन्न हो गई थी जिसका मूलाधार सम्भवतः अशोक की भूत-दया भावना थी।

इसी महायान-परम्परा में ईसा की ६वीं शताब्दी में शान्तिदेव एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् हुए। उनके सामने तक कुछ महायानी ग्रन्थकार भी ऐसे थे जो मांसाहार के समर्थक थे। उन्होंने मांसाहार का विरोध अपने 'शिक्षासमुच्चय' नामक ग्रन्थ में करते हुए कुछ अपवाद ऐसे बताये हैं, कि जिनमें भिक्षु मांस खा सकते हैं। यह कार्य उन्होंने

१. दशभूमि विभाषा
२. ई० २००-३०० के बीच
३. चौथी शताब्दी

पूर्वापर के दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों को देखकर किया।
कर्त्तव्य के तौर पर ही मांसाहार का विधान किया। उन्होंने
में विहित त्रिकोटी शुद्ध मांस और सहज मृत्यु से मृतक प्राणी
सूचक सूत्रों का अर्थ मांसाहारविरोधी भावना से किया।
जो लंकावतार और शान्तिदेव के मध्यकालीन और
उन्होंने पाली पिटकों और विनय की प्राचीन परम्परा को
दिया।

विषकन्या और उसके प्रयोग का एकमात्र उल्लेख हमें
नाटक में मिलता है। वहां भी विषकन्या तथा उसके प्रयोग का
उल्लेख मात्र ही है। इसके सिवा एकाध
विष-कन्या पर प्राचीन साहित्य में बिल्कुल अस्पष्ट
मिलता है। वहीं से हमने विषकन्या की भू
ग्रहण की है। अपने चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर हमने
कल्पना का सक्रिय यथासाध्य वैज्ञानिक प्रयोग वर्णन किया है।
आयुर्वेद में अनेक महाविषों का वर्णन और उनके भक्षण प्रयोग हैं
तन्त्रग्रन्थों में मारण उच्चाटन प्रयोग कुछ ऐसे हैं जिनका औषध-तन्त्र
सम्बन्ध है। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र में भी ऐसे प्रयोग हैं। रावण
अर्थ-प्रकाश में भी है। तथा इस प्रकार के प्रयोगों की आदि भूमिका
अथर्ववेद है।

स्पर्शमात्र से प्राणनाश करने वाले विष प्राचीनकाल में और
आज भी हैं। सर्प दंश नित्य लेने वाला एक व्यक्ति मैंने देखा था। और
जिस प्रकार निर्द्वन्द्व भाव से वह भयंकर सर्प को दस कर उसका दंश अपने
हाथ पर लेता था उसी प्रकार संखिया, मुर्दासंख, कांच के टुकड़े
के फल, आक के पत्ते वह अनायास ही
में सर्प-विष के

शास्त्र में बचपन ही से थोड़ा २ विष खिलाते रह कर विषकन्या बनाने का भी एक स्थान पर उल्लेख है।

एक ऐसी कन्या भी होती थी जिसके जन्मकाल के कुछ ग्रह नक्षत्र ऐसे होते थे कि जो उनसे विवाह करे या सहवास करे उसी की मृत्यु हो जाती थी।

उपन्यास की भूमिका में जिस विषकन्या की हमने सृष्टि की है वह रूप गुण तेज और साहस में तो अद्वितीय है ही—नीति और धर्म में भी वह पीछे नहीं है। यह पाठक उसके चरित्र में भली भांति देख सकते हैं।

राजगृही के वैज्ञानिक आचार्य काश्यप कोरी कल्पना का पात्र नहीं हैं। निस्संदेह अब से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारत को युद्धकला में इन वैज्ञानिक उपचारों का उपयोग शत्रु के लिये होना था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में "औपनिषदिक अधिकरण" में ऐसे अनगिनत प्रयोग लिखे हैं। उन्होंने अतिभयानक आशुविषों के प्रयोग लिखे हैं; जिनके धुएं से, सूंघने से, स्पर्श से सहस्रों मनुष्य आनन फानन मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं; मनुष्य ही नहीं, हाथी, घोड़े, गधे और ऊंट भी। कुछ प्रयोग मूक, बधिर, अंधा कर देने के हैं। कुएँ, बावड़ी और तालाबों के जल को ऐसा दूषित कर देना जिससे उस जल को पीने से प्राणी महामारी में मर जाय, या पागल हो जाय, या क्षय-रोग-ग्रसित। कुछ योग कुष्ठ, शोष, प्रमेह, ज्वर आदि रोग पैदा करते हैं। कुछ ऐसे दंश प्रयोग हैं जिनमें बुझे बाण मनुष्य को लगने से आदमी दूसरों को काट खाता है, वे काटे हुए मनुष्य औरों को काटने लगते हैं। कुछ विष देखने ही से मनुष्य मर जाते हैं। आग लगाने के भी बहुत प्रयोग हैं।[१]

राजगृही का वैज्ञानिक

ताम्बा, रांगा आदि हलकी धातु से सोना चांदी बनाने की विद्या का नाम धातुवेध या कीमिया है। बुद्धकाल से कुछ आचार्यों का ध्यान

१ कौटिलीय अर्थशास्त्र—अधि० १४। अध्या० १

'शरीर को अजर अमर अथवा दीर्घकाल-स्थायी बनाया जाय'
गया। दीर्घकाल के अन्वेषण के ..
धातुवेध और 'पारे' को इस काम के लिये उपयुक्त ...
कीमिया और उसके अष्टादश संस्कारों का ...
किया। उस समय गन्धक, अभ्रक,
माक्षिक आदि द्रव्यों को रससंस्कारक माना गया।
अन्तिम संस्कार को 'वेध' कहा गया। वेध दो प्रकार का
एक 'लोहवेध' दूसरा 'देहवेध'। लोहवेध का अर्थ
वङ्ग आदि हलकी धातुओं से सप्तदश संस्कार से संस्कृत ...
वेध द्वारा सोना-चांदी बनाना और दूसरा देहवेध का अर्थ
पारद के वेध से अस्थिर देह को चिरस्थायी बनाना। सप्तदश सं...
किया हुआ पारद देहवेध के लिये समर्थ सिद्ध हुआ या नहीं ...
परीक्षा लोहवेध से की जाती थी। जो पारद लोहवेध कर सकता है
देहवेध अवश्य कर सकेगा। यह प्राचीनों का विश्वास था। वे ...
धन के लिये धातुवेध नहीं करते थे।[2] रस-शास्त्र के प्राचीन ज्ञाताओं
में पतञ्जलि, व्याडि, नागार्जुन, गोविन्द भगवत्पाद आदि विख्यात
पुरुष हुए हैं।

कौटलीय अर्थशास्त्र में सुवर्ण के भेद बताते हुए 'रसविद्ध' नामक एक भेद बताया है[3]। भारतीय रसायनविज्ञान से सम्बन्धित अनेक रस-ग्रन्थ हैं। जिनमें कुछ प्रकाशित हैं, कुछ अप्रकाशित। प्रकाशित

१. अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनो अपि पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिः सेत्स्यतीत्यास्थाय पिण्डस्थैर्योपायं पारदादिपदवेदनीयं रसमेव संगिरन्ते" । श्रीसायण माधव विरचित-सर्वदर्शन संग्रहान्तर्गत-रसेश्वर दर्शनमत निरूपण।

२. रसहृदयतन्त्र अव० १ श्लो० १०
रसार्णवतन्त्र पटल १६, श्लो० ? ·

३. अर्थ० अ० ३ ...

ग्रन्थों में रसरत्नसमुच्चय, रससार, रसहृदय तथा रसेन्द्रचूडामणि प्रमुख हैं। हाल ही में एक चिरविख्यात लुप्त ग्रन्थ रसरत्नाकर वादिखण्ड का एक संदिग्ध संस्करण भी प्रकाशित हुआ है। इन सभी ग्रन्थों में द्वन्द्वमेलापक (जोड़े का), रंजन, शतवेध, सहस्रवेध, कोटिवेध आदि तारकरण और स्वर्णकरण के अनगिनत प्रयोग हैं। रसरत्नसमुच्चय के कर्ता वाग्भट ने इकतालीस रससिद्धों के नाम गिनाए हैं[1]। इन रससिद्धों ने जो रससाहित्य लिखा है वह केवल अटकलपच्चू ही नहीं उसमें मूलतत्व, यौगिक, मिश्रण, अणु, परमाणु-सकेत, सूत्र, रासायनिक-संयोगमूलक, अणुभार, परमाणुभार, परमाणु-बन्धन-क्षमता, धातुतत्व अधातुतत्व, परमाणुसिद्धान्त, रश्मिक्षेपकता, इलेक्ट्रान प्रोटीन, परमाणु का स्वरूप, घनत्व, आपेक्षिक घनत्व, तापक्रम, परावर्तन, वर्तन, काठिन्य, ऊर्ध्वपातन आदि महत्वपूर्ण वैज्ञानिक परिभाषाओं पर अन्वेषण किए गए हैं। इन ग्रन्थों को पढ़कर इस युग के नागार्जुन आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्रराय ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री' में इस विषय पर अधिकारपूर्ण वाणी में बहुत कुछ लिखा है।

उपन्यास में जो मन्थानभैरव नामक एक कल्पित किन्तु तन्त्र-विख्यात देवता के छायादर्शन एवं उसके पर-शरीर-प्रवेश का हमने जो रूपक व्यक्त किया है वह वास्तव में एक कपोल-कल्पना ही है परन्तु इस प्रकार पर-शरीर-प्रवेश की चर्चा अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है।

पर-शरीर-प्रवेश

कथा-सरित्सागर एवं कुछ पुराण-ग्रन्थों में ऐसी कथाएँ हैं। शंकराचार्य आदि के विषय में भी ऐसा ही कहा जाता है। इसलिए हमने पर-शरीर-प्रवेश-सम्बन्धी भूमिका पाठकों के कौतूहल वृद्धि की भावना से की है।

पात्रों के नाम कुछ को छोड़कर प्रायः सभी काल्पनिक हैं। केवल

---

1 रसरत्न० अ० 1

ऐतिहासिक जनों के नाम सत्य है। पात्रों की काल-परिधि
विचार नहीं किया गया है; और
पात्रों के नाम पढ़ने पर इतिहास के सत्य की
कुछ भी परवाह नहीं की गई है।

अत्यन्त प्राचीन काल से भिन्न २ राज्यों में स्पर्धा के का
युद्ध-प्रसङ्ग उपस्थित होते रहे हैं। इस कारण भारतीय
इतिहास में युद्ध की कम महत्ता
युद्ध यही नहीं, वास्तविक बात यह है।
भारत-काल से बहुत प्रथम ही
नीति और सेना-व्यवस्था अत्यन्त उन्नतावस्था को पहुँच
युद्ध के प्रकार बहुत संस्कृत हो गये थे। इस सम्बन्ध
विचारणीय बात यह है कि इस उत्तरकाल में बड़े २ युद्ध प्रायः
ही में परस्पर होते थे। इस कारण युद्धों की विनियोजना उन्नत
की युद्ध-पद्धति पर नियमबद्ध थी। युद्ध-तत्त्व धर्म-युद्ध का मूल
था। कोई योद्धा धर्मयुद्ध के नियमों का उल्लघन करने का साहस
कर सकता था। परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं के युद्धों के बाद धर्म
का यह रूप विकृत हो गया और युद्धतत्त्व से दया-धर्म के नियमों
अतिक्रमण होने लगा। यूनानियों ने जब ऐशियाटिक लोगों से
किये तो उन्होंने क्रूर कर्मों का अवलम्ब किया।

हम जिस युग की कथा इस उपन्यास में कह रहे हैं उस युग में
युद्ध-विद्या इतनी उन्नत और व्यापक हो गई थी कि प्रत्येक मनुष्य जब
चाहे तभी भाला और तलवार लेकर युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सकता
था। उस काल में सैनिक को यथावत् समर-क्रिया सीखकर उसमें
पारंगत होना पड़ता था। उन दिनों सेना के चार
पादाति, अश्व, गज और र

भय से विदेशी आक्रान्ता भारतीयों से युद्ध करने में भय खाते थे। केवल सिकन्दर के ही बुद्धिकौशल ने विदेशियों का यह भय दूर किया। फिर भी शताब्दियों तक, तोपों के प्रचलन के बाद भी युद्ध में हाथी की महत्ता कम न हुई। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को अपनी बेटी देकर ५०० हाथी लिये थे। फारस के शाह रोमन लोगों से युद्ध करने के समय हाथियों का उपयोग करते थे। लंगड़े तैमूर ने दुर्दान्त तुर्क सुलतान बजाजत को हाथियों की ही सहायता से दलित किया था। कदाचित् युद्ध के इतिहास में हाथियों द्वारा यह अन्तिम विजय थी।

चतुरङ्ग सेना के चारों अंगों में प्रत्येक दश योद्धाओं पर, सौ पर, और सहस्र पर एक २ नायक रहता था। भिन्न २ चारों अंगों के भी एक २ अधिकारी होते थे। इन सब पर एक प्रधान सेनापति होता था। महाभारत में बताया है कि सेनापति धृष्ट, शूर, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन, अनुरक्त, दक्ष, व्यूह-यन्त्र और आयुधों का ज्ञाता, वर्षा-ठण्ड और गर्मी को सहन करने योग्य, तथा शत्रु के छिद्रों को जानने वाला होना चाहिए[1]।

'चतुरङ्ग' सेना के अतिरिक्त सेना के और भी अङ्ग उपाङ्ग होते थे। उन्हें विष्टि, नाव, चर और देशिक कहा गया है[2]। विष्टि का सब प्रकार की युद्ध की सामग्री को लादकर ले जाने की व्यवस्था करता था। प्राचीन काल में युद्ध-प्रसग में इसका बड़ा महत्व था। बाणों और हथियारों के तथा अन्य सामग्रियों के सहस्रों छकड़े भरकर साथ ले जाना पड़ता था। समुद्र और नदियों में नौकाएँ काम करती थीं। नौकाओं पर युद्ध भी होते थे। उत्तरभारत की बड़ी २ नदियों को पार उतरने में नौकाओं की बड़ी आवश्यकता होती थी। चर भांति २ के संदेश लाते थे। भिन्न २ महत्वपूर्ण स्थलों की खोज करना, रास्ता

---

१. महा० शा० प० अ० ८५–१३

२. महा० शा० प० अ० ५६

दिखाना आदि कार्य देशिक करते थे। इस प्रकार प्राचीन कला में सेना के ये आठ अंग होते थे।

पादाति सेना के पास खड्ग, प्रास, परशु भिण्डीपाल, आदि शस्त्रास्त्र होते थे। अश्वारोही खड्ग, बर्छा और प्र जाते थे। धनुषबाण का दोनों ही उपयोग करते थे।

वर्म का उपयोग रथी और सारथी ही कर पाते थे। के लोग भिन्न २ युद्ध-प्रकारों में पारंगत होते थे। गान्धार, सौवीर के भट अश्वयुद्ध में विशेषता रखते थे। इन देशों प्रसिद्ध थे। उशीनर सब प्रकार के युद्धों में प्रबल होते थे। आदि हाथियों के युद्ध में विशेषता रखते थे। मथुरा के भट में और दक्षिण के जन खड्गयुद्ध में[1]।

अश्वारोही भट जब परस्पर भिड़ जाते थे तब प्रास-युद्ध निकट आने पर खड्ग-युद्ध पीछे बाहु-युद्ध। प्रत्येक भट शत्रु को से गिराने की चेष्टा करता। कवच बहुमूल्य एवं भारी होते थे प्रत्येक भट उसे धारण नहीं कर सकता था। हाथियों, रथों और पर बैठने वाले बड़े २ भट ही कवच का प्रयोग कर पाते थे।

हाथी की प्रचण्ड शक्ति और आज्ञाकारिता से युद्ध में बहुत लिया जाता था। परन्तु उसकी सूँड इतनी नर्म होती थी कि सहज काटी जा सकती थी। इसकी रक्षा के लिए उसके गण्डस्थल से ले सूँड तक लोहे का कवच पहनाया जाता था। पैरों में भी पहनाया जाता था। शिक्षित हाथियों को सूंड में भारी २ लोहे जंजीर लेकर घुमाने की शिक्षा दी जाती थी, जिसे घुमाते हुए वे रौंद करते थे तो शत्रु-सैन्य छिन्न-भिन्न हो जाती थी। परन्तु ऋतु में हाथी बाहर न निकलने के कारण भीतर
दे सड़ जाते

तथा यथेष्ट जल न पी सकने और अन्तर्दाह बढ़ जाने से वे अन्धे जाते थे[१]।

मल्लो को बिना ही शस्त्र के हाथियों से युद्ध करने की शिक्षा दी जाती थी। ये मल्ल फुर्ती से हाथी के पेट के नीचे घुसकर उसे घूंसों से मार २ कर विह्वल कर देते थे[२]। हाथी पर योद्धा और महावत दो व्यक्ति बैठते थे। योद्धा धनुषबाण और शक्ति का उपयोग करता था। हाथियों की सेना को परास्त करने की युक्ति सिकन्दर ने जो निकाली वह यह थी कि कवच-रहित पादातियों को दूर ही से बाण चलाकर महावतों को मार गिराने की आज्ञा दी गई। पीछे कवचधारी पादातियों ने बढ़ हाथियों के पैर काट डाले और पैरों को घायल कर दिया। सिकन्दर ने हाथियों की सूंड काटने के लिए विशेष प्रकार की बांकुरी तलवारें बनवाई थीं। इस प्रकार उसने गजसेना का पराभव किया था।

प्राचीन काल में रथी सबसे अजेय योद्धा होता था। उस काल में धनुष-बाण ही एक ऐसा शस्त्र था जो दूर से शत्रु को आहत करता था। फेंक कर मारने वाले अस्त्रों में 'शक्ति' और 'चक्र' भी तेजस्वी थे। शक्ति (बरछा) की अपेक्षा चक्र दूर तक काम करता था। पर बाण इन सब से अधिक शक्तिशाली था। वह वेग से फेंका जाकर एक मील तक मार करता था। शक्ति और चक्र के युद्ध में असुविधा यह थी कि बहुत सी हाथ में नहीं रक्खी जा सकती थीं। तथा वे फेंकी जाकर फिर लौट कर हाथ में नहीं आ सकती थीं। परन्तु बाण अधिक संख्या में योद्धा अपने पास रख सकता था। तथा बड़े २ योद्धाओं के रथों के साथ २ बाणों से भरी गाडियाँ रहती थीं। रथी रथ को वेग से विविध दिशाओं में घुमाकर चलाते थे और उन पर आरूढ रथी बाणों की वर्षा करता हुआ अनेक शत्रुओं को आहत करता था। सिकन्दर के युद्ध में भी

---

१. कौटिल्य० अ० ६—अध्याय १, सू० ४६

२. महा० द्रोण० अ० २६

आर्यों ने रथों का उपयोग किया था। आर्यों की धनुष कला की यूनानियों ने बड़ी प्रशंसा की है। उनके कथानुसार रथ मनुष्य के सिर तक ऊँचे और बाण तीन हाथ लम्बे होते। का लोहा बहुत तीक्ष्ण और भारी होता था। ऐसे बाणों को चलाने के लिये योद्धा की बाहु में बहुत बल होना चाहिए। के आक्रमण-काल में यद्यपि धनुषबाण की कला में कमी आ परन्तु यूनानी यह देखकर स्तम्भित रह जाते थे कि आर्य फेंके हुए बाण कितने वेग से आते थे। वे लिखते हैं कि इन लोहे की मोटी पट्टियां भी बिंध जाती थीं। भारतीय कीर्ति और सामर्थ्य पृथ्वीराज चौहान में इतिहासकारों ने देखी इस अन्तिम हिन्दू धनुर्धर ने बाण से लोहे के मोटे तवे छेद धनुषबाण से युद्ध करने के लिए असाधारण शक्ति स्फूर्ति और की आवश्यकता होती थी। महाभारत में लिखा है कि पाण्डवों ने दिन धनुष चलाने का अभ्यास किया था, तब उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी

रथ पर धनुर्धर की शक्ति दशगुनी बढ़ जाती थी। परन्तु रथ चढ़कर युद्ध करना साधारण न था, वेग से दौड़ते हुए रथ पर चल वेध करना, अपनी और सारथी की रक्षा करना, अश्वों को वश में रथ के पार्श्व भाग और पृष्ठ भाग की रक्षा करना, तथा निरन्तर बदलते रहना एवं रथ के बढ़ने लौटने के मार्ग का भी ध्यान साधारण कार्य नहीं होता था। इसी से रथ-युद्ध में रथी और सारथी दोनों की समान योग्यता होती थी। महाभारत में अर्जुन का श्रीकृष्ण ने तथा कर्ण का महारथी शल्य मद्रराज ने रथ-संचालन किया था। अश्वत्थामा के रथ के साथ सात गाड़ियां बाणों थीं। इन गाड़ियों में

तीन घण्टे में उसने आठ गाड़ियों को खाली कर दिया था। महाभारत[1] में रथी-युद्ध का विस्तृत वर्णन है। वितस्ता के तीर पर जब सिकन्दर का पुरु से युद्ध हुआ तब उस युद्ध में रथ ही प्रधान अंग था। इस युद्ध का वर्णन इतिहासकार कर्टियस रूफस् ने इस प्रकार किया है—

'युद्ध प्रारम्भ होते ही वर्षा होने लगी। परन्तु कुछ समय बाद ही बादल खुल गये। पुरु ने सौ रथ और चार हजार अश्वारोही आगे बढ़ाए। ये रथ चार घोड़ों से खींचे जाते थे। प्रत्येक पर छः योधा थे। उनमें से दो हाथ में ढाल लिए खड़े थे। दो दोनों तरफ धनुष लिए खड़े थे तथा दो सारथी थे। ये सारथी लड़ते भी थे। मुठभेड़ के समय ये घोड़ों की बागडोर नीचे रख शत्रुओं पर भाले फेंकते थे। परन्तु वर्षा के कारण रथों का ठीक उपयोग नहीं हुआ। कीचड़ में पहिए धँस गये, घोड़े फिसलने लगे। उधर सिकन्दर ने उन पर वेग से आक्रमण कर दिया।"

कुछ बाण बहुत छोटे केवल एक विता भर के ही होते थे। शत्रु के निकट आने पर वे फेंके जाते थे। कुछ बाण सीधे छोर के न होकर अर्ध-चन्द्र के समान छोर वाले होते थे। ये बाण गर्दन काटने और सिर को धड़ से अलग करने में काम आते थे। कुछ बाण विषदग्ध होते थे। पर धर्म-युद्ध में उनका प्रयोग वर्ज्य था। कई बाणों पर दो उल्टे सिरे रहते थे इन्हें 'कर्णी' कहते थे। यह बाण जब शरीर से निकाला जाता था तो घाव को और चीर देता था। धर्मयुद्ध में ये भी वर्ज्य थे।

सेना की व्यवस्था महाभारत[2] के अनुसार इस प्रकार होती थी। एक हाथी, एक रथ, तीन घोड़े और पांच पैदल मिलकर एक 'पङ्क्ति' होती थी। तीन पङ्क्तियों का एक सेनामुख, तीन मुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का एक गण, तीन गणों की एक वाहिनी, तीन वाहिनियों

1. महाभारत शान्ति प० अ० १००

2. महा० आदि०।

की एक प्रतना, तीन प्रतनाओं की एक चमू, तीन चमू की एक अनीकिनी और दस अनीकिनी की एक अक्षौहिणी। सब मिला कर एक अक्षौहिणी में २१,८७० रथ, इतने ही हाथी। ६५,६१० अश्व और १,०९,३५० पादाति होते थे।

युद्धभूमि में इस प्रकार सेना खड़ी की जाती थी कि सम्मुख हाथी, उनके मध्य में रथ, रथों के पीछे अश्व और उनके पीछे कवचधारी पादाति[1]।

युद्ध प्रायः दो प्रकार के होते थे। एक व्यूहयुद्ध, दूसरा संकुलयुद्ध। अनेक प्रकार के व्यूहों का वर्णन महाभारत[2] तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र[3] में है।

हमने बताया था कि भारतीय इतिहास में आर्य लोग धर्मयुद्ध ही करते थे। परन्तु यूनानियों द्वारा भारतीयों ने भी कूटयुद्ध सीखे। सम्भवतः महाभारत-काल से कुछ प्रथम ही विदेशियों ने कूटयुद्ध भारत में किये थे। महाभारत[4] और कौटिलीय अर्थशास्त्र[5] में कूटयुद्ध का विस्तृत विवरण हमें देखने को मिलता है।

इस उपन्यास में व्यूह-रचना, तूष्णीयुद्ध, समस्थापन, कूटयुद्ध आदि का वर्णन कौटिलीय अर्थशास्त्र के तथा महाभारत ही की युद्ध-कला के आधार पर किया गया है।

---

१. महा० शान्ति० अ० ९९। उद्योग पर्व अ० १५५

२. महा० भीष्म० अ० ५७

३. कौ० अ० अ० ९-१०

४. महा० शान्ति० अ० ६९। १३४-१७

इन ही महास्त्रों का प्रयोग वैशाली के युद्ध में प्रथम बार हुआ था।

रथ-मुशल और महाशिलाकंटक

इन्हीं के कारण जैन ग्रन्थों में इस युद्ध को रथमुशल-संग्राम और महाशिलाकंटक संग्राम के नाम से पुकारा गया है। महाशिलाकटक ऐसा अस्त्र था कि उसमें कंकड़, पत्थर, घास, फूंस, काठ-कूड़ा जो कुछ तुच्छ से तुच्छ साधन मिले उसके द्वारा वेग से फेंका जाता था और वह महाशिला की भांति आघात करता था।

रथमुशल बिना सारथी और बिना योद्धा का एक रथ था। यह कठिन लोहे का बना था और इस पर किसी शस्त्र का प्रभाव नहीं होता था। यह रथ शत्रु-दल में घुस कर हाथी, घोड़ा, रथ, पादाति जो इस की चपेट में आजाते उसी को कुचल कर महाजनसंहार[१] करता था। महाभारत संग्राम के बाद वैशाली का युद्ध ही सबसे बड़ा था। इस युद्ध में ९६ लाख मनुष्य मरे थे तथा यह युद्ध दस दिन चला था। इसमें नौ लिच्छवि नौ मल्ल और १८ कासी-कोल के गण-राज्य ध्वस हुए थे[२]।

पारिभाषिक शब्द

उपन्यास में लगभग दो सहस्र नए पारिभाषिक शब्द आये हैं। जिनका प्रचलन चिरकाल से भाषा-प्रवाह में समाप्त हो गया है। परन्तु उस काल में प्रयोग में आते थे उनका उपयोग हमने केवल रस-वर्धन एवं कालतल्लीनता के विचार से किया है। पाठकों को यद्यपि इससे कुछ असुविधा हो सकती है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उन्हें इसमें इतिहास-रस का स्वाद प्राप्त होगा तथा अपनी मूल भाषा-निर्माण में सहायता मिलेगी।

---

१. भगवतीसूत्र शतक ७ उद्दे० ९

२. भगवतीसूत्र

भाषा और भाव, सब मिलकर प्रस्तुत उपन्यास सब पढ़ने योग्य नहीं है। परन्तु हिन्दी भाषा और भारतीय परिचित होने के लिए यह उपन्यास प्रत्येक शिक्षित बीस बार पढ़ना चाहिए। खासकर उच्च सरकारी अफसर, भाषा के पण्डित और अंग्रेजी सभ्यता के अभ्यस्त हैं और ही नहीं, विचार तक अंग्रेजी से अनुवादित होकर उनके बाहर निकलते हैं, कम से कम पाद-शताब्दी तक, जब तक के माध्यम द्वारा शिक्षित होने का दाग उनके मस्तिष्क से छूट अपनी टेबुल पर इस उपन्यास को अनिवार्य रूप में डाल तब तक निरन्तर इसे पढ़ते रहें तो उन्हें मौलिक भारतीय अपने रक्त में प्रवाहित करने में बहुत सहायता मिलेगी। उचित है कि भारतीय सरकार ही यह आदेश जारी कर दे और उपन्यास एक प्रति अपने अफसरों की टेबुल पर रख देने की व्यवस्था कर दे

आज के इस तथाकथित जन-राज्य में, जो वास्तव में गए प्रतिनिधियों की निर्विरोध शासनसत्ता है, और जिसका पराजित पाश्चात्य राजनीति और टूटता निस्संग साहित्यिक पूंजीवाद है। सांस्कृतिक विकास का स्थान नहीं है। इसी से साहित्यिक एकदम नि रह गया है। उसका कोई रक्षक, समर्थक और साथी नहीं है। वह शून्य में अकेला चिल्ला रहा है, वह भूखा, प्यासा निराश्रय और है। वह जीवन की कठिनाइयों से घिरा हुआ, उन मध्यम श्रेणी लोगों की भीड़ में खोया हुआ नगण्य नागरिक से मन्दविर

भी अधिक। हम केवल अति निकट ही से इसके प्रभाव को देखने के विचार से भारत ही का उदाहरण लेंगे। हमने बताया है कि किस प्रकार बुद्ध और महावीर ने श्रमण-संस्कृति स्थापित की जिसने वेद-यज्ञ

साहित्य की निष्ठा

और ईश्वर तथा संस्कृत भाषा का बहिष्कार किया और आर्यों का प्रभुत्व नष्ट कर मिश्रित जातियों को संगठित और सुसंस्कृत किया। जिस से देश ने तत्काल में नया जीवन पाया। और आर्य अनार्यों का भेद वैर और द्विभाव नष्ट होकर उनकी एक संयुक्त संस्कृति बन गई। इसके बाद इन्हीं मिश्रित और अनार्य जनों ने हर्षवर्धन, विक्रमादित्य और कनिष्क को जन्म दिया, जिन्होंने सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य का शृंगार किया, जो नवीन हिन्दू-जाति-निर्माण और उसमें बल-विद्या और गुणों के अधिकाधिक लक्षणों को विस्तार करने वाला एवं हिन्दू-धर्म की संस्कृति का एकमात्र प्रतीक रहा। फिर तुलसी और सूर ने साहित्य में रस-धार बहाई जिसमें स्नात होकर कोटि २ जन स्फूर्ति पा गए। तुलसी की सम्पदा ने देश में सहिष्णुता, मर्यादा, धैर्य, संगठन, शौर्य और आशा का बीज बोया। तुलसी के राम के प्रभावशाली झंडे की छाया में आगे चलकर छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण में बीजापुर, गोलकुण्डा और दिल्ली को विमर्दित करके विशाल महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की। और महाराणा राजसिंह ने प्रचण्ड युद्धों में मुगल-सम्राट् को पद-दलित किया। तुलसी ही के राम का बल पाकर छत्रसाल ने केवल पांच सवारों और पच्चीस पैदलों की सेना लेकर प्रतापी मुगलों से लोहा लिया और विजयो पर विजय प्राप्त करके दो करोड़ वार्षिक आय का महाराज्य बुन्देलखण्ड में खड़ा कर लिया। इसी तुलसी के रामाश्रय होकर दक्षिण में बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने मुगल-साम्राज्य को ध्वंस कर पांच सौ वर्षों के खोये हिन्दू-साम्राज्य की पुनः स्थापना की। ये तुलसीदास के हिन्दू-संगठन के महान् परिणाम थे कि दो ही शताब्दियों के भीतर हिन्दू

साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया।

इसके बाद स्वामी दयानन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देशभक्ति का पौदा लगाया और फिर गांधीजी ने राष्ट्रीयता का ध्वजारोपण किया जिससे साहित्य में महानाद उत्पन्न हुआ और उससे भयभीत होकर ब्रिटेन को अपना यह आखेट छोड़ कर भागना पड़ा।

साहित्य और साहित्यकार

साहित्य-कला का चरम-विकास है और समाज का मेरु-दण्ड; धर्म और राजनीति का वह प्राण है, इसलिये इसमें दो गुण होने अनिवार्य हैं—एक यह कि वह आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करे और दूसरे वह मानवता के धरातल को ऊंचा करे।

सामर्थ्यवाद काल, जैसे जगत् के सब तत्वों को दूषित करता है उसी भांति उसने साहित्य को दूषित किया है। इसी से साहित्य ने मानव आत्मा का हनन किया; उसी भांति, जैसे विज्ञान ने मानव प्राणों को। और यही कारण है कि साहित्य और विज्ञान के इस उद्-ग्रीव युग में मानव भौतिक और आधिभौतिक विभूतियों का सर्वाधिक रहस्यविद् होने पर भी अपने चिरजीवन में आज सर्वाधिक असहाय और भयभीत है।

साहित्य और विज्ञान ही उसे अभयदान कर आप्यायित कर सकता है यदि वह अपना लक्ष्य मानवता के धरातल को ऊंचा करना बना ले।

मानव विश्व की सबसे बड़ी इकाई है। परन्तु साहित्यकार मानव नहीं है, क्योंकि वह अतिमनुष्यों का निर्माण करता है, वास्तव में साहित्यकार महामानव है।

इसलिये उसका कोई अपना देश, धर्म, राष्ट्र, समाज और स्वार्थ

बिन्दु पर उनकी स्थापना करना। यह करने ही से वह मानवता के धरातल को ऊंचा करने में समर्थ हो सकता है।

जो साहित्यकार विचारों को मूर्त करता है, संस्कृति को मूर्त करता है, आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने काल और उस काल के बाद के जनपद का शास्ता है। वह मानुष-तत्त्व का प्रतिनिधि है। वह मनुष्यों के आदर्श का विचार करके 'अतिमनुष्यों' का निर्माण करता है और अपनी 'नाद-ध्वनि' के संकेत पर कोटि २ नरसमूह को उसी लक्ष्य-बिन्दु पर केन्द्रित करने में समर्थ है।

आभार-भार और अभिवादन

अपने उन सब ज्ञात-अज्ञात विद्वानों को—जिनकी रचनाओं से मैंने इस ग्रन्थ में सहायता ली है, फिर अभिवादन करता हूं और उनका आभार मानता हूं। और उन दोनों धूर्त मित्रों का भी, जिन्होंने इसकी पाण्डुलिपि चुरा कर मुझे इस परिष्कृत रूप में इसे फिर से लिखने को विवश किया।

बीस वर्ष

इस ग्रन्थ में मेरा दश वर्ष का समय लगा, तथा दस वर्ष आयु के घिस कर छीज गए।

फिर भी पाठकों को यह रचना प्रिय लगे, इसे पाकर वे आनन्द-विभोर हो जायं, उन्हें इसमें से रस की एक बूंद मिले, तो फिर इसका क्या दुख ? दश वर्ष की क्या बिसात, जीवन भी घिस जाय तो क्या परवाह !!

१ मई १९४९
ज्ञान-धाम
दिल्ली शाहदरा

—चतुरसेन

चतुरसेन-साहित्य

उपन्यास :—

- हृदय की परख — १॥)
- हृदय की प्यास — २॥)
- अमर अभिलाषा — ३)
- आत्मदाह — ३)
- नीलमणि — ॥।)
- खवास का व्याह — १॥)
- वैशाली की नगरवधू (दो खण्ड) — १२)

कहानी-संग्रह :—

- अक्षत — १॥)
- रजकण — २॥)
- वावर्चिन — २॥)
- कमलकिशोर — १॥)
- नवाब ननकू — २॥)
- आवारागर्द — १॥)
- राजपूत बच्चे — १)
- स्त्रियों का ओज — १)
- सिंहगढ़-विजय — १)
- वीर-गाथा — १)
- आदर्श बालक — १)
- मुगल बादशाहों की अनोखी बातें — ॥)

नाटक :—

- उत्सर्ग — ।)
- राणा राजसिंह — १॥)
- अजीतसिंह — १॥)
- श्रीराम — ॥।)
- मेघनाद — १)
- अमरसिंह राठौर — १)

एकांकी :—

- राधाकृष्ण — ॥)
- सीताराम — ॥=)
- क्षमा — ॥)
- हरिश्चन्द्र — ॥)
- नलदमयन्ती — ॥)
- सावित्री सत्यवान — ॥)
- ऊर्मिला — ॥)

साहित्य :—

- हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास — ७॥)

गद्यकाव्य :—

- अन्तस्तल — २॥)
- अनाम स्वदेश — ॥।)